उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

संस्कृत नाटक

MAST-107

खण्ड – 'क' : प्रतिमानाटकम् (महाकवि भास विरचित) 5–106

इकाई–1 नाटककार एवं महाकवि भास विरचित नाटक का परिचय

इकाई–2 प्रतिमानाटक के प्रारम्भिक 10 श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद

इकाई–3 प्रथम एवं द्वितीय अंक के श्लोकों का अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित हिन्दी व्याख्या

इकाई–4 तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम अंक के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या, अन्वय तथा अनुवाद

इकाई–5 पात्रों का चरित्र–चित्रण

खण्ड – 'ख' : वेणीसंहार (महाकवि भट्टनारायण विरचित) 107-224

इकाई–1 नाटककार महाकवि भट्ट नारायण एवं नाटक का परिचय

इकाई–2 प्रथम अंक के आरम्भिक दस श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद

इकाई–3 प्रथम एवं द्वितीय अंक के श्लोकों का अन्वय, हिन्दी अनुवाद

इकाई–4 तृतीय चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, अंकों के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या, अन्वय तथा अनुवाद

इकाई–5 प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 के0एन0 सिंह — कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो. विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र — आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. सोमनाथ नेने — आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर — आचार्य, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. अच्छे लाल — सहायक आचार्य, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. स्मिता अग्रवाल — शैक्षणिक परामर्शदाता, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो. के.जे. नसरीन — आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ. स्मिता अग्रवाल — शैक्षणिक परामर्शदाता, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज

लेखक

डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव — प्राचार्या, आर्य कन्या पी0जी0 कॉलेज, प्रयागराज

डॉ. आनन्द कुमार श्रीवास्तव — प्राचार्य, सी0एम0पी0पी0जी0 कालेज, प्रयागराज

सितम्बर - 2023 (मुद्रित)

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज - 2024

ISBN - 978-93-83328-33-8

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।

प्रकाशक- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष - 2024.

मुद्रक - के0 सी0 प्रिटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स , पंचवटी , मथुरा - 281003.

कार्यक्रम–परिचय

स्नातकोत्तर कार्यक्रम के इस प्रश्नपत्र के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत तीन खण्डों में संस्कृत नाटकों अध्ययन किया जाना है।

प्रथम खण्ड – में महाकवि भास विरचित प्रतिमानाटकम् नाटक का अध्ययन करना है। नाटककार एवं नाटक परिचय, प्रारम्भिक दस श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद तथा प्रथम से सप्तम अंक तक के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या अन्वय तथा अनुवाद करना तथा पात्रों का चरित्र–चित्रण, इस खण्ड में निरुपित है।

द्वितोय खण्ड – में महाकवि कालिदास विरचित मालविकाग्निमित्रम् नाटक का अध्ययन किया जाना है। नाटककार एवं नाटक का परिचय, प्रारम्भिक दस श्लोंकों का संस्कृत में अनुवाद, प्रथम से पञ्चम तथा पात्रों का चरित्र–चित्रण इस खण्ड में निरूपित है।

तृतीय खण्ड – में महाकवि भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार नाटक के प्रथम से षष्ठ अङ्क का अध्ययन किया जाना है। प्रथम अंक के आरम्भिक दस श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद तथा प्रथम से षष्ठ अङ्क तक के सभी श्लोकों की हिन्दी व्याख्या, अन्वय, अनुवाद तथा पात्रों के चरित्र–चित्रण इस खण्ड में निरूपित किये गये है।

संस्कृत नाटक

MAST-107

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड – 'क'

प्रतिमानाट्कम् (महाकवि भास विरचित)

इकाई – 1 7

नाटककार महाकवि भास एवं नाटक का परिचय

इकाई – 2 31

प्रतिमानाटक के प्रारम्भिक 10 श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद

इकाई – 3 37

प्रथम एव द्वितीय अंक के श्लोकों की अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित हिन्दी व्याख्या

इकाई – 4 53

तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम अंक के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या, अन्वय तथा अनुवाद

इकाई – 5 83

प्रतिमानाटक के पात्रों का चरित्र–चित्रण

इकाई-1

नाटककार महाकवि भास एवं नाटक का परिचय

इकाई की रुपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति एवं विकास

1.2.1 पाश्चात्य अभिमत

1.2.2 नाटकों पर ग्रीक प्रभाव

1.3 नाटककार महाकवि भास एवं नाटक का परिचय

1.3.1 महाकवि भास

1.3.1.1 जीवनवृत्त

1.3.1.2 एककर्तृत्व

1.3.1.3 प्राचीनता

1.3.1.4 मतभेद

1.3.1.5 स्थितिकाल

1.3.1.6 अन्तःसाक्ष्य

1.3.1.7 बहिरंग साक्ष्य

1.3.1.8 रचनाएँ

1.3.1.9 नाट्यकला

1.3.1.10 सांगीतिक तत्व

1.3.1.11 पात्र

1.3.1.12 चरित्र-चित्रण

1.3.1.13 भाषा-शैली

प्राकृत

अलङ्कार

छन्द

रस

1.3.2 प्रतिमानाटकम्

1.3.2.1 नाम की अन्वर्थता

1.3.2.2 सारांश

1.3.2.3 समीक्षण

1.3.2.4 प्रकृति वर्णन

1.3.2.5 दोष दर्शन

1.4 उपसंहार

1.5 बोध प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

परास्नातक संस्कृत (MAST) पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आपको महाकवि भासरचित प्रतिमानाटक का अध्ययन करना है। नाटक का अध्ययन करने से पूर्व आप नाटककार के जीवनवृत्त, रचनाओं और भाषाशैली आदि अनेक विशिष्टताओं का परिचय प्राप्त करेंगें। आपकी यह भी इच्छा होगी कि पाठ्यक्रम में जो नाटक आपको पढ़ना है उसकी कथावस्तु क्या है, उसका 'प्रतिमानाटक' यही नाम रचयिता ने क्यों चुना, क्या वह नाट्य के गुणों से सम्पृक्त है, क्या उसमें अभिनेय क्षमता है, उसमें अन्य क्या विशेषताएँ हैं? आदि–आदि प्रश्न आपके जिज्ञासु मन में बार–बार उठेंगे। उस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए इकाई–1 के अन्तर्गत नाटककार एवं नाटक का विस्तार से परिचय दिया जा रहा है। आपसे अपेक्षा है कि सम्पूर्ण इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् ही इकाई–2 का अध्ययन प्रारम्भ करें, इससे आपके लिए नाटक को समझना सरल होगा। इकाई–2 के अन्तर्गत प्रतिमानाटक के प्रथम अंक के प्रारम्भिक 10 श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद किया गया है। हमें विश्वास है कि श्लोकों के संस्कृत अनुवाद के गम्भीर मनन से आपकी संस्कृत लेखन की क्षमता बढ़ेगी, संस्कृत के विद्यार्थी के लिए आज इसकी अनिवार्यता भी है।

इकाई–3–4 के अन्तर्गत नाटक के सात अंकों में उपलब्ध श्लोकों की हिन्दी में व्याख्या की गई है। श्लोकों की हिन्दी भाषा में व्याख्या का उद्देश्य है–सुगमता। सम्पूर्ण नाटक आपको सरलता से हृदयंगम कराना ही हमारा उद्देश्य है। इस हेतु प्रत्येक श्लोक का अन्वय तथा अनुवाद भी दिया गया है। तदनुसार अन्वय पर दृष्टि डालिए, अनन्तर अन्वय के अनुसार अनुवाद पढ़िए और तब व्याख्या में कही गई विशिष्टताओं का पारायण कीजिए। आपकी सफलता के लिए इस प्रकार अध्ययन करना उत्तम होगा।

इकाई–5 के अन्तर्गत नाटक में समाहित पात्रों के चरित्र–चित्रण की संयोजना है। नाटककार ने नाटकों के दृश्यों में पाठकों को रसनिमग्न करने के लिए पात्रों के चरित्रों की अवतारणा किस रूप में की है? यह जानना भी आप सबके लिए नितान्त आवश्यक है। पात्र विशेष के चरित्र को ग्रहण कर आप कवि

भास के कर्तृत्व को सरल–सरल रूप में ग्रहण कर लेंगे और कवि की उदात्त विचारधारा से भी भलीभाँति परिचित हो सकेंगे।

नाट्यविधा सम्बन्धी साहित्यिक सामग्री की दृष्टि से 'प्रतिमानाटक' का अध्ययन नितान्त अपेक्षित है। वाल्मीकि रचित रामायण से कथावस्तु लेकर भास ने उसमें नवीन कल्पनाओं का परिबृंहण कर प्रतिमानाटक के रूप में मधुर–अभिनेय रूप दिया है। देवकुल में राजवंश की प्रतिमाओं की स्थापना तात्कालिक ऐतिहासिक तथ्य है जिसका कवि ने सुन्दर–सटीक उपयोग किया है। अभिनय की दृष्टि से प्रतिमानाटक सम्पूर्ण है, रंगमंच के अनुसार दृश्यों का विन्यास तथा घटनाओं की परस्पर सम्बद्धता आपकी अध्ययन रुचि में कमी नहीं आने देगी।

1.2 संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति और विकास

कलाकार की मानवी प्रतिभा कला के रूप में अभिव्यक्त होती है। ललित कला की सामान्य अभिधा से द्योतित बहुविध कलाओं में काव्यकला प्रमुख है। काव्यकला गद्य काव्य एवं पद्यकाव्य दो धाराओं में विभक्त होकर श्रोता को रसपूरित करती है। तृप्तिविधान के आधार पर काव्य के पुनः दो भेद होते हैं–श्रव्य एवं दृश्य। नाट्यविधा काव्य का ऐसा अंग है जो श्रवणेन्द्रिय और दृश्येन्द्रिय–दोनों ही के द्वारा मन को आनन्दित करने की क्षमता रखता है।

नाट्यकला को साहित्य की सर्वाधिक रम्यकला माना गया है– 'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। संस्कृत में दृश्यकाव्य को रूपक कहा गया है, संस्कृत साहित्य में नाटक रूपक का ही एक भेद है। यथा रूपक अलंकार में मुख पर चन्द्रमा का आरोप कर दिया जाता है उसी प्रकार नाट्य में नट पर रामादि पात्रों की विशिष्ट अवस्थाओं का आरोप कर दिया जाता है। ये नट के बाह्यप्रकृति का ही अनुकरण नहीं करते प्रत्युत् मानव की अन्तः प्रकृति की, उसके मनोगत भावों की भी अनुकृति करते हैं। एक कुशल अभिनेता आरोपित पात्र के मानसिक भाव–राग–द्वेषादि का भी यथावत् नटन करने का प्रयास करता है जैसे उसके व्यक्तिगत रूप–रंग का। किसी भी अभिनयकर्ता की अभिनय सफलता का मापदण्ड भी यही है कि उसने पात्रों की आभ्यन्तर प्रकृति को कितनी अधिक मार्मिक मात्रा में अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार नाटक प्रस्तुति का एकमात्र लक्ष्य मानव की बाह्य तथा आन्तरिक प्रकृति चित्रण के माध्यम से रसोद्बोध अथवा लोकरंजन है।

भारत में नाट्य की उत्पत्ति के विषय में कोई निश्चित विचारधारा नहीं है। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार सत्ययुग में सभी प्राणी अत्यन्त सुखी थे। अतः सुख प्राप्ति का कोई उपाय खोजने की आवश्यकता नहीं थी। त्रेतायुग के आविर्भाव से संसार में दुःखों का प्रादुर्भाव हुआ, मनोविनोद की आश्यकता अनुभव की गई। देव और दानव ब्रह्मा के पास गए और अनुनय की कि संसार के दुःखों से क्षणिक मुक्ति के लिए हमें मनोरंजन का ऐसे साधन दें जिससे हम थोड़ी देर के लिए अपने दुःख कष्टों को भूल सकें।

परमपिता ने ध्यानावस्थित होकर ऋग्वेद से पाठ्य, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से संगीत तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यकला की सृष्टि की[1] सांसारिक जीवों के मनोरंजनार्थ इस नाट्यवेद को पञ्चमवेद कह कर प्रसिद्ध किया। इस नाट्यकला में भगवान् शंकर ने ताण्डव नृत्य, भगवती पार्वती ने लास्य नृत्य तथा भगवान् विष्णु ने चतुर्धा वृत्तियों का समावेश कर इस मधुर कल्पना 'नाट्य' को

पूर्णता दी। इसकी प्रस्तुति के लिए श्रेष्ठतम शिल्पी विश्वकर्मा ने रंगमंच की रचना की। वर्षा ऋतु की समाप्ति पर इन्द्रध्वज पर्व पर सर्वप्रथम 'त्रिपुरदाह' एवं 'समुद्रमन्थन' नाटक अभिनीत हुए। ब्रह्मा ने आचार्य भरत को नाट्याभिनय हेतु अधिकृत कर सौ अप्सराएँ प्रदान कीं, भरतमुनि ने उन्हें नाट्यकला की व्यावहारिक शिक्षा में दक्ष किया। आचार्य भरत को ही इस नाट्यकला को पृथिवी पर प्राणियों के मनोरञ्जनार्थ मंचित करने का आदेश हुआ। इस प्रकार भारतीय परम्परा नाटकों की दैवी उत्पत्ति में विश्वास करती है।

1.2.1 पाश्चात्त्य अभिमत

अनुकरण नाटक का मूल तत्त्व है, खेल ही खेल में किसी महापुरुष की अनुकृति से नाटक की उत्पत्ति हुई और यह कला निरन्तर विकास को प्राप्त हुई। नाटक को काव्य के चरम सुख की सीमा 'नाटकान्तं कवित्वम्' स्वीकार करने वाले पाश्चात्त्य विद्वानों की सम्मतियाँ इस प्रकार हैं–

1. डॉ0 रिजवे के मतानुसार नाटकों का उद्भव और विकास वीर पूजा से सम्बद्ध है। दिवंगत वीर मृतात्माओं के शव सुरक्षित कर श्राद्ध के दिन उनके वीरतापूर्ण कार्यों का प्रदर्शन किया जाता था। उसी प्रकार भारत में भी वीरपूजा से नाटकों का जन्म हुआ। रामलीला तथा कृष्णलीला इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। डॉ0 रिजवे के इस मत को अनेक पाश्चात्त्य विद्वान स्वीकार नहीं करते हैं।

2. डॉ0 कीथ ने प्राकृतिक परिवर्तनों की रंगमंच पर अभिनय प्रस्तुति किए जाने को नाटकों का बीज स्वीकार किया है। उनके अनुसार शीतल देशों में मई माह अत्यन्त सुखद होता है। मई माह में अनेक उत्सवों नृत्य गान समारोह के आयोजनों को 'मेपोल' कहा जाता है। भारत में वर्षा ऋतु की समाप्ति पर आयोजित इन्द्रध्वज पर्व मेघों पर इन्द्र की विजय का सूचक है।

जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि। नाट्यशास्त्र

3. डॉ0 विशेल पुत्तलिका नृत्य से नाटकों का उद्भव स्वीकार करते हैं। उनके विचार में कठपुतलियों के नृत्य की उत्पत्ति भारत में हुई और यहीं से मूल तत्त्व लेकर नाटकों की उत्पत्ति हुई। सूत्रधार–नाटकों का प्रमुख आरम्भ पात्र इसका साक्षात् उदाहरण है। परन्तु अन्य विद्वान् सूत्रधार शब्द की व्युत्पत्ति का आश्रय लेकर की गई इस व्याख्या को कमज़ोर मानते हैं।

4. डॉ0 लूडर्स एवं डॉ0 कोनो 'छाया नाटकों' से नाटक का आरम्भ मानते हैं। उनकी कल्पनानुसार पारदर्शी पर्दे के पीछे वास्तविक चरित्रों का छायाभिनय किया जाता था, पर्दे पर केवल छायाचित्र दिखता था। सम्भवतः यह मत समीचीन नहीं क्योंकि 'दूतागंध' आदि छाया नाटक नितान्त अर्वाचीन है और नाटक की उपजीव्यता नितान्त प्राचीन है।

1.2.2 नाटकों पर ग्रीक प्रभाव

नाट्यकला भारत की प्राचीन प्रतिमा कला का जीवन्त रूप है तथापि कतिपय विद्वान् इसकी उपत्ति और विकास में ग्रीक नाट्य साहित्य को कारण मानते हैं। डॉ0 वेबर, डॉ0 विण्डिश आदि इस सम्बन्ध में तर्कयुक्त प्रमाण उपस्थित

करते हैं। भारतीय रंगंच में परदे के लिए प्रयुक्त 'यवनिका' शब्द ग्रीक शब्द यवनी से लिया गया है परन्तु भारत में यवन स्त्री के लिए प्रयुक्त उक्त शब्द का प्रचलन कदापि न होकर 'जवनी' शब्द परदे के अर्थ में प्रयुक्त होता था। 'जवनिका' शब्द जवनी से ही उद्भूत है जिसका अर्थ है–नाटकीय आवरण के लिए प्रयुक्त सामान्य पर्दा।

प्राचीनता

वैदिकयुग में नाटकों के अस्तित्व के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के परस्पर वार्तालाप हैं। इन्हें वेद में 'संवाद सूक्त' कहा गया है, इन सूक्तों में नाटकीय अंश विद्यमान हैं। 'सोमकयण' का वर्णन भी नाटकीयता से ओत प्रोत है। नाट्य के तीन तत्त्व–नृत्य, गीत, संवाद वैदिक साहित्य में प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत हैं। पुरुरवा–उर्वशी, यम–यमी, सरमा–पणि, इन्द्र–इन्द्राणी आदि के प्रसंग नाटकों के विकास की प्रथम कड़ी हैं। यजुर्वेद में 'शैलूष' जाति के सदस्य यज्ञादि आयोजनों पर व्यावसायिक रूप से नाटकों का मंचन कर जीविकोपार्जन किया करते थे।

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने राम के राज्याभिषेक के अवसर पर नट, नर्तकी, नटी, नाट्यमण्डली आदि का उल्लेख किया है। महाभारत में भी नट, शैलूष, नर्तक, गायक आदि शब्द प्रद्युम्न विवाह प्रसंग में उल्लिखित हैं। महाभारत में 'रामायण नाटक' तथा 'कौबेर रम्भमिसार' नामक नाटकों के मंचन का उल्लेख है।

हरिवंश पुराण के 91–97 अध्याय तक नाटक खेले जाने का वर्णन है। श्रीकृष्ण ने वज्रनाभ नामक दैत्य का वध करने के लिए यादव समूह के साथ कपटनटों का वेश धारण किया था। महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'शिलालि' तथा 'कृशाश्व' के द्वारा रचित नटसूत्रों का उल्लेख किया था। उस काल में नाटकों के प्रचार हेतु नटों के प्रशिक्षण के लिए स्वतन्त्र सूत्रग्रन्थों की रचना की गई थी। महर्षि पतंजलि ने 'कंसवध' तथा 'बलिवध' नामक नाटकों के अभिनय प्रसार का स्पष्ट ही उल्लेख किया है। कामसूत्र में आचार्य वात्स्याथन ने नागरक के मनोरंजन वर्णन के प्रसंग में पक्ष या मास के किसी विशिष्ट दिवस पर सरस्वती मन्दिर में उत्सवायोजन तथा उस अवसर पर बाहर से आए हुए नटों–कुशीलवों द्वारा अभिनेय नाटकों के मंचाभिनय का उल्लेख किया है। विक्रम की शताब्दियों में भारत देश के प्रसिद्ध नाटककारों महाकवि भास, कालिदास आदि का आविर्भाव हुआ और तभी से नाटकों की रचना एवं उनके प्रदर्शन की जो परम्परा आरम्भ हुई वह भारत की धरोधर के रूप में सुरक्षित नाट्य मंचन विधा के रूप में आज भी विद्यमान हैं।

1.3 नाटककार महाकवि भास एवं नाटक का परिचय

1.3.1 महाकवि भास

1.3.1.1 जीवनवृत्त

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतो बहुमानः – मालविकाग्निमित्र, पृ0 2

प्राचीन भारत के अनेक महाकवियों ने जिस सम्मान के साथ महाकवि भास का नाम लिखा है, वह केवल भास को ही नहीं, सारी प्राचीन कवि परम्परा को गौरवान्वित करता है। महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में सूत्रधार के मुख से स्पष्टतः प्रश्न करवाया है कि प्रख्यात कीर्ति वाले भास,

सौमिल्ल कविपुत्र आदि कवियों की रचनाओं को छोड़कर कालिदास की कृति का इतना अधिक आदर क्यों हो रहा है। इससे सिद्ध है कि कालिदास के समय तक भास के नाटक विद्वत्समाज में पर्याप्त प्रचलित थे। कालिदास के परवर्ती कवियों बाण, वाक्पतिराज जयदेव आदि ने भी भास के रूपकों की लोकप्रियता की चर्चा की है।[2] काव्यशास्त्रियों ने भी अपने ग्रन्थों में भास के नाटकों का यथावश्यक उल्लेख किया है जिनमें भामह, दण्डी, वामन, राजशेखर, अभिनवगुप्त आदि प्रमुख हैं।[3] अतएव निस्सन्देह प्राचीनकाल में सर्वसाधरण में भास के नाटकों का प्रायः मंचन होता रहता होगा, जिससे भास प्रथितयशस् हुए होंगे।

1.3.1.2 एककर्तृत्व

महकवि भास अपने कृतित्व से जितने ही श्रद्धास्पद हैं व्यक्तित्व और कर्तृत्व से उतने ही विवादास्पद। सन् 1912 में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री को ट्रावणकोर की खोज में एक साथ 13 नाटक हस्तगत हुए। इन नाटकों को अनन्तशयन ग्रन्थमाला में प्रकाशित कर उन्होंने इन्हें कालिदास द्वारा मालविकाग्निमित्र की भूमिका में उल्लिखित प्राचीन भास की निस्सन्दिग्ध रचनाएँ माना। इन नाटकों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' सर्वोत्कृष्ट रचना है एकमत से यह भास की ही रचना है किन्तु अन्य नाटकों की प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों को सन्देह है। इन सभी नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से यह लक्षित होता है कि समग्र रूप से वे एक ही महान् लेखक की रचनाएँ हैं। प्रविधि में वे कालिदास के नाटकों की अपेक्षा कम परिष्कृत हैं तथापि आकृति और प्रकृति में मूलतः सभी नाटक पर्याप्त साम्य रखते हैं। गद्यकवि बाणभट्ट के पूर्वोल्लिखित 'सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः' पद्य का अर्थ है कि अनेक भूमियों वाले तथा पताका युक्त मन्दिरों का निर्माण करने वाले वास्तुशिल्पी की भाँति भास ने सूत्रधार के द्वारा आरम्भ बहुत भूमिकाओं (पात्रों) वाले और पताका (नाटक की मुख्य अवान्तर घटना तथा ध्वजा) से सुशोभित अपने नाटकों से पर्याप्त यश अर्जित किया। यहाँ बहुवचनान्त नाटक पद से प्रतीत होता है कि सातवीं सदी में भास के नाम से अनेक नाटक प्रचलित थे। इन समस्त नाटकों को (चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के अनन्तर सूत्रधार द्वारा मंगलपाठ से आरम्भ किया जाता है। सभी नाटकों में प्रस्तावना के लिए स्थापना शब्द का प्रयोग है। इन नाटकों के पात्रों, भावों, क्रियाओं, शब्दों, नामों आदि में एकरूपता है। अनेक बार तो उक्तियाँ, वाक्य, पद्य, छन्द, प्राकृत एवं श्लोक के चरण भी समरूप हैं। सभी नाटकों की भाषा शैली में समानता है। सभी नाटकों में पाणिनि व्याकरण के नियमों का कठोरता से पालन नहीं हुआ है अतः अपाणिनीय प्रयोग उपलब्ध होते हैं। नाटकीय पारिभाषिक शब्दावली तथा नाट्यांगों में भी समता दृष्टिगत होती है। इन सभी नाटकों में अन्त में भरत वाक्य के अभिप्राय में प्रायः समानता है जिसमें पृथिवी, राज्य, धर्म आदि के कल्याण की कामना की गई है। इन सभी साम्यों तथा संस्कृत के प्राचीन कवियों की रचनाओं में उल्लिखित भासकृत नाटकों के नामों के परिगणन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ये सभी नाटक भासरचित ही हैं।

---

2 बाण–हर्षचरित, वाक्पतिराज–गउडवहो, जयदेव–प्रसन्नराघव।

3 भामह–काव्यालंकार, दण्डी–अवन्तिसुन्दरी, वामन–काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, राजशेखर–काव्यमीमांसा, अभिनवगुप्त–अभिनवभारती।

1.3.1.3 प्राचीनता

इस सम्बन्ध में सर्वाधिक प्रामाणिक है वाक्पतिराज द्वारा गउडवहो नामक प्राकृत महाकाव्य में भास कवि को 'ज्वलनमित्र' (अग्निमित्र) सम्बोधित करना। विद्वानों का मानना है कि वासदत्ता के जलने की मिथ्या वार्ता फैलाकर भास को नाटकीय वस्तुविन्यास का उपयुक्त अवसर मिला है। अतः अग्निदाह का उपयोग करने वाले भास को 'ज्वलनमित्र' संज्ञा दी गई। राजशेखर (900 ई0) के एक श्लोक में एक विचित्र घटना उल्लिखित है— आलोचकों ने भास के नाटक चक्र को परीक्षा के लिए अग्नि में डाल दिया, स्वप्नवासवदत्ता को आग जला न सकी। इस वाक्य के दो अर्थ हैं— नाटक में राजा के नए विवाह को सम्भव बनाने के लिए मन्त्री द्वारा कल्पित की गई अग्निकांड की घटना, उस अग्निकांड में रानी को आग नहीं जला सकी, उसी प्रकार नाटक की परीक्षा की आग नाटक को नहीं जला सकी, यह कथा वाक्पति के ज्वलनमित्र शब्द को भी सार्थक करती है। जयदेव (1200 ई0) ने भास को 'कविता कामिनी का हास' कहा है। इस विशेषण से भास की हास्यरस के वर्णन में कुशलता सिद्ध होती है। भास ने अपने नाटकों में हास के सुकुमार तथा उद्धत दोनों रूपों का प्रयोग किया है। भास ने जैन और बौद्ध धर्म के प्रति विशेष सद्भावना न दिखाकर वैदिक संस्कृति का वर्णन किया है। अतएव ये सभी नाटक बौद्ध जैन, धर्म के प्रचार के पूर्वरचित प्रतीत होते हैं। इन प्रमाणों के आधार पर सभी 13 नाटकों को भासकृत तथा प्राचीन मानने में विद्वानों को कोई मतभेद नहीं होना चाहिए।

1.3.1.4 मतभेद

वास्तविकता यही है कि अनेक संस्कृत इतिहासकारों को इन नाटकों को भास की रचना स्वीकार करने में मतभेद है। उनके अनुसार समग्र नाटकचक्र को भासकवि कृत न कहकर केरल देशीय रंगमंच के अभिनेता चाक्यार नट इनका मंचन कर आज भी लोगों का मनोरंजन करते हैं। भास के नाटकों में 'विवाह' के लिए प्रयुक्त 'सम्बन्ध' शब्द आज भी चाक्यारों में प्रचलित है। इन आपत्तियों के उत्तर में कहा जा सकता है कि उत्तरभारत की राजनीति उत्तर भारत में हस्तलिखित प्रतियों के अभाव का कारण हो सकती है। यह भी संदेहास्पद है कि चाक्यारों में इतनी काव्यप्रतिभा, इतना नाट्यकौशल इतना भाषाज्ञान हो कि वे ऐसी उत्कृष्ट रचनाएँ करने में सक्षम हो सकें। यह अवश्य सम्भव है कि उन्होंने इन नाटकों को काट—छाँटकर मञ्चनानुरूप उपयोगी बनाया हो। मिताक्षरा पद्धति में विवाह अर्थ में 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग आज भी उपलब्ध होता है। अतः निर्णय के अभाव में निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए विद्वानों को 13 नाटकों को भास की ही प्राचीन रचना मानने में विप्रतिष्पत्ति नहीं होनी चाहिए।

1.3.1.5 स्थितिकाल

ग्रन्थ में आत्मपरिचय न देने की प्रथा के कारण साहित्य के इतिहास लेखकों को कवियों के कालनिर्धारण में सर्वाधिक कठिनाई होती है। भास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में भी किसी निर्णय पर पहुँचना दुस्साध्य है। स्पष्ट है कि कालिदास भास के यश से भलीभाँति परिचित थे अतः भास को कालिदास से सौ वर्ष पूर्व तो अवश्य होना चाहिए। यदि कालिदास की अन्तिम सीमा 400 ईस्वी मानते हैं तो भास को 300 ईस्वी के लगभग मानना उचित होगा। इस

कथन की पुष्टि भास के नाटकों की विशिष्ट शैली से होती है जो कालिदास अथवा परवर्ती कवियों की अलंकृत शैली से सर्वथा पृथक् है। भाषा में प्रयुक्त आर्ष शब्द, अपाणिनीय प्रयोग तथा पुरातन वातावरण भी नाटकों को कालिदास पूर्ववर्ती सिद्ध करते हैं।

भास के नाटकों की उपलब्धि के पूर्व शूद्रक रचित मृच्छकटिक नाटक को ही सर्वप्राचीन माना जाता था परन्तु नाटकों की उपलब्धता के पश्चात् भास के चारुदत्त नाटक को मृच्छकटिक का कथास्रोत माना जाता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का एक श्लोक उद्धृत किया है अतः भास को कौटिल्य के पूर्व ग्रन्थकार के रूप में प्रसिद्ध होना चाहिए। एक उपरिसीमा यह भी है कि भास निश्चित रूप से अश्वघोष के परवर्ती कवि हैं। एक उपरिसीमा यह भी है कि भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण के एक श्लोक को अश्वघोष के बुद्धचरित से ग्रहण किया है। उनकी प्राकृत भी अश्वघोष की प्राकृत की ऋणी पर अधिक सुसंगठित है अतः भास को अश्वघोष तथा कालिदास का मध्यवर्ती (300 ई0 का) होना चाहिए। यह भी निर्विवाद है कि भास भाषा, भाव तथा शैली में अश्वघोष की अपेक्षा कालिदास के अधिक निकट हैं। कुषाण युग (300 ई0) में राजाओं की मूर्तियाँ बनाने का विशेष प्रचलन (मथुराकला में) था, भास ने उसी प्रथा को (रघुवंशी राजाओं की देवमन्दिर में मूर्तिप्रतिष्ठापना) प्रतिमानाटक में गृहीत कर लिया है अतः भास को 300 ई0 के लगभग माना जा सकता है।

1.3.1.6 अन्तःसाक्ष्य

काल निर्धारण की दिशा में प्रमाणों की परीक्षा में यह कहा जा सकता है कि भास के नाटकों का आधार रामायण (600 ई0पू0), महाभारत (500 ई0पू0) तथा लोककथाएँ हैं। भास के कतिपय विख्यात नाटकों में उदयन की कथा निबद्ध है जिनका आविर्भाव छठी शती के लगभग है। वे कथाएँ उज्जयिनी वासियों को विशेष प्रिय हैं। इससे एक अनुमान मात्र यह भी लगाया जा सकता है कि कवि की वासभूमि उज्जयिनी थी। उसी नगरी को धन्य करते हुए कवि ने ईसापूर्व पाँचवी, छठी शती के आस–पास अपने नाटकों की रचना की थी।

प्रतिमानाटक के पंचम अंक में रावण द्वारा स्वयं अधीत विद्याओं–वेद, मानवीय माहेश्वर योगशास्त्र, बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र, प्राचेतस् श्राद्धकल्प का जो विवरण दिया गया है, इनमें प्राचेतस श्राद्धकल्प उपलब्ध नहीं है अन्य सभी के उल्लेख से ज्ञात होता है कि ये विद्याएँ किंचित् नामपरिवर्तन के साथ चतुर्थशती ईसापूर्व में अध्ययन–अध्यापन में प्रचलित थीं।

रूपकों के फलागम की प्रचलित पद्धति का भास के नाटकों में नियमतः निर्वाह नहीं है। कुछ नाटकों में भरतवाक्य में आशीर्वाद रूप में 'राजसिंह' पद प्रयुक्त हुआ है। राज्य की घटनाओं पर आधारित नाटकों की कथावस्तु सम्भवतः नन्दवंश से ली गई है, राजसिंह पद भी नन्दवंशीय राजाओं को सम्मान देने के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। राजगृह को राजधानी और पाटलिपुत्र को सामान्य नगर बताना भी भास को नन्दवंश का समकालिक सिद्ध करते हैं। अतएव प्रतीत होता है कि भास ने चतुर्थशती ई0पू0 के लगभग अपने नाटकों की रचना की थी।

नाटकों में निर्दिष्ट सामाजिक दशाएँ भी नाटकों के प्राचीनत्व की ओर संकेतित करती हैं। यथा प्रतिमानाटक में उल्लिखित मन्दिर परिसर में संचरणसुख के लिए बालु फैलाने (प्रकीर्णबालुकाः) की प्रथा आपस्तम्ब चतुर्थ

शती ईसापूर्व में उल्लिखित है। इसी प्रकार देवप्रतिमागृह में मृतराजाओं की मूर्तियों की स्थापना शैशुनाग कालीन (कुषाणवंशी राजाओं की मथुरा में प्राप्त मूर्तियों) वास्तुशिल्प तृतीयशती ईसापूर्व से भास को जोड़ती है।

नाट्यशास्त्र (तृतीय शती ईसापूर्व) के अनुसार नाटकों की आरम्भिक भूमिका में 'प्रस्तावना' में कवि तथा नाटक का नाम अवश्य होना चाहिए। भास के नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर 'आमुख' शब्द है, आमुख में न कवि की चर्चा है न नाटक नाम की अतएव भास की प्राचीनता नाट्यशास्त्र से पूर्व सिद्ध होती है। इन उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर भास को 300 ई0पू0 से 500 ई0पू0 के मध्य स्थापित किया जा सकता है।

1.3.1.7 बहिरंग साक्ष्य

वामन (800 ई0) ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति 403.25 में व्याजोक्ति के उदाहरण में स्वप्नवासवदत्ता 4.3 के श्लोक को अल्प परिवर्तन के साथ अध्याहृत किया है। वामन ने काव्यांलकारसूत्र 4.1.3 के उद्धरण में चारुदत्त 1.2 तथा 5.2. 13 के उदाहरण में प्रतिज्ञायौगन्धरायण के 4.2 श्लोकों को उद्धृत किया है।

बाणभट्ट (700 ई0) ने भास के नाटकचक्र की विशिष्टताओं का उल्लेख किया है। शूद्रक (400 ई0) ने भासकृत चारुदत्त नाटक से पर्याप्त सामग्री ग्रहण कर मृच्छकटिक नाटक का प्रणयन किया है। अश्वघोष (200 ई0) के बुद्धचरित 12.60 में उपलब्ध श्लोक प्रतिज्ञायौगन्धरायण 1.98 में शब्दशः अर्थशः ग्रहण कर लिया गया है।

कालिदास के काल में भास की रचनाएँ लोकप्रिय थीं, वे लब्धप्रतिष्ठ साहित्य–प्रणेता थे। कौटिल्य (400 ई0) के अर्थशास्त्र 10.3 में 'तदीह श्लोकौ भवतः' शब्दों से उद्धृत दो श्लोकों में द्वितीय भास कृत प्रतिज्ञायौगन्धरायण 4.2 से उद्धृत किया है, जिसमें शूरों को युद्ध के लिए उत्साहित किया गया है।

इस प्रकार अन्तःसाक्ष्य तथा बहिरंग प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष मिलता है कि भास का आविर्भाव काल 300 ईसापूर्व स्वीकार कर लेना चाहिए।

1.3.1.8 रचनाएँ

महाकवि भास रचित 13 नाटक उपलब्ध हैं। इन नाटकों से भास की अनुपम नाट्यकलाकौशल और कल्पनाप्रतिभा का ज्ञान होता है। इन नाटकों का दो प्रकार से वर्गीकरण किया गया है– (1) नाटकीय संविधान की दृष्टि से (2) इतिवृत्त के मूलस्रोत की दृष्टि से। इन तेरह रूपकों में अभिषेक, बालचरित, अविमारक, स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिमानाटक–नाटक कोटि में आते हैं। चारुदत्त प्रकरण तथा पंचरात्र समवकार है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण ईहामृग तथा कर्णभार, दूतघटोत्कच और उरुभंग उत्सृष्टिकांक हैं। दूतवाक्य वीथी और मध्यम–व्यायोग व्यायोग है। नाट्यशास्त्र विहित उक्त भेदों की विविधताओं पर आधारित भास की रचनाओं से उनकी नाट्यमेधा को उपलक्षित करता है। द्विविध वर्गीकरण के अनुसार इनकी श्रेणियाँ निम्न हैं–

1. रामकथाश्रित नाटक – (1) प्रतिमा (2) अभिषेक
   (3) पंचरात्र
2. महाभारतकथाश्रित नाटक – (4) मध्यमव्यायोग
   (5) दूतघटोत्कच (6) कर्णभार

(7) दूतवाक्य (8) उरुभंग

3. भागवतकथाश्रित नाटक – (9) बालचरित

4. लोककथाश्रित नाटक – (10) दरिद्रचारुदत्त

(11) अविमारक

5. उदयनकथाश्रित नाटक – (12) प्रतिज्ञायौगन्धरायण

(13) स्वप्नवासवदत्ता

1. **प्रतिमानाटक**– वाल्मीकि रामायण कथा के वनवास प्रसंग से प्रारम्भ कर राम के राज्याधिरोहण की समस्त कथावस्तु सात अंकों में प्रस्तुत की गई है। राम के वनवास और महाराज दशरथ की मृत्यु के पश्चात् ननिहाल से लौटते हुए अयोध्या के समीप मार्ग में स्थित देवमन्दिर में अपने स्वर्गीय पूर्वजों के साथ पिता दशरथ की प्रतिमा देखी तो उन्होंने पिता की मृत्यु का दुःखद समाचार जान लिया। इस कारण इस नाटक का नामकरण प्रतिमानाटक किया गया है।

2. **अभिषेकनाटक**– राम के द्वारा बालिवध, हनुमान का लंकागमन, सीता दर्शन तथा रावण के मानभंजन की घटनाएं छः अंकों में वर्णित हैं। राम के राज्याभिषेक से नाटक समाप्त होता है।

3. **पंचरात्र**– पंचरात्र तीन अंकों का 'समवकार' श्रेणी का नाट्य रूपक है। पंचरात्र में कवि ने महाभारत के विनाशक युद्ध को बचाने का प्रयास किया है। आचार्य द्रोण दुर्योधन से पाण्डवों को आधा राज्य देना पुरस्कार में मांगते हैं। दुर्योधन की प्रतिज्ञा है कि पांच रात्रियों में पाण्डवों के मिल जाने पर ही उन्हें आधा राज्य दिया जा सकता है। द्रोण के प्रयास से अज्ञातवासी पाण्डव मिल गए। दुर्योधन ने आधा राज्य देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। यह कथा कवि की मौलिक कल्पना है।

4. **मध्यमव्यायोग**– 'एकांकी' प्रस्तुत व्यायोग में भीम–हिडिम्बा का विवाह, घटोत्कच का जन्म, घटोत्कच के कोप से भीम द्वारा ब्राह्मण परिवार की रक्षा, अन्त में भीम–हिडिम्बा के मिलन से नाटक की समाप्ति है।

5. **दूतघटात्कच**– कवि ने विष्णु के प्रतिरूप कृष्ण के प्रति अतीव आदरभाव व्यक्त करते हुए घटोत्कच को दुर्योधन के पास कृष्ण द्वारा दूत रूप में भेजने की कथा का वर्णन उत्सृष्टिकांक रूपक भेद रूप स्वीकार्य 'एक अंक' में किया है।

6. **कर्णभार**– इस उत्सृष्टिकांक कोटिक 'एकांकी' में अभिमानी कर्ण की उदारता का वर्णन है। कर्ण ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को अपने कवच, कुण्डल दान में देते हैं परन्तु उसके प्रतिदान में इन्द्र का वज्र शुल्कस्वरूप माँगते हैं।

7. **दूतवाक्य**– एक अंक में प्रणीत प्रस्तुत 'वीथी' कोटि के एकांकी में पाण्डवों की ओर से कृष्ण दूत बनकर, शान्ति प्रस्ताव लेकर दुर्योधन की राजसभा में गये, दुर्योधन के हठ के कारण वहाँ से विफल होकर लौटे। नाटक में दुर्योधन के अवगुणों तथा कृष्ण की उदात्तता का सफल वर्णन है। देवपुरुष कृष्ण के प्रति कवि का समादर भाव स्पष्टतया परिलक्षित है।

8. **ऊरुभंग**– 'उत्सृष्टिकांक' में कोटि में परिगणित इस एकांकी में भीम और दुर्योधन के भयंकर युद्ध का तथा दुर्योधन की करुण मृत्यु का वर्णन है। नाटक में वीर दुर्योधन की मृत्यु का करुण वर्णन है। देवाधिदेव कृष्ण की अवज्ञा के प्रतिदान में दुर्योधन के दर्प को उचित दण्ड मिलता है। दुर्योधन इस एकांकी का मुख्य कथापुरुष तो है किन्तु नायक नहीं।

9. **बालचरित**– सात अंकों में रचित प्रस्तुत 'नाटक' कृष्ण जन्म से लेकर कंस वध तक की कथा का संघटन है। भास की मौलिक कल्पनाओं और नवीन उद्भावनाओं से समन्वित नाटक में वीर रस तथा श्रृंगार रस का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। कृष्ण के अलौकिक चमत्कार पाठक को पूर्ण सम्मोहित करते हैं।

10. **दरिद्र चारुदत्त**– दरिद्र चारुदत्त 'प्रकरण' में निर्धन किन्तु चरित्रनिष्ठ ब्राह्मण चारुदत्त एवं गणिका वसन्तसेना के आदर्श प्रेम का चित्रण है।

11. **अविमारक**– छह अंकों में समाहित इस 'नाटक' में कामसूत्र में संकेतित एक प्राचीन आख्यायिका को नाटकीय तत्त्वों से संवलित किया गया है। यहाँ राज कुमार अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी की प्रणय गाथा का मोहक वर्णन है। नाटक में विदूषक की स्वामिभक्ति प्रशंसनीय है।

12. **प्रतिज्ञायौगन्धरायण**– चार अंकों के इस 'ईहामृग' कोटि के रूप में कौशाम्बी के आखेटप्रेमी राजा उदयन को कृत्रिम हाथी के छल से उज्जयिनी नरेश महासेन ने कैद कर लिया। उदयन के कार्ययोजना कुशल मन्त्री यौगन्धरायण ने अपनी शिप्रबुद्धि और राज्यकल्याण की भावना से स्वामी को तो स्वतन्त्र कराया ही, उनकी पुत्री वासवदत्ता का भी कपटपूर्वक हरण कराया तथा उदयन तथा वासवदत्ता के हृदयों को मिलाकर विवाह भी सम्पन्न करवाया है।

13. **स्वप्नवासवदत्ता**– छः अंकों का यह नाटक प्रतिज्ञायौगन्धरायण का उत्तरानुबन्ध है, भास की सभी कृतियों में यह सर्वोत्तम है। उदयन का मन्त्री मगध के राजा की कन्या पद्‌मावती के साथ उदयन का विवाह सम्पन्न कराकर उसकी शक्ति विस्तार के लिए चिह्नित है। परन्तु उदयन अपनी प्रियतमा वासवदत्ता के प्रेम में लिप्त है। अतः मन्त्री वासवदत्ता की सहायता लेकर एक अग्निकांड आयोजित करवाता है, यह मिथ्या प्रचार करा देता है कि वासवदत्ता तथा मन्त्री उस अग्निकाण्ड में जलकर नष्ट हो गए। राजा पद्‌मावती से विवाह करने का विचार करता है। मन्त्री वासवदत्ता को पद्‌मावती के संरक्षण में अपनी बहन बताकर सौंप देता है। घटनाओं के क्रम में राजा का पद्‌मावती से विवाह हो जाता है। राजा निद्रावस्था में वासवदत्ता को देखकर उसे स्वप्न समझता है परन्तु उसे यह विश्वास होने लगता है कि रानी वासवदत्ता जीवित है। वत्सराज पर विजय के अनन्तर वासवदत्ता राजा के समक्ष लाई जाती है। पति–पत्नी का मंगल मिलन होता है।

स्वप्न में वासवदत्ता का दर्शन– यही स्वप्नवासवदत्ता नाटक के नाम का निहितार्थ है। यह रचना राजशेखर के समय प्रख्यात थी, हर्ष कवि ने रत्नावली नाटिका में संभवतः इसी रचना से प्रेरणा लेकर उस अग्निदाह

की कल्पना का अनुकरण किया है, अभिनवगुप्त इस श्रेष्ठ रचना से परिचित थे, वामन ने भी स्वप्नवासवदत्ता के एक श्लोक को काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में अधिगृहीत किया है।

1.3.1.9 नाट्यकला

भास की नाट्यरचना की प्रतिभा अप्रतिम–असाधारण थी। सभी नाटकों में भास की नाट्यकला कविहृदय से अभिव्यक्त हुई है। भास के नाटकों की कथावस्तु का क्षेत्र विस्तृत है। मानवजीवन के विविध क्षेत्रों को जानने–परखने का अनुभव रखने वाले कवि ने नाटकों में उनका कौशलपूर्ण समाहन किया है, यही कारण है कि विविधता उनके नाटकों का विशेष गुण है। उनकी कृतियों में नाट्यविधान सुविकसित है। साकार विष्णु के उपासक भास ने अपनी रचनाओं में अमूर्त की अपेक्षा मूर्तघटनाविधान को अधिक महत्त्व दिया है अतः सूक्ष्म अथवा परोक्ष वर्णन की अपेक्षा दृश्यसंयोजन द्वारा नाटकीय कथावस्तु को आकर्षक रूप में प्रस्तुत करना भास की अपनी विशिष्टता है। अपने नाट्यनैपुण्य द्वारा भास अनुपस्थित पात्रों या परोक्ष घटनाओं को भी रंगमंच पर इस चातुर्य के साथ पिरोकर प्रस्तुत करते हैं कि कथासंविधान में न शिथिलता आती है न रोचकता में कोई कमी खटकती है अपितु वे दृश्य नाटक का आधार बन प्रेक्षक को चिन्तन के लिए विवश कर देते हैं। इन नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है–अभिनेयता। रंगमंच की दृष्टि से पूर्ण उपयुक्त इनमें न कथावस्तु का अनावश्यक विस्तार है और न अभिनेयता की अवहेलना। प्रस्तुति की दृष्टि से रोचक लघु–लघु अंकों में समाप्य घटनाक्रम वाले, सटीक संवाद वाले तथा सुगठित, सुव्यवस्थित सभी नाटक अनेक शताब्दियों तक चाक्यारों द्वारा रंगमंच पर अभिनीत हुए हैं।

1.3.1.10 सांगोतिक तत्त्व

भास कार्यान्वित के निर्बाध प्रवाह के लिए प्रयत्नशील रहकर एक सहृदय हृदय कवि के रूप में सरल–सुबोध शब्दों में अपनी भावानुभूति को प्रस्तुत कर सहृदय हृदय सामाजिक की सहानुभूति बटोर लेते हैं। नाटक की प्रगति को अग्रसारित करने के लिए उन्होंने पद्यों का प्रयोग नाटकों में बहुलता के साथ किया है। संगीत के साथ ही नाट्यालंकार के रूप में नृत्य का समायोजन सामाजिकों की रुचि को प्रवृद्ध करता है। बालचरित के तृतीय अंक में हल्लीषक नृत्य का समावेश नाटक की मनोरंजकता में पर्याप्त वृद्धि सूचक है। इस नृत्य में वाद्य एवं गीत पर गोप–गोपियाँ शोभन वेष में मंच पर समान रूप से नृत्य करते हैं। अन्य नाटकों–पंचरात्र, अभिषेकनाटक आदि में भी गीत संगीत नाटक के महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में समाविष्ट हैं जिनके अभाव में नाटक नीरस और अलोकप्रिय होते।

भास के कवित्तमय छन्दों का एक अन्य कारण है स्वच्छन्दतापूर्वक एक ही पद्य में कथन–उपकथन का सन्निवेश, प्रयोग की दृष्टि से यह विधा आज भी दुर्लभ है। इसी प्रकार अविमारक के तृतीय अंक में एकालाप नाटकीय कथानक को सरल रूप में प्रस्तुत करने में सहयोगी होता है। नाटक के एक ही पद्य की दो अथवा चार पंक्तियों को एक ही पद्य में उत्तर–प्रत्युत्तर की यह विधा भास की नितान्त नवीन कल्पना है। एकाधिक विभक्त कर पात्रों द्वारा संवाद रूप में प्रस्तुत करना भी नाट्यसंयोजन में प्रभावोत्पादकता लाता है।

1.3.1.11 पात्र

भास के नाटकों का कथाफलक अतिविस्तृत तथा सुस्पष्ट है, अतः पात्रों के चरित्र–विकास के पूरे अवसर कवि को सर्वदा उपलब्ध हैं। उनके नाटकों में जीवन के सभी क्षेत्रों से सम्बद्ध और सभी आपद–विपदाओं से जूझते हुए पात्रों के दर्शन होते हैं, जिनमें दर्शक स्वयं अपनी प्रतिच्छवि पाता है, मानों संसार का एक कोना ही रंगमंच पर उतर आया हो। नाटकों के कथानक यद्यपि रामायण तथा महाभारत की घटनाओं से आहरित किए गए हैं तथा पात्रों के व्यवहार में यथावश्यक शुचिता, उत्साह और कार्यरता उन्हें वास्तविक पात्र के जीवन स्तर की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचाई पर सुप्रतिष्ठित कर देते हैं। परिस्थिति विशेष में पात्र विशेष को डालकर उससे सफलतापूर्वक बाहर निकाल लाने की क्षमता भास की पारखी दृष्टि में निस्सन्देह है।

गौण पात्रों की संख्या की भी इयत्ता भासरचित नाटकों में नहीं है, प्रचुर मात्रा में उनका नाटक में सन्निवेश है परन्तु नाटक को अनावश्यक विस्तार से बचाने हेतु या तो वे मंच पर नहीं आते, केवल उनकी ध्वनि आती है अथवा संक्षिप्त भूमिका निभा कर लौट जाते हैं। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार मंच पर पापी पात्र का वध वर्जित है। भास ने नाट्यशास्त्र के इस नियम को दृष्टि से परे रखकर, सामाजिकों को पापकर्म से विरत करने के लिए बालि, दुर्योधन, कंस आदि दुष्टात्मा पात्रों का मंच पर ही वध किया है।

1.3.1.12 चरित्र–चित्रण

भास की नाट्यकला की सफलता में पात्रों के चरित्र–चित्रण का बड़ा ही महत्त्व है। भास ने अपने बहुरंगी नाटकों में पात्रों के चरित्र को जीवन्त तो किया ही है, चरित्र के अनुरूप उत्कृष्टता का भी संवहन किया है। इस कारण चरित्रों के चित्रण स्वाभाविक तो बन ही पड़े हैं, उच्चस्तरीय अथवा निस्स्वार्थ भावनाओं से सभी को उन्होंने मार्मिकता और मनोवैज्ञानिकता के साथ प्रस्तुत कर वास्तविकता के धरातल पर खड़ा किया है। मनोभावों का द्वन्द्व और सत्य की विजय यही उनके चरित्रों का यथार्थ है। संयम अनुशासन और कर्मठता के मापदंड पर कसे हुए ये सभी चरित्र अन्ततोगत्वा आदर्श जीवन के स्वप्न को साकार करते प्रतीत होते हैं। पात्र स्त्री हो अथवा पुरुष–ईर्ष्या द्वेष के संघर्ष से ऊपर रहकर, सांसारिक कष्टों को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए कदापि विक्षिप्त अथवा विह्वल चित्त नहीं होते हैं–यही है भास के नायक–नायिकाओं के चरित्र की अपूर्व व्यंजना। नवरसों का स्पर्श पाकर सभी नाटकों के सभी चरित्र यथानुरूप खिल उठे हैं, इतिहास–पुराण के रूखे–नीरस चरित्र भी भास की लेखनी से रंगमंच पर आकर अन्तर्द्वन्द्व को रोचक शैली में प्रस्तुत करते हैं, इस रूप में घटनाक्रम को जोड़ते से प्रतीत होते हैं, नाटक का कथाप्रवाह खंडित होने से बच जाता है।

महाकवि बाण ने भास के नाटकों को 'बहुभूमिकैः' अर्थात् विविध भूमिकाओं से युक्त चरित्रों वाला कहा है। सचमुच विविध विषयों पर आधारित भास के नाटकों में चरित्रों के जो विविध रूप देखने को मिलते हैं वह संख्या अन्यत्र दुर्लभ ही होगी। समाज के प्रत्येक वर्ग से पात्रों को लेने के कारण यह संख्या अधिक हो गई है। इतने अधिक पात्रों का समावेश केवल मनुष्य जाति से ही नहीं, इतर वर्गों–देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, पशु, पक्षी आदि से भी किया गया है। सतर्कता से सभी के गुण–दोषों का आलोडन करते हुए उनके

आचरण को मनोविज्ञान की कसौटी पर कस कर प्रस्तुत किया गया है। इसके लिए यदि भास को मूल कथानक में संशोधन–परिष्करण करना पड़ा है तो वह भी उन्हें स्वीकार्य रहा है। परिणामतः कृत्रिमता से दूर भास के पात्रों के चरित्र विन्यास सहृदय प्रेक्षक की सहानुभूति के भी पात्र रहे हैं। चरित्र के चरमोत्कर्ष को छूने वाले भास के नाटकों के पात्र मानवता के अभ्युदय की घोषणा करते आज भी अजर–अमर हैं, वे हैं उदात्त चरित्र–राम, कृष्ण भरत, अर्जुन, भीम, द्रोण, उदयन, सीता, वासवदत्ता, वसन्तसेना आदि और कैकेयी भी।

1.3.1.13 भाषा शैली

भास की काव्यकला में निःसन्देह आरम्भिक साहित्यिक लक्षण दृष्टिगत होते हैं। भास की नाट्यकला आचार्य भरत के नाट्यशास्त्रीय नियमों की शृंखला में बंधी नहीं दिखती है, यह भरत की अपेक्षा भास की पूर्व विद्यमानता का संकेत है। भास की भाषा वैयाकरण पाणिनि (600 ईसा पूर्व) की अष्टाध्यायी के व्याकरणिक सूत्रों की कसौटी पर भी खरी नहीं उतरती है। यह पाणिनि की अपेक्षा भास का पूर्ववर्ती अस्तित्व सिद्ध करने हेतु सबल प्रमाण है। अनेक प्राप्य अपाणिनीय प्रयोगों तथा भाषिक अन्य विशेषताओं के अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि भास की नाट्य रचनाओं पर रामायण–महाभारत के आर्ष प्रयोगों का प्रभाव है।

भास की भाषा में एक विचित्र चमत्कारिक मनोहारिणी शाब्दिक सामंजस्य है। छोटे–छोटे वाक्यों में सरल पदावली के माध्यम से सुन्दर शुद्ध वाक्यसंरचना पाठक व दर्शक को सीधे हृदयंगम होती है। पात्रों के मुख से अक्लिष्ट स्वाभाविक संस्कृत शब्दों में वार्तालाप नाटक की सम्प्रेषणीयता में सहायक होते हैं। देश काल, पात्र और परिस्थिति के अनुसार गढ़े गए संवाद दर्शक की जिज्ञासा को अन्त तक बनाए रखते हैं। भाषा प्रभावपूर्ण होने के साथ प्रसादगुणमयी है, कथोपकथनों में इससे भाव को बोधगम्य करना सहज–सरल हो जाता है। प्रसाद के साथ माधुर्य और ओज की संयोजना सहृदय रसिकों को मुग्ध कर देती है।

शब्दाडम्बर की प्रवृति परवर्ती संस्कृत साहित्य में अतिशयता के साथ उपलब्ध होती है। दीर्घकाय समास, बोझिल पदविन्यास, कठिनतर पर्यायों का प्रयोग योग्यता प्रमाणित करने के साधन माने जाने लगे थे, प्रबुद्ध सहृदय सामाजिकों के लिए भी दुर्बोध ऐसा संस्कृत साहित्य संस्कृत भाषा के लुप्तप्राय होने का कारण बना। भास इस अवगुण से परे रहे, वैदुष्य प्रदर्शन की आकांक्षा से दूर रहकर, सरल नाटकीय भाषा में भावनिबद्ध कर उन्होंने जिस नाटक–चक्र का प्रणयन किया, वह इन्हीं कारणों से शताब्दियों तक अभिनय के प्रचलन में रहा। नाट्यदृश्य हृदय को स्पर्श ही नहीं करते, हृदय में प्रविष्ट हो जाते हैं।

शास्त्रतः काव्यशैली का सामान्य गुण है प्रसन्नता, पाण्डित्य, प्रदर्शन के लोभ में सामान्यतः अन्य कवि इसकी उपेक्षा कर देते हैं। इसके विपरीत भास की शैली में सरल रीति से शाब्दिक अभिव्यंजना पाठक/दर्शक को रसात्मकता से भिगोती है। जटिल शब्द विन्यास से रहित सरस रोचक वाक्य भास की सफलता के सूत्र हैं और उन्हीं के कारण भास साहित्य शिखर पर प्रतिष्ठित होते हैं, कालिदास सदृश युगकवि भी जिनकी ख्याति से भय खाते हैं। भास की दृष्टि थी–नाटकों की अभिनेयता पर अतः उन्होंने पर्वत से बहने वाली अनवरुद्ध नदी की भाँति अलंकारों–समासों के भार से रहित शैली को अपनाया है, रसपेशलता ने इस शैली को पर्याप्त माधुर्य व अधिक परिपक्वता प्रदान की है।

भाषा शैली को लोकोक्तियों तथा सूक्तियों से अलंकृत करना भास की इस प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है कि भास के काल में संस्कृत अवश्य लोकव्यवहार की भाषा रही होगी। भास लोककवि हैं, लोकोक्तियों तथा सूक्तियों के प्रति उनकी अभिरुचि इस तथ्य की साक्षी है। प्रत्येक नाट्यरचना में लोकोक्तियों–सूक्तियों का बहुल प्रयोग भास के नाटकों की लोकप्रियता का एक सशक्त कारण है। विभिन्न परिस्थितियों में हृदय में उपन्यस्त भावों का सटीक मुहावरे अथवा लोकोक्ति के माध्यम से उपन्यास भास की निजी विशेषता है।

1.3.1.13.1 प्राकृत

संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग नाट्यशास्त्र की प्राचीन परम्परा है। सामान्य रूप से प्राचीनतम आर्य भाषाओं के लिए 'संस्कृत' तथा मध्यकालीन भारतीय भाषाओं के लिए 'प्राकृत' पदों का व्यवहार किया जाता है। 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रकृति' अर्थात् जनसाधारण है, अतः प्राकृत का अर्थ है जनसामान्य की भाषा। संस्कृत संभाषण का प्रचलन था शिष्ट सुशिक्षित समाज में, प्राकृत अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित लोगों की भाषा हुई।

सामान्यतः संस्कृत नाटकों में दो प्रकार की प्राकृत प्रयुक्त होती है–पद्यभाग में महाराष्ट्री प्राकृत तथा गद्यभाग में शौरसेनी प्राकृत। भास के नाटकों में पाई जाने वाली प्राकृत सामान्यतः शौरसेनी है, जो सभी नाटकों में अनुस्यूत है केवल दूतवाक्य में नहीं, जिसमें प्राकृत है ही नहीं। शौरसेनी प्राकृत मध्यदेश की भाषा होने के कारण संस्कृत के सर्वाधिक निकट है, भास के स्त्रीपात्र शौरसेनी प्राकृत में ही वार्तालाप करते हैं। मागधी के एक प्रभेद 'अर्धमागधी' का प्रयोग भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण, चारुदत्त, बालचरित, पंचरात्र तथा कर्णभार में किया है।

1.3.1.13.2 अलंकार

भास ने अपने नाटकों के अलंकरण में पर्याप्त रुचि ली है। कविहृदय ने कविताकामिनी को समुचित अलंकारों से आक्रान्त करने में कोई कमी नहीं छोड़ी है। उन्होंने केवल उन्हीं अलंकारों का प्रयोग किया है जिनसे कविता बोझिल न होकर प्रेक्षक को सरलतया हृदयंगम हो जाए। इस क्रम में उन्होंने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, सन्देह आदि अलंकारों में पद्यों को निबद्ध किया है। अलंकारों का भासरचित वितान कवि के काव्यकर्म में सहायक होता है। उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार प्रदर्शन के लिए नहीं, रसचर्वणता के लिए हैं। शब्दालंकार हो या अर्थालंकार, वे दोनों का मंचनोपयोगी प्रयोग करते हैं।

श्लेषालंकार के प्रयोग से वे नाटकीय पात्रों का संकेत कर देते हैं, इसे मुद्रालंकार कहते हैं। इस प्रकार के प्रयोग से काव्य में स्वाभाविकता अनायास आ जाती है, वर्णन भी सजीव और सरस हो जाते हैं।

1.3.1.13.3 छन्द

भास ने संस्कृत छन्दःशास्त्र के नियमों का निष्ठापूर्वक पालन किया है। रामायण–महाभारत पर निर्भर होने के कारण उनके साहित्य में श्लोक (अनुष्टुप्) का प्रयोग सर्वाधिक है। भासरचित लगभग ग्यारह सौ पद्यों में से लगभग साढ़े चार सौ पद्यों को श्लोक में निबद्ध किया गया है। श्लोक के प्रति उनकी

अभिरुचि नाटकों में तीव्रगति और सारल्य को स्पष्ट करती है। जटिल छन्दों में वसंततिलका, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, वंशस्थ, पुष्पिताग्रा, शिखरिणी, शालिनी, द्रुतविलम्बित आदि छन्दों का विधान बाहुल्य है। सरल छन्दों में आर्या के प्रयोग के प्रति उनका प्रेम नहीं दिखता है। भास की छन्दोयोजना छन्दःशास्त्र पर उनके पूर्ण अधिकार को सूचित करती है।

1.3.1.13.4 रस

भास के तेरह नाटकों में नवरसों का सुन्दर परिपाक आस्वाद्य है। उन्होंने वीर, करुण, बीभत्स, अद्‌भुत, भयानक, रौद्र, हास्य, श्रृंगार और शान्त रसों के सन्निवेश से अपनी रचनाओं को समृद्ध किया है। विषय और पात्र के अनुरूप रस प्रयोग वृत्तविशेष के उपकारक बनकर प्रेक्षक को विस्मयविमुग्ध करने में नितान्त सक्षम हैं। आत्मभूत रस की सार्थकता भी इसी में है।

1.3.2 प्रतिमानाटक

महाकवि भास का नाम साहित्य की सर्वाधिक रोचक विधा नाट्य के क्षेत्र में पर्याप्त समादर के साथ लिया जाता है। भास रचित तेरह नाटकों में प्रतिमानाटक सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। भास ने नाटक के कथानक में रामकथा का आश्रय लिया है, अभिनय की सुविधा तथा रोचकता की दृष्टि से इसमें मूल कथानक से यत्र–तत्र किंचित् परिवर्तन कर दिए गए हैं। वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड और अरण्यकांड में वर्णित वृत्त ही इस नाटक की आधारशिला हैं।

1.3.2.1 नाम की अन्वर्थता

प्रस्तुत नाटक का नाम प्रतिमानाटक है। नाटक का नाम चयन करने में नाटककार के मस्तिष्क में कुछ बिन्दु विचरित होते हैं, यथा– नाटक की कथावस्तु, चरित, नायक, घटनाविशेष–ऐसे ही किसी तथ्य को आधार बनाकर नाटककार नाम चयन करता है। नाटक के सटीक नाम से नायककार की कलाक्षमता की भी परख होती है। नामश्रवण मात्र से नाटक के दर्शन, पठन के प्रति सहृदय की रुचि जागृत हो जाती है। कवि क्षेमेन्द्र ने इसी को लक्ष्य कर औचित्यविचारचर्चा में लिखा है– नाम्ना कर्मानुरूपेण ज्ञायते गुणदोषयोः। इसी अन्वर्थता को लक्षित कर कवि भास ने नाटक की एक प्रमुख घटना के आधार पर इस नाटक का नामकरण किया–प्रतिमानाटक। मृत राजाओं के प्रतिमा निर्माण की कथा भास की मौलिक कल्पना है।

प्रतिमानाटक के तृतीय अंक की घटना में एक कारुणिक दृश्य है–भरत ननिहाल से लौट रहे हैं। शुभ समय की प्रतीक्षा में वे अयोध्या की सीमा के बाहर एक देव मन्दिर में विश्राम के लिए प्रवेश करते हैं। वहाँ रघुवंश के दिवंगत राजाओं की मूर्तियों की पंक्ति में पिता दशरथ की प्रतिमा स्थापित देखकर भरत को उनकी मृत्यु का अनुमान हो जाता है। इस घटना को मूल में रखकर महाकवि ने नाटक का नामकरण किया–प्रतिमानाटक।

1.3.2.2 सारांश

कतिपय विद्वानों का मत है कि इस नाटक का नाम स्वप्नवासवदत्ता तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की भाँति कुछ बृहत् रहा होगा, यथा–प्रतिमादशरथ।

अंक–1

महाराज दशरथ के राजप्रासाद में अभिषेक की तैयारी चल रही है। महाराज ने स्वयं राजा के अभिषेक की तिथि निश्चित की है किन्तु यह कार्य इतनी शीघ्रता में किया गया है कि अन्तःपुरवासियों को भी इसकी सूचना नहीं है। कंचुकी प्रतिहारी को सूचना देता है कि महाराज दशरथ ने रामचन्द्र के अभिषेक की सामग्री उपस्थित करने के लिए आज्ञा दी है। महाराज की आज्ञानुसार राजछत्र, राजसिंहासन, मंगलकलश आदि सभी सम्भार एकत्र कर राजा को सूचित कर दिया जाता है।

अवदातिका नामक परिचारिका नाट्यशाला से वल्कलवस्त्र लेकर सीता के हर्म्यकक्ष में प्रवेश करती हैं। सीता चोटियों के साथ हास–परिहास में लगी हैं। वस्त्रों से आकृष्ट सीता परिचारिका से वल्कल मांग कर धारण करती हैं। तभी एक अन्य चेटी आकर राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनाती है। प्रसन्नमना सीता उसे अपना आभरण देती हैं। अचानक मंगलवाद्य बजने बन्द हो जाते हैं। सभी शंकाकुल हो उठते हैं।

श्रीरामचन्द्र सीता के हर्म्यकक्ष में आते हैं। वे प्रसन्न हैं कि राज्याभिषेक रोक दिया गया, अब वे राज्यभार से मुक्त रहेंगे। वल्कलवस्त्र खेल में ही वे भी धारण करते हैं। अभिषेक के समय वल्कल धारण करने से सीता को अमंगल की आशंका होती है। कंचुकी सूचना लाता है कि आपकी माता कैकेयी के कारण आपका अभिषेक रोक दिया गया है। कैकेयी ने राज्यपद भरत के लिए, चौदह वर्ष का वनवास आपके लिए मांगा है। महाराज महारानी के दोनों वचन सुनकर मूर्छित हो धरती पर पड़े हैं। क्रोध से आक्षिप्त लक्ष्मण राम–सीता के पास पहुँच कर सम्पूर्ण स्त्री जाति को नष्ट करने के लिए उद्यत होते हैं। रामचन्द्र लक्ष्मण को शान्त करते हैं। सीता और लक्ष्मण के वनगमन के आग्रह को स्वीकार कर राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन के लिए प्रयाण करते हैं। अंक का प्रारम्भ वात्सल्य रस के प्रसन्न वातावरण में हुआ, अंकान्त में करुण रस के विस्तार से समाप्ति हुई।

अंक–2

शोकविह्वल महाराज समुद्रगृह में चेतनाशून्य से लेटे हैं, वे राम–सीता–लक्ष्मण को याद कर बार–बार विलाप–प्रलाप करते हैं। कौशल्या तथा सुमित्रा सायास उन्हें आश्वस्त करने का प्रयत्न कर रही हैं। सुमन्त राम–सीता–लक्ष्मण को वन पहुँचा कर थकित से खाली रथ लेकर अयोध्या के राजप्रासाद में प्रवेश करते है। सुमन्त्र को अकेले आया देख राजा अधिक विह्वल होकर अचेत हो जाते हैं। वार्धक्य की जर्जरावस्था में इस अपार दुःख को सहने में असमर्थ उनके प्राण निकल जाते हैं। करुण रस क्रमशः बीभत्स रस में परिणत हो जाता है।

अंक–3

पिता की अस्वस्थता का समाचार सुन भरत मातुलगृह से अयोध्या लौट रहे हैं। अयोध्या की सीमा के बाहर रघुवंशी राजाओं की मूर्तियों से युक्त एक मन्दिर है, उसमें दशरथ की मूर्ति की स्थापना का संस्कार सम्पन्न होना है। अयोध्या से रानियों के आगमन की प्रतीक्षा हो रही है। नगर से एक भट सन्देश लेकर आता है कि कृतिका नक्षत्र के अवशिष्ट एक चरण के बीत जाने पर शुभ मुहूर्त में आप नगर में प्रवेश करें भरत विश्राम करने के लिए इक्ष्वाकुवंशी देवमन्दिर में प्रविष्ट होते हैं। प्रतिमागृह का संरक्षक देवकुलिक उन्हें क्रमशः

दिलीप, रघु और अज की प्रतिमाओं का परिचय देता है। भरत उसी पंक्ति में दशरथ की प्रतिमा देखकर देवकुलिक से पूछते हैं–क्या यहाँ जीवित राजाओं की भी मूर्ति स्थापना होती है। देवकुलिक से यह उत्तर सुनकर कि नहीं, केवल मृत नृपतियों की ही, भरत मूर्छित हो जाते हैं। देवकुलिक उन्हें पहचान जाता है, मूर्च्छा टूटने पर वह उन्हें राम के वनवास का वृत्तान्त सुनाता है। अपने निमित्त राम का वनगमन सुनकर भरत पुनः मूर्छित हो जाते हैं। इसी समय सुमन्त्र के साथ रानियाँ वहाँ पहुँचती हैं। भरत कौशल्या से अपनी अनपराधता बताते हैं, समग्र अनर्थों का मूल कारण माँ को मानकर वे माँ कैकेयी की भर्त्सना करते हैं। वशिष्ठ, वामदेव आदि ऋषि भरत का राज्याभिषेक करना चाहते हैं परन्तु भरत राम–लक्ष्मण के पास वन जाने के लिए परिवार के साथ प्रस्थान करते हैं।

अंक–4

राम दण्डकारण्य में सीता और लक्ष्मण के साथ रहते हैं। भरत सुमन्त्र के साथ राम की कुटिया पर पहुँच गए। भरत के स्वर को पहचान कर राम उनसे मिलने को उत्कंठित हैं। वे सीता को भरत को लाने भेजते हैं। सीता भरत का स्वागत कर उन्हें राम के पास ले आती हैं। राम–भरत परस्पर स्नेहार्द्र होकर मिलते हैं। भरत सस्नेह लक्ष्मण को हृदय से लगा लेते हैं। माताएँ भी सन्तानों को देखकर प्रेमाभिभूत होती हैं। भरत राम से लौट चलने के लिए अनुनय–विनय करते हैं। राम भरत से पिता के वचनों की रक्षा के लिए प्रस्ताव करते हैं कि वे ही जाकर राज्यभार संभालें। वह स्वयं चौदह वर्ष पूरे कर अयोध्या लौटेंगे। भरत कष्ट के साथ उनका यह प्रस्ताव स्वीकार कर राम की चरणपादुकाएँ तथा राम से वनवास की अवधि पूर्ण होने पर लौटकर राज्यभार स्वीकार करने का वचन लेकर अयोध्या लौटते हैं। कवि भास ने इस अंक में भ्रातृत्व मूलक वात्सल्य रस को प्रवाहित किया है।

अंक–5

सीता आश्रम के वृक्षों को सींच रही हैं। राम पिता के श्राद्ध के लिए चिन्ताकुल हैं। वे पितरों का सामर्थ्यानुकूल श्राद्ध इस वन में कैसे करें। अन्ततः सीता का परामर्श मानकर वे वन्य पुष्पों, फलों से पिता का श्राद्ध करने को तैयार होते हैं। तपोवन में राक्षसों के दमन से रुष्ट रावण कपटी परिव्राजक के वेश में आश्रम में आता है। राम–सीता उस अतिथि का स्वागत सत्कार करते हैं। रावण स्वयं को नाना शास्त्रों तथा प्राचेतस् श्राद्धकल्प में निष्णात काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण बताता है। वह राम को स्वर्णमृग में निवाप करने का उपदेश देता है। वह कहता है कि वे स्वर्णमृग यहाँ चित्रकूट में दुर्लभ हैं तथा हिमालय में सुलभ। राम हिमालय पर्वत जाने के लिए उद्यत होते हैं अचानक एक स्वर्णमृग उधर से आ निकलता है। लक्ष्मण के अन्यत्र चले जाने से राम मृग के पीछे धनुष–बाण लेकर दौड़ पड़ते हैं। सीता रावण का अभिनन्दन करने के लिए अकेली रह जाती हैं। अवसर का लाभ उठाकर अपना परिचय देकर रावण उन्हें उठाकर हठात् भाग निकलता है। सीता की करुण चीखें सुनकर गृध्रराज जटायु रावण पर आक्रमण करता है।

अंक–6

बलिष्ठ रावण के द्वारा जटायु का वध कर दिया जाता है। दो तपस्वी सीता हरण और जटायु वध की सूचना देने के लिए राम को वन में खोजने निकलते हैं। भरत के द्वारा (राम की कुशलता को जानने के लिए) सुमन्त्र वन

को भेजे जाते हैं। सुमन्त्र जनस्थान से लौट कर अनिच्छापूर्वक भरत को सीताहरण तथा राम–लक्ष्मण के अन्यत्र किष्किन्धा वन को चले जाने का समाचार सुनाते हैं। सीताहरण के दुःख से सन्तप्त भरत कैकेयी के पास आकर उसे सभी अनर्थों का कारण कहते हैं। पुत्र के उपालम्भों से जर्जर कैकेयी राजा की शापकथा का सम्पूर्ण रहस्य बता कर भरत के समक्ष स्वयं को निरपराधिनी सिद्ध करती है। वह कहती है कि वह तो राम के लिए केवल चौदह दिन का निर्वासन चाहती थी, त्रुटिवश दिवस के स्थान पर वर्ष मुख से निकल गया। भरत माँ से क्षमा माँगते हैं तथा राम की सहायता के लिए सेना सहित प्रस्थान करने की इच्छा प्रकट करते हैं। यहाँ कवि ने अंकारम्भ में करुण रस के माध्यम से जटायुवध तथा रहस्योद्घाटन के प्रसंग में अद्भुत रस का सन्निवेश किया है।

अंक–7

तपस्वी सूचित करता है कि रामचन्द्र ने रावण का वध किया है, विभीषण का अभिषेक किया है और वानरों के साथ जन्मस्थान आ रहे हैं। मुनिजन राम–सीता का प्रेमपूर्वक सम्मान करते हैं। भरत भी सुमन्त्र तथा माताओं के साथ जनस्थान को पहुँचते हैं। सबका प्रेममय मिलन होता है। सभी ऋषि, प्रजा, माताएँ और अमात्य राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव करते हैं, कैकेयी उसका अनुमोदन करती है। रामचन्द्र राज्यभार स्वीकार करने की स्वीकृति देते हैं। अन्त में सभी लोग पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। भरतवाक्य से नाटक की समाप्ति होती है।

1.3.2.3 समीक्षण

प्रतिमानाटक रामायण से उद्धृत इतिवृत्त का कविकल्पनाप्रसूत नवीकृत रूपान्तरण है। रामायण के प्रख्यात लोकप्रिय रूपक में परिवर्तन कर उसे जनग्राह्य बनाना सरल कार्य न था। भास ने सावधान रहकर इतिवृत्त का कहीं नवीकरण करते हुए, कहीं रूपान्तरण करते हुए, कहीं वास्तविकता को अक्षुण्य रखते हुए नाट्यरचना की है। रामलीला शैली का अनुकरण करते हुए भी कवि ने सीता–राम की वल्कलप्रियता का नाटकारम्भ में ही संकेत देकर उनके जीवन के आगामी अनेक वर्षों की कार्यविधि का संकेत कर दिया है। कथाप्रवाह को निर्बाध रूप से प्रवाहित होने में भी इससे सरलता हो गई है। प्रतिमा के राम कैकेयी भक्त हैं, न वे स्वयं माँ से रुष्ट होते हैं न लक्ष्मण को होने देते हैं, वे तो लक्ष्मण को 'आः अपण्डितः खलु भवान्' कहकर तर्जना भी करते हैं।

प्रतिमागृह की कविकल्पना सम्पूर्ण नाटक की केन्द्रभूमि है यह घटना न तो आकस्मिक है न चमत्कारिक। इस अपूर्व नियोजित घटना के स्वाभाविक समावेश से दशरथमरण जैसा दुःखद–कारुणिक प्रसंग युवराज भरत के समक्ष अनकहे ही उद्घाटित हो जाता है। प्रतिमागृह की यह योजना नाटक को चतुर्दिक आच्छादित कर अतीत से वर्तमान को, वर्तमान से भविष्य को जोड़कर सुकुमार युवराज को क्षण भर में ही धीर–गम्भीर राजपथ पर खड़ा कर देती है। भरत के साधारण से जीवन को मुहूर्त मात्र में ही असाधारण कर्मसंकुल बना देती है। इसी घटना के पश्चात् भरत द्वारा लिए गए सभी निर्णय, सभी व्यवहार, सभी क्रियाकलाप उन्हें जीवन के चरमोत्कर्ष पर स्थापित करते हैं और वे संसार में युग–युग के लिए एक उत्कृष्टतम आदर्श के रूप में सार्वलौकिक हो जाते हैं।

भरत के समक्ष सुमन्त्र की साक्षी में कैकेयी का महाराज की शापकथा सुनाकर रहस्योद्घाटन करना भास की अन्य महत्त्वपूर्ण मौलिक कल्पना है। इससे न केवल कैकेयी के अपितु सम्पूर्ण नारी जाति के मातृत्व और सतीत्व की रक्षा होती है। सहृदय भी यह सोचने को विवश हो जाता है कि ईश्वर निर्धारित भवितव्यता सदा सदुद्देश्य के लिए ही होती हैं। विधि के विधान की आलोचना से पूर्व गहराई से चिन्तन करके ही निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए।

इनके अतिरिक्त भी जो अवान्तर वृत्त कवि ने नाटक में अपनी प्रतिभा से समाहित किए हैं, उनसे पात्रों की गरिमा में वृद्धि होती है और नाटक की अभिरामता में। ये मध्यस्थ घटनाएँ खण्ड–खण्ड में आस्वाद्य हैं और समग्रता में अभिरोच्य। नाटक का प्रत्येक इतिवृत्त समुचित सारगर्भित और सटीक है कि पाठक स्वतः आवर्त्त में डूबकर रसानुबोध से तृप्त होता है।

1.3.2.4 प्रकृति वर्णन

महाकवि भास की सूक्ष्मदृष्टि ने इस तथ्य की अनुभूति कर ली थी कि मानवजीवन प्रकृति के अभाव में शून्य है। प्रकृति से सम्बद्ध रहकर ही मनुष्य की दिनचर्या सुचारु चलती है अन्यथा जीवन को अनेक आपद–विपदाएँ घेर लेती हैं, प्रकृति के साहचर्य से ही जिनसे त्राण सम्भव है। नाट्यरचना निष्णात कवि को यह भी ज्ञात था कि नाट्य प्रेमी आपद–विपद ग्रस्त होने पर न अभिनय में रुचि लेगा न प्रेक्षण में अतएव नाट्य के माध्यम से प्रकृति प्रेम तथा प्राकृतिक उपहारों के संरक्षण के प्रति उसे सचेत करना चाहिए। अवसर पाते ही उन्होंने अपनी नाट्यरचनाओं में प्रकृति के सांगोपांग चित्र प्रस्तुत कर पाठक को तल्लीन कर दिया है। प्रकृति का पूर्ण बिम्बग्रहण कराने की अभिलाषा से उनकी दृष्टि पूरे कैनवास पर है।

प्रतिमानाटक में प्राकृतिक दृश्यविशेषों के वर्णन में कवि ने प्रकृति के मनोहारी अंकनों से नवोन्मेषों को साकार किया है। एक–एक दृश्य में प्रकृति जल की भाँति एकाकार हो गई है। कल्पना के मनोरम रंगों से जो सुन्दर चित्र बना है वह परम दुःख में भी सुख की अनुभूति कराने में सक्षम है। अकृत्रिमता और औचित्य के मंजुल सामञ्जस्य से परिपूर्ण राम के वनगमन में दशरथ के मुख से निकली यह उक्ति सचमुच अपनी विलक्षणता का आभास कराती है–सन्ध्याकाल में सूर्य के समान राम चले गए, सूर्य का अनुगमन करने वाले दिन के समान लक्ष्मण चले गए। सूर्य और दिवस के अभाव में अदृश्य छाया के समान सीता नहीं दिखती है–

सूर्य इव गतो रामः सूर्यदिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता।। 2.7।।

भास अराजक जनपद के घोर विरोधी हैं। राजा के बिना राज्य नहीं चल सकता है जैसे ग्वाले के बिना गाएँ नहीं पल सकती हैं–

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः।। 3.24।।

भास प्रकृति के नाना रूपों के जागरूक द्रष्टा हैं, विशेषकर बाह्य प्रकृति के चित्रण में उनका मन खूब रमा है। पंचवटी में अपने सुकुमार करों से पौधों को सींचने वाली सीता का कठिन कठोर रूप दर्शनीय है– जो हाथ दर्पण

उठाने में थकता था, आज वह घड़ा उठाने में भी नहीं थकता है। कष्ट नारी और लताओं–दोनों को कठोर बना देता है–

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि सः नैति खेदं कलशं वहन्त्याः।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति।।

प्रकृति के स्वाभाविक वर्णनक्रम में ननिहाल से लौटते भरत द्वारा द्रुतगामी रथ से मार्ग के चतुर्दिक दृश्यमान प्राकृतिक चित्रों की व्याख्या से प्रकृति मानों नेत्रों के समक्ष सजीव हो उठी है। ऐसा प्रतीत होता है मानों इस चित्र के लिए कवि ने कैमरे का प्रयोग किया हो। रथ की तीव्र गति से वृक्ष छोटे दिखाई देते हैं, दौड़ते से प्रतीत होते हैं, उछलते हुए जलवाली नदी की भाँति धरती पहिए की धुरी में गिरती प्रतीत होती है, तेजी से घूमने के कारण रथचक्र के अरे नहीं दिखाई पड़ते, घोड़ों के टापों से उठने वाली धूल पीछे नहीं, आगे गिर रही है–

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया,
नवदोवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितीमव जवाच्चक्रवलयं
रथश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति।।

कवि कालदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा दुष्यन्त के मुख से शिकार के लिए रथ से जाते समय रथ की तीव्र गति के कारण प्रकति के हूबहू यही चित्र प्रस्तुत किए हैं।

प्रकृति के अन्तःरूपों के चित्रण में सरल बोधगम्य भाषा में दृश्य की प्रस्तुति कवि की काव्यप्रतिभा का सरल नमूना है। वृक्षों में जलसेचन की स्वाभाविक प्रक्रिया का वर्णन दर्शनीय है–

भ्रमति सलिलं वृक्षावर्त्ते सफेनमवस्थितं
तृषितपतिता नैते क्लिष्टं पिबन्ति जलं खगाः।
स्थलमभिपतत्यार्द्राः कीटविले जलपूरिते
नववलीयनो वृक्षामूले जलक्षयरेखा।।

प्रकृति की उद्भावना में अलंकारों का सहयोग भास कवि के लिए सामान्य है। अलंकारों के प्रयोग से प्राकृतिक चित्र सजीव और सबल हो जाते हैं। दृष्टान्त अलंकार के माध्यम से प्रकृति के अनेक रूपों की प्रस्तुति विषय को दृढ़ता से प्रस्तुत करती है–राहु के द्वारा ग्रसे जाने पर भी रोहिणी चन्द्रमा के पीछे चलती है, वृक्ष के गिरने पर लता भी उसके साथ गिर जाती है, कीचड़ में फंसे हाथी को हथिनी कभी नहीं छोड़ती है अतः सीता को भी वन जाने की अनुमति दीजिए–

अनुचरति शशांक राहुदोषेऽपितारा,
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न करेणुः पंकलग्नं गजेन्द्रम्,
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः।।

भास के प्रकृति वर्णन की अभिरुचि का वर्णन करते समय यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि वे नाटककार हैं कवि नहीं। नाटक की पृष्ठभूमि के अनुसार दृश्य विशेष के लिए जितना समुचित हो, भास के पास प्रकृतिवर्णन के उतने ही अवसर हैं। रंगमचीय प्रतिभा के धनी भास का प्रतिमानाटक उस दृष्टि से समादरणीय है।

1.3.2.5 दोष दर्शन

भास के नाट्यसंविधान में गुणप्रविष्टि के साथ ही दोषों का परिगणन भी अपरिहार्य प्रतीत होता है। इन दोषों की गणना से भास की उत्कृष्टता में कोई न्यूनता नहीं आती है परन्तु ये दोष पाठक का ध्यान बरवस खींच ही लेते हैं। दोषदर्शन से पूर्व यह ध्यान में रखना अनिवार्य है कि भास ने नाटकों का संयोजन मंचीय दृष्टि से किया है जहाँ रचनाकार को बहुत अधिक स्वतन्त्रता, बहुत अधिक विस्तार के अवसर नहीं होते, सीमित समय और सीमित स्थान में ही सभी अवान्तर इतिवृत्तों को मूलकथा के साथ जोड़ना होता है। इसी के साथ परिप्रेक्ष्य में यह विचार भी अनुस्यूत रहता है कि कवि विशेष रचित नाटक लोकप्रिय हो तथा समाज को एक स्वस्थ सन्देश देने में सक्षम भी। भास के प्रतिमा नाटक के दृश्य रंगमंचीय व्यवस्था से जुड़े होने के कारण, अभिनय की दृष्टि से परिपक्व होने के कारण निस्वार्थ त्याग का सामाजिक सन्देश देने में नितान्त सक्षम है। हाँ, संवाद आख्यान आदि की दृष्टि से उसमें कुछ न्यूनताएँ हैं, कतिपय व्याकरणिक दोष भी है, कहीं कालान्विति में चूक हो गई है, कहीं भावों का पिष्टपेषण हो गया है परन्तु रसबोध में कहीं कभी बाधा नहीं आई है अतः काव्यकला की चमक फीकी नहीं पड़ने पाई है, मंचीय उपयोगिता में कमी नहीं आने पाई है।

प्रथम उल्लेख दोष तो यह कि पितृभक्त राम को यह सूचना मिलती है कि आपके पिता आपका वनगमन सुनकर गिरते पड़ते आपसे मिलने आ रहे हैं, राम उनसे मिलने को स्पष्ट मना कर बिना मिले वन चले जाते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम से ऐसी अपेक्षा नहीं थी, कवि के इस संवाद से राम का चरित्र हनन होता है, राम का चरित्र हनन प्रेक्षक के हृदय पर चोट करता है। राम सीता से कहते हैं– अलंकार क्यों उतार दिये, **तेन हि अलंक्रियताम्। अहमादर्श धारयिष्ये।** क्या भावी कोशलनरेश का पत्नी के अलंकरण के लिए दर्पण पकड़ कर खड़े होना शोभा देता है? क्या अयोध्या के भावी सम्राट के पास इतना समय है? राम को बिना किसी से व्यक्तिगत सूचना मिले ही केवल भरत और सुमन्त्र के जन्मस्थान आने से पिता की मृत्यु का अनुमान हो जाता है। मृत्यु जैसी दारुण घटना का अनुमान–यह अविश्वसनीय सा है। यहाँ आकर पाठक एक क्षण के लिए ठहर सा जाता है। महाराज दशरथ के विलाप–प्रलाप में पिष्टपेषण के कारण सम्पूर्ण एक अंक में इतिवृत्त सिमटा है और राम–रावण युद्ध की महत्त्वपूर्ण घटना का रंचमात्र उल्लेख भी नहीं। अतः कहीं लम्बे वर्णनों से ऊब लगती है तो कहीं विवरण में अधूरापन झलकता है। रावण का कंचनमृग की श्राद्धकर्म में उपयोगिता का परामर्श सुनकर, उसकी प्रामाणिकता परखे बिना, अपरिचित के कथनमात्र पर विश्वास कर राम का मृग के पीछे तत्क्षण निकल जाना, यह भी ध्यान न देना कि एक नितान्त नवागन्तुक के साथ पत्नी अकेली रहेगी–राम के भव्य व्यक्तित्व को शोभा नहीं देता ,जैसे कोई छोटा बालक लोभ में खिलौने के पीछे दौड़ गया हो। ये सभी प्रसंगतः प्राप्त दोष क्षुद्र ही सही परन्तु धीरोदात्त नायक की कीर्ति को धुँधला तो अवश्य करते हैं।

नारीपात्रों में जगप्रसिद्ध सीता हों या कौशल्या–किसी के चरित्र का उत्कर्ष शिखर तक नहीं पहुँचता, उनकी विशिष्टताओं का उल्लेख न होने से वैयक्तिगुणों की समग्रता में झलक नहीं मिलती है। अतः ये दोनों प्रमुख नारीपात्र दर्शक के हृदय पर छाप नहीं छोड़ते हैं। कैकेयी के दो वरदान मांगने के मूल में राजा का कल्याण रूप कारण दिखा कर कवि ने कैकेयी के कलंक परिहार का प्रयास अवश्य किया है, यह प्रशस्य है। पर कैकेयी ही क्यों राजनीति का मोहना बनी? क्या सचमुच दिवस के स्थान पर वर्ष जिह्वा स्खलन था या सुविचारित त्रुटि क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो मन में होता है वह अनजाने में जिह्वा पर आ जाता है।

1.4 उपसंहार

महाकवि भास मनुष्य थे, मानव रचना में दोष अनायास नहीं, अनायास मिल सकता है। यथा एक दो दोषों के होने से रत्न के रत्नत्व में कमी नहीं आती, उसी प्रकार महाकवि भास का वैदुष्य अल्पाल्प दोषों से अप्रभावित रहकर नितान्त निर्मल–धवल है। वे संस्कृत साहित्याकाश के प्रोज्ज्वल तारक की भाँति रंगमंचीय समृद्धि के लिए सदा स्मृत रहेंगे।

1.5 बोध प्रश्न

1. महाकवि भास के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. महाकवि भास की नाट्यकला कुशलता पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
3. 'प्रतिमानाटक' नाम की सार्थकता सिद्ध करते हुए नाटक का सारांश लिखिए।
4. प्रतिमानाटक की समीक्षा कीजिए।
5. प्रतिमानाटक में कवि ने प्रकृति को महत्त्व दिया है, कथन को सिद्ध कीजिए।

* * * * * * *

इकाई-2

प्रतिमानाटक के प्रारम्भिक 10 श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रथम अङ्क के प्रारम्भिक दस श्लोक

अन्वय

संस्कृत में अनुवाद

2.3 बोध प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

नाटककार एवं नाटक का परिचय प्राप्त करने के उपरान्त प्रथम अङ्क के प्रारम्भिक दस श्लोकों की संस्कृत अनुवाद का अध्ययन प्रस्तावित है। शिक्षार्थियों के संस्कृत ज्ञान के लिए इसकी अनिवार्यता है।

2.1 उद्देश्य

- संस्कृत में अनुवाद करना सीख पाएँगे।
- संस्कृत लेखन की क्षमता का विकास कर पाएँगे।
- संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे।

2.2 प्रतिमानाटक के प्रारम्भिक 10 श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद

सूत्रधारः– **सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च।**

यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम्।।1।।

अन्वय– सीताभवः पातु समुन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च रामः अनुसर्गं पातु। यः रावणार्य प्रतिमः देयाः विभीषणात्मा भरतः अस्ति।

अनुवाद– सीतायाः क्षेमस्य कारणरूपः सत्परामर्शेन तुष्टः यद्वा सुमन्त्रनामकेन दशरथसचिवेन वा मुदितः शोभनकण्ठः लक्ष्मणसहितः रामः जन्मनि जन्मनि अस्मान् रक्षतु। यः रामः रावणस्य शत्रुः अद्वितीयः वीरः, तेजस्वी, विभीषणस्य प्रगाढसुहृद् अभयङ्करः वा जगद्रक्षकः अस्ति।

टिप्पणी– सीताभवः – सीतायाः भवः। सुमन्त्रतुष्टः – सुमन्त्रेण तुष्टः। सुग्रीवरामः – सुग्रीवश्च रामश्च। रावणः – रावयति रोदयति इति रावणः। अप्रतिमः – न विद्यते प्रतिमा यस्य सः।

इयं च द्वादशपदा नान्दी। इन्द्रवज्रावृत्तम्, लक्षणम्–'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।'

नटो– **चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा।**

(आकर्ण्य)

सूत्रधारः– मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव।।2।।

अन्वय– अस्मिन् हि काले काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा हंसी पुलिनेषु चरति। नरेन्द्रभवने मुदिता त्वरिता प्रतिहाररक्षीव।

अनुवाद– शरत्समये काशपुष्पसदृशधवला जले निवासिनी अतिप्रसन्ना वरटा नदीतटे बालुकाप्रदेशे स्वच्छन्दं विहरति।

यथा राजप्रासादे दशरथागारे (इत्यर्थः) संतुष्टा कार्यतत्परा च द्वारपालिका इतस्ततः विचरति।

टिप्पणी– काशांशुकवासिनी–काशांशुः कवासिनी, काशकुसुमानि वस्त्र मिव यस्य नदीतीरं तत्र वसतीति।

नरेन्द्रभवने–नराणामिन्द्रः तस्य भवने यथा चरति तथा।

प्रतिहाररक्षीव–प्रतीहारी द्वाराधिष्ठितेव।

अत्रोपमालङ्कार तल्लक्षणम्–'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः'। अनुष्टुपछन्दः, लक्षणम् पंचम लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः। षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्।।

काञ्चुकीयः –
इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।
रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता।।3।।

अन्वय– इदानीं रामामिधानं शशांकं मेदिन्याम् अभिषिञ्चता भूमिपालेन प्रजाः कृतकृत्याः कृताः।

अनुवाद– अधुना रामनामकं चन्द्रमसं पृथिव्यां यौवराज्यपदे अभिषेकं कुर्वता राज्ञा दशरथेन प्रजाः पूर्णाभिलषिताः कृताः।

टिप्पणी– भूमिपालेन–भूमिं पालयति तेन। अभिषिञ्चता–अभि + सिञ्च् + शतृ + तृतीया एकवचन। अत्र रूपकालङ्कार लक्षणम्–'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपन्ह्वे।'

अनुष्टुप् छन्दः, लक्षणम्– 'पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्।।'

रामः – **मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः।**
शरीरार्धेन में पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया।।4।।

अन्वय– परिहासे स्वयं मन्यु मा उत्पाद्य विशेषतः, हि यदा मे शरीरार्धेन त्वया पूर्वमाबद्धाः।

अनुवाद– त्वं विशेषरूपेण हासविषये क्रोधममङ्गलं वा नहि कल्पय, यतः यदा मम अर्द्धांगिनीभूतया त्वया वल्कलानि धृतानि, तव धारणात् मयैव धृतमित्यर्थः।

टिप्पणी– परिहासे–परि+हास+घञ्+सप्तमी एकवचन

शरीरार्धेन–शरीरस्य अर्धः तेन पत्नीत्यर्थः। उत्पाद्य–उत्+पत्+ल्यप्।

आबद्धाः–आ+बन्ध्+क्त+प्रथमा बहुवचन। अत्र काव्यलिंगालंकारः

लक्षणं–'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगं निगद्यते।' अत्रानुष्टुप् छन्दः।

रामः–

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा।

कस्य स्वजनशब्दा मे लज्जामुत्पादयिष्यति।।5।।

अन्वय– अरिः शरीरे तथा स्वजनः हृदये प्रहरति। कस्य स्वजनशब्दः मे लज्जाम् उत्पादयिष्यति?

अनुवाद– यथा शत्रुः देहे, तद्वत् आत्मीयः चित्ते दुःसह्यवेदनां ददाति, कस्य कृते प्रयुज्यमानः आत्मीयेतिशब्दः मम व्रीडां जनयिष्यति। कौऽसौ स्वजनः येन मत्पितृशोकोत्पादनं कृतम्, इत्यर्थः।

टिप्पणी– प्रहरति–प्र + हृ + लट्लकार, प्रथमपुरूष एकवचन। उत्पादयिष्यति–उत्+पत्+लृट्लकार, प्रथमपुरूष एकवचन।

अत्रोत्प्रेक्षालंकारः, लक्षणम्–'भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।' अनुष्टुप् छन्दः।

रामः– **श्रूयताम्,**

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।

फले कस्मिन् स्पृहा तस्या योनाकार्यं करिष्यति।।6।।

अन्वय– श्रूयताम्, यस्याः भर्ता शक्रसमः, या च मया पुत्रवती। तस्याः कस्मिन् फले स्पृहा, येन (सा) अकार्यं करिष्यति।

अनुवाद– आकर्ण्यताम्, अम्बायाः कैकेय्याः पतिः इन्द्रसदृशः अस्ति, कैकेयी पुनः रामेण सुपुत्रेण पुत्रवती अपि अस्ति, कस्मिन् वस्तुनि मातुः इच्छा, येन हेतुना अनुचितं कृत्यं सम्पादयिष्यति।

टिप्पणी– भर्त्ता–भृञ् + तृच् करिष्यति–कृ + प्रथमपुरूष एकवचन। लृट् लकार +

अत्रोपमालंकारः, अनुष्टुप् छन्दः।

लक्षणम् – 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।'

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव तावन्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव।

नवनृपतिविमर्शेनास्ति शंका प्रजानामथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे।।7।।

अन्वय– तावत् पार्थिवस्यैव वनगमननिवृत्तिः, मम पितृपरवत्ता स एव बालभावः। नवनृपतिविमर्शे प्रजानां शंका नास्ति। अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः न वञ्चिताः।

अनुवाद– आकर्ण्यताम्, आदौ महाराजस्यैव अरण्यगमनात् निवारणं, रामस्य पितुः परवत्ता दशरथपराधीनतायमर्थः, शैशवं, नवनिर्वाचितराज्ञः विचारे जनानां सन्देहः न भवति। इतोऽपि मम भरतलक्ष्मणादयः राजसुखादिभोगैः न रहिताः। एते पञ्चगुणाः मातुः कारणादेव सिद्धाः।

टिप्पणी– वनगमननिवृत्तिः वनं गमनात् निवृत्तिः। पितृपरवत्ता–पितुः परवत्ता। बालभावः–बालानां भावः। नवनृपतिविमर्शे–नव नृपतेः विमर्शे। निवृत्तिः–निर् + वृत् + क्तिन्। वञ्चिताः–वञ्च् + क्त प्रथमा बहुवचन। अत्रकाव्यलिंगालंकारः, अनुष्टुप् छन्दः।

रामः– **श्रूयताम्**

काञ्चुकीयः– **शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः।**

कथमप्याभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः।।8।।

अन्वय– राज्ञा शोकात् अवचनात् हस्तेन एव विसर्जितः। मन्ये नृपतिः किमपि अभिमतं मोहं च गतः।

अनुवाद– महाराजेन दशरथेन महादुःखात् अनुक्तत्वात् मौनभूतत्वात् वा करेण एव प्रेषितः गन्तुमाज्ञप्तः इत्यर्थः। राजा दशरथस्तु केनापि प्रकारेण अभीष्टां मूर्च्छां च प्राप्तः इति अनुमीयते।

टिप्पणी– विसर्जितः – वि+सृज्+प्रथमा एकवचन। नृपतिः – नृणां पतिः प्रथमा एकवचन। गतः – गम् + क्त + प्रथमा एकवचन।

अत्रानुष्टुप् छन्दः।

लक्ष्मणः– **यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया।**

स्वजननिभृतः सर्वोप्येवं मृदुः परिभूयते।।

अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो

युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम्।।9।।

अन्वय– यदि राज्ञः मोहं न सहसे, धनुः स्पृश, दया मा, स्वजननिभृतः मृदुः सर्वः अपि एवं परिभूयते। अथ न रुचितं, त्वं मां मुञ्च, अहं लोकं युवतिरहितं कर्तुं कृतनिश्चयः, यतः वयं छलिताः।

अनुवाद– चेत् पितुः मूर्च्छां नहि मर्षयसि तर्हि चापं शरासनं वा गृहाण, कृपा न कार्या। आत्मीयजने क्षमाशीलः सन्तुष्टः वा भवादृशः कोमलस्वभावः एव तिरस्क्रियते। अथवा स्वजनविषये ते घनुर्चालनं न रोचते, भवान् लक्ष्मणं स्वतन्त्रं स्वच्छन्दं वा कुरु। अहं लक्ष्मणः संसारं नारीजात्याः रहितं विधातुं दृढसंकल्पोऽस्मि, यस्मात् कारणात् कैकेय्याः वयं वञ्चिताः।

टिप्पणी– स्वजननिभृतः – स्वजने निभृतः। कृतनिश्चयः – कृतं निश्चयं येन सः। निभृतः – नि+भृञ्+क्त। रुचितम् – रूच्+क्त। कर्तुम्–कृ+तुमुन्।

अत्र काव्यलिंगमलंकारः, हरिणी छन्दः, रौद्रो रसः।

लक्ष्मणः– **क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे।**

इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता।।10।।

अन्वय– क्रमप्राप्ते राज्ये हृते भुवि नृपे शोच्यासने। किम् इदानीम् अपि सन्देहः, किं निर्मनस्विता क्षमा?

अनुवाद– वंशपरम्परया प्राप्ते साम्राज्ये अपहृते, महाराजे भूमौ दुःखान्विते, सम्प्रत्यपि अपकारदशायामपि इत्यर्थः शंकावसरः अस्ति, किम् आत्माभिमानशून्यता सहनशीलत्वं भवति, आत्मगौरवं सदा रक्षणीयमिति भावः।

टिप्पणी– क्रमप्राप्ते–क्रमेण प्राप्ते। शोच्यासने–शोच्यम् आसनं यस्य तस्मिन्। अत्र समुच्च्यालंकारः, अनुष्टुप् छन्दः।

2.3 बोध प्रश्न

1. प्रथम अंक के प्रथम, द्वितीय श्लोक का संस्कृत में अनुवाद कीजिए।
2. प्रथम अंक के तृतीय, चतुर्थ श्लोक का संस्कृत में अनुवाद कीजिए।
3. प्रथम अंक के पंचम, षष्ठ श्लोक का संस्कृत में अनुवाद कीजिए।
4. प्रथम अंक के सप्तम्, अष्टम् श्लोक का संस्कृत में अनुवाद कीजिए।
5. प्रथम अंक के नवम, दशम श्लोक का संस्कृत में अनुवाद कीजिए।

* * * * * * *

इकाई-3 प्रथम एवं द्वितीय अङ्क के श्लोकों का अन्वय, हिन्दी अनुवाद एवं हिन्दी व्याख्या

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रथम अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

3.3 द्वितीय अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

3.4 बोध प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

महाकवि भास विरचित प्रतिमानाटक का अध्ययन परास्नातक कक्षाओं में अध्ययन हेतु निर्धारित है। इसके अध्ययन से नाट्य विधा के सम्बन्ध में ज्ञान अर्जित करेंगे।

3.1 उद्देश्य

- प्रतिमानाटक नामक नाटक का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगें।
- इस इकाई में प्रथम तथा द्वितीय अङ्क के सभी श्लोकों का अध्ययन करेंगें तथा ज्ञान प्राप्त कर सकेंगें।
- प्रथम तथा द्वितीय अङ्क के श्लोकों का हिन्दी अनुवाद तथा हिन्दी व्याख्या करने में सक्षम हो पाएँगे।
- सभी श्लोकों का अन्वय कर उसे समझ सकने में सक्षम हो पाएँगें।

3.2 प्रथम अंक के श्लोक (अन्वय, अनुवाद एवं व्याख्या)

सूत्रधारः– सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम्।।1।।

अन्वय– सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च रामः अनुसर्गं पातु। यः रावणार्यप्रतिमः देव्या विभीषणात्मा भरतः अस्ति।

अनुवाद– सीता के जीवनरूप, उत्तम मन्त्रणा से सन्तुष्ट अथवा सुमन्त्र नामक दशरथ के सारथि रूप मन्त्री से प्रसन्न, सुन्दर ग्रीवा से सुशोभित, लक्ष्मण के सहचर, रावण के शत्रु, अद्वितीय, विभीषण के अभिन्नहृदय श्रीराम जन्म–जन्मान्तर में हमारी रक्षा करें।।1।।

व्याख्या– नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए प्रस्तुत श्लोक नान्दी अर्थात् मंगलाचरण के रूप में प्रस्तुत है। रमन्ते योगिनः यस्मिन् स रामः–इस व्युत्पत्ति के अनुसार अनेकानेक गुणों से सम्पन्न राम से कवि अपनी रक्षा का आश्वासन मांग रहा है। प्रस्तुत श्लोक की एक विशिष्टता यह है कि कवि ने शब्दचातुर्य से सीता, सुमन्त्र, सुग्रीव, लक्ष्मण, रावण, विभीषण, भरत–नाटक के इन सभी प्रधान पात्रों का नामनिर्देश कर दिया है। अ–प्रतिम शब्द के उल्लेख से नाटक के नाम की भी चर्चा कर दी है। कवि ने श्लोक में मुद्रालंकार के प्रयोग से यह सूचना दी है। मुद्रालंकार का लक्षण है– सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः। यह द्वादशपदा नान्दी मांगलिक आरम्भ का बोधन कराती है। श्लोक में इन्द्रवज्रा छन्द है, लक्षण है–'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

नटी– गायति

अस्मिन् हि काले –

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा।

(आकर्ण्य)

सूत्रधारः– भवतु विज्ञातम्।

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव।।2।।

अन्वय– अस्मिन् हि काले काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा हंसी पुलिनेषु चरति। नरेन्द्र भवने मुदिता त्वरिता प्रतिहाररक्षीव।

अनुवाद– नटी – गाती है

इस शरतकाल में काश के फूलों के समान धवल, जल में निवास करने वाली अतिप्रसन्ना हंसी नदी तट पर विचरण कर रही है।

(सुन कर)

सूत्रधार– अच्छा, समझ गया।

जिस प्रकार राजभवन में प्रसन्नमना (श्वेतवस्त्रधारिणी) द्वारपालिका घूमती रहती है।

व्याख्या– नटी के गायन से सुविदित है कि महाकवि भास के इस नाटक का मञ्चन शरद् ऋतु में हुआ था। श्वेतपंखयुता हंसी के समकक्ष श्वेतवस्त्रधारिणी प्रतिहारी का उल्लेख करके पूर्णोपमा अलंकार को प्रस्तुत किया है, लक्षण है –

'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यौक्य उपमा द्वयोः'। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है, लक्षण है –

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।

षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम्।।

काञ्चुकीयः– हन्त भोः!

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः।

रामाभिधानं मेदिन्यां शशांकमभिषिञ्चता।।3।।

अन्वय– इदानीं रामाभिधानं शशांकं मेदिन्याम् अभिषिञ्चता भूमिपालेन प्रजाः कृतकृत्याः कृताः।

अनुवाद– कञ्चुकी – अरे, हर्ष की बात है,

इस समय राम नामक चन्द्र को धरती पर अभिषिक्त करने वाले महाराज दशरथ ने प्रजा को कृतार्थ कर दिया है।

व्याख्या– रमन्ते योगिनः यस्मिन् स रामः – योगिजनों को जो आनन्दित करे वह राम है, वे सम्पूर्ण संसार को सुख देने वाले हैं। चदि आहलादने धातु से निष्पन्न चन्द्र भी उदय होते ही संसार को आहलाद से भर देता है। राम का स्मरण प्रखर पापताप से मुक्ति दिलाता है तो चन्द्रमा की शीतल किरणें प्रखर सूर्य संताप से शान्ति दिलाती है। राम में चन्द्रमा के आरोप से रूपक अलंकार का सन्निवेश है, लक्षण – रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे। अनुष्टप् छन्द प्रयुक्त है।

रामः– मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः।

शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया।।4।।

अन्वय– परिहासे स्वयं मन्युं मा उत्पाद्य विशेषतः, हि यदा मे शरीरार्धेन त्वया पूर्वमाबद्धाः।

अनुवाद– राम– सीते! स्वयं अमंगल की आशंका नहीं करनी चाहिए, विशेषरूप से हास–परिहास मे। मेरी अर्द्धागिनी होकर जब तुमने पहले ही वल्कल वस्त्र धारण कर लिया (तो मुझे भी वल्कल पहने ही समझो)।

व्याख्या– राम के राज्याभिषेक के शुभ क्षणों में सीता और राम की वल्कल में रुचि क्षणिक मनोरंजन मात्र है किन्तु मानो वही अमंगल सूचक हो गई है। वल्कल वस्त्रों के उल्लेख से कवि ने राम के जीवन की भावी घटना वनवास की ओर भी संकेत कर दिया है। अनुष्टुप छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग है, अलंकार लक्षण – हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगं निगद्यते।

रामः– स्वजनादिति। हन्त! नास्ति प्रतिकारः।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा।

कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति।।5।।

अन्वय– अरिः शरीरे तथा स्वजनः हृदये प्रहरति। कस्य स्वजनशब्दः मे लज्जामुत्पादयिष्यति?

अनुवाद– रामः– आत्मीयजन से? खेद है! इसका निदान भी नहीं है।

शत्रु तो केवल शरीर पर आघात करता है किन्तु आत्मीयजन ह्रदय पर चोट करते हैं। न जाने किसके लिए प्रयुक्त स्वजन शब्द मुझे लज्जित करेगा?

व्याख्या— शत्रु के साथ निस्संकोच निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया जा सकता है परन्तु आत्मीयजन के साथ कठोर व्यवहार करने में नितान्त संकोच होता है। राम को भी यही आशंका है कि न जाने किस परिवार जन के (षड़यन्त्र में सम्मिलित होने के फलस्वरूप) नाम से समाज में लज्जित होना पड़ेगा।

अनुष्टुप् छन्द तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है, लक्षण है—भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।

रामः— श्रूयताम्,

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।

फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति।।6।।

अन्वय— श्रूयताम्, यस्याः भर्ता शक्रसमः, या च मया पुत्रवती। तस्याः कस्मिन् फले स्पृहा, येन (सा) अकार्यं करिष्यति।

अनुवाद— राम — सुनिए,

जिसका पति इन्द्र के समान तेजस्वी है, जो मुझ जैसे पुत्र से पुत्रवती है, उसकी किस वस्तु में अभिलाषा हो सकती है? जिसके कारण वह कोई अनुचित कर्म करेगी।

व्याख्या— राम सहनशील हैं, उदार हैं, माता—पिता के प्रति श्रद्धावान् हैं। पति दशरथ की प्रिया और राम के सम्मान की पात्रा माँ कैकेयी के अनुचित कृत्य का कारण उनके मस्तिष्क में ही नहीं आता है।

रामः— श्रूयताम्,

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव —

न्यम पितृपरवत्ता बालभावः स एव।

नवनृपतिविमर्शे नास्ति शंका प्रजाना—

मथ च न परिभोगैर्वंचिता भ्रातरो मे।।7।।

अन्वय— तावत् पार्थिवस्यैव वनगमननिवृत्तिः, मम पितृपरवत्ता स एव बालभावः। नवनृपतिविमर्शे प्रजानां शंका नास्ति। अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः न वंचिताः।

अनुवाद— राम— सुनिए,

महाराजा दशरथ का वन जाने से रूकना, मेरी पिता के प्रति आश्रितता, पहले का वही बाल्यपन, प्रजाओं की नवनिर्वाचित राजा के विषय में शुकन, मेरे भाइयों का राज्य—सुखोपभोग से वञ्चित न होना (ये सभी शुभ कार्य माता कैकेयी के कारण सम्पन्न हुए)।

व्याख्या— राम की महानता कि उन्हें माँ कैकेयी के छल में भी अनेक गुणदर्शन हो रहे हैं, यथा—महाराज का संन्यास न लेकर नगर में रूकना, स्वयं उन्हें पिता की छत्रछाया, पिता के समीप रहने से बालकपन की अनुभूति, नए राजा में प्रजा का अविश्वास न होना ,अन्य तीनों भाइयों का राजसुख में समान भोग — माँ के विघ्नोपस्थिति से ये पाँच गुण सिद्ध हो रहे हैं।

यहाँ अनुष्टुप् छन्द तथा काव्यलिंग अलंकार है, लक्षण है–'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्य–लिंगमुदाहृतम्।'

काञ्चुकीयः– **ततस्तदानीम् –**

शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः।

किमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः।।8।।

अन्वय– राज्ञा शोकात् अवचनात् हस्तेन एव विसर्जितः। मन्ये नृपतिः किमपि अभिमतं मोहं च गतः।

कञ्चुकी– तब उस समय शोक के वशीभूत राजा ने मौन रहकर हाथ के इशारे से मुझे भेजा है। प्रतीत होता है कि वे स्वयं इच्छित मूर्छा को प्राप्त हुए अर्थात् उन्हें मूर्छा ही अच्छी लगी।

व्याख्या– कञ्चुकी अकस्मात् उपस्थित हुए विघ्न से दयनीय राजा की दशा का राम से वर्णन करता है कि शोक के कारण बोलने में असमर्थ राजा दशरथ ने मुझे हाथ के संकेत से आपको बुलाने भेजा है। संकेत करके वे मूर्छित हो गए, दारुण शोक से मुक्ति का एकमात्र उपाय मूर्छा ही उन्हें उचित प्रतीत हुआ।

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः– **(सक्रोधम्) कथं कथं मोहमुपगत इति।**

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया

स्वजननिभृतः सर्वोप्येवं मृदुः परिभूयते।

अथ न रूचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो

युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिया वयम्।।9।।

अन्वय– यदि राज्ञः मोहं न सहसे, धनुः स्पृश, दया मा, स्वजननिभृतः मृदुः सर्वः अपि एवं परिभूयते। अथ न रुचितं, त्वं मां मुञ्च, अहं लोकं युवतिरहितं कर्तुं कृतनिश्चयः, यतः वयं छलिताः।

(तब लक्ष्मण प्रवेश करते हैं)

अनुवाद– लक्ष्मण– (क्रोध सहित) क्यों, अचेत कैसे हो गए?

यदि पिता की मूर्छा (अर्थात् दयनीय दशा) सह्य न हो तो धनुष उठाइए दया मत दिखाइए। स्वजन के लिए क्षमाशील आपके समान कोमल स्वभाव वाला पुरूष तिरस्कृत ही होता है। यदि मेरी बात अच्छी नहीं लगती हो तो मुझे मुक्त कर दीजिए। मैंने संसार को स्त्रियों से शून्य कर देने का संकल्प कर लिया है क्योंकि हम उन्हीं से छले गए हैं।

व्याख्या– लक्ष्मण सहजक्रोधी हैं, पिता की मूर्छा का समाचार जानकर वे उत्तेजित हो राम से धनुष उठाकर अपराधी स्वजन को दण्डित करने का आग्रह करते हैं। वे कहते हैं कि यदि आपको संकोच हो तो मुझे आदेश दीजिए मैं निरन्तर छल प्रपंच करने वाले स्त्रीवर्ग को ही समाप्त करने का प्रण ले लूँगा।

प्रस्तुत श्लोक में रौद्र रस हेतुभूत होने से काव्यलिंग अलंकार है।

लक्ष्मणः— **कथं किमिदं नाम्?**

क्रमप्राप्ते ह्रते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे।

इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता।।10।।

अन्वय— क्रमप्राप्ते राज्ये ह्रते भुवि नृपे शोच्यासने। किम् इदानिमपि सन्देहः, किं निर्मनस्विता क्षमा?

लक्ष्मण— क्यों, अब भी यह क्या?

वंश परम्परा से प्राप्त राज्य छिन गया, धरती पर महाराज की दशा चिन्तनीय है। क्या अभी भी आपको सन्देह है? क्या आत्माभिमान शून्यता ही क्षमा कही जाती है?

भारतीय संस्कृति का यह सर्वमान्य सामान्य सिद्धान्त है कि पिता का उत्तराधिकार ज्येष्ठ पुत्र को प्राप्त होता है। चल—अचल सम्पत्ति के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों में यथा धार्मिक, राजनीतिक विषयों के परिपालन में यह सिद्धान्त प्रवर्तित होता है। रघुवंश जैसे महान् न्यायप्रिय राजवंश में भी यही परम्परा थी, इसी परम्परा का अनुपालन करते हुए महाराज दशरथ ने राम के राजतिलक के उत्सव का आयोजन किया था किन्तु महारानी कैकेयी के दो वरदानों—राम को वनवास और भरत को राजतिलक से रंग में भंग हो गया। महाराज मरणासन्न हो गए, उत्सव की प्रफुल्लता नष्ट हो गई। इस विकट परिस्थिति में भी राम का आचरण मर्यादित है, ब्राह्मणोचित है, वे शान्त हैं उद्विग्न मन नहीं, वे माँ कैकेयी की कूटनीति मानने को भी प्रस्तुत नहीं अतएव क्रुद्ध लक्ष्मण उन्हें वास्तविक स्थिति से अवगत करा उत्तेजित करने का प्रयास कर रहे हैं।

प्रस्तुत श्लोक में समुच्चय अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है।

रामः— **सुमित्रामातः! अस्मद्राज्यभ्रंशो भवत उद्योगं जनयति।**

भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत समम्।

यदि तऽस्ति धनुः श्लाघा स राजा परिपाल्यताम्।।11।।

अन्वय— भरतः राजा भवेद् वयं वा ननु तत्समम्। यदि ते धनुः श्लाघा अस्ति स राजा परिपाल्यताम्।

अनुवाद— सुमित्रापुत्र! क्या हमारा राज्य से च्युत होना ही तुम्हें उद्विग्न कर रहा है।

भरत राजा हों या हम, वह एक ही बात है। यदि तुम्हें धनुष पर अभिमान है तो उन राजा भरत की रक्षा करनी चाहिए।

व्याख्या— राम तो राम हैं श्रेष्ठतम गुणों से परिपूर्ण, कदापि क्रोध न करने वाले, कठिन परिस्थितियों में भी संयमित, सुख—दुःख में समान रामोऽस्मि सर्वं सहे। वे लक्ष्मण के विवेक को जागृत करने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं कि राम को राज्य नहीं मिला। भाइयों में इस तुच्छ बात के कारण परस्पर द्वेष नहीं होना चाहिए। हम सब भाई समान हैं, राज्य किसी को भी मिले, क्या अन्तर है? यदि राज्य सौभाग्य से भरत को मिल रहा है, यदि तुम्हें अपने धनुर्धर होने का गर्व है तो जैसे मेरे राज्य के रक्षक होते वैसे ही भरत के राज्य की रक्षा करो। उनका विरोध न कर राजकार्यों में उनके सहायक बनो।

रामः— ताते धनुर्नमयि सत्यमवेक्षमाण

मञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम्।

दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि

किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु।।12।।

अन्वय— सत्यम् अवेक्षमाणे ताते धनुः नमयि, स्वधनं हरन्त्यां मातरि शरं मुञ्चानि। दोषेषु बाह्यम् अनुजं भरतं हनानि, त्रिषु पातकेषु रोषणाय किं रुचिरम्।

अनुवाद— सत्यप्रतिज्ञ पिता पर धनुष उठाऊँ अथवा विवाह में प्रतिज्ञात स्त्रीधन (के रूप में राज्य) ले लेने वाली माता पर बाण चलाऊँ अथवा निर्दोष भाई भरत का वध कर दूँ? इन तीनों पापों में से कौन सा पाप तुम्हारे क्रोध को शान्त करेगा?

व्याख्या— पिता—माता—भ्राता, व्यक्ति के सर्वाधिक सन्निकट परिवार के यही तीन सदस्य होते हैं, मन इन्हीं के प्रति श्रद्धा और प्रेम से भरा होता है, इन्हीं के अनुग्रह और सान्निध्य में व्यक्ति सुखपूर्वक जीवनयापन करता है, इन्हीं के सहयोग से जीवन यात्रा में आने वाली बड़ी से बड़ी आपदाओं को पार कर लेता है। अतएव इनके प्रति अपराध करने का विचार भी मन में लाना पाप है। यदि इनके व्यवहार में यदा—कदा दोष हो तो वह भी क्षम्य है। जो व्यक्ति माता—पिता—भाई के प्रति अपराधपूर्ण आचरण करता है, वह निश्चित रूप से पाप का भागी होता है। इस प्रकार शान्त मनोवृत्ति राम—लक्ष्मण को भी शान्त करने का प्रयास करते हैं।

लक्ष्मण— यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः।

वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया।।13।।

अन्वय— यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे मनोरथः न। चतुर्दशवर्षाणि त्वया वने वस्तव्यम् किल।

अनुवाद— लक्ष्मण — (रोकर) अरे! हमें न जानकर आप उलाहना दे रहे हैं।

मुझे महान् क्लेश की अनुभूति राज्य प्राप्ति की इच्छा से नहीं हो रही है, कारण है आपको चौदह वर्ष वनवास में रहना होगा।

व्याख्या— राम के समान लक्ष्मण भी अति उदार, त्यागी रघुवंश में उत्पन्न हुए हैं, उन्हें भी राज्य का तनिक लोभ नहीं। परन्तु ज्येष्ठ भ्राता, स्नेह से परिपूर्ण राम राजसी सुखों को त्याग वन के कष्ट सहें, उनका हृदय राम के इसी कष्ट से विचलित है। उनके अनुसार भरत भले ही राज्य पद पर प्रतिष्ठित हों किन्तु राम (चौदह वर्ष के सुदीर्घ काल के लिए) वन को न जाएँ।

रामः— मैथिलि!

मंगलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलांस्तावदानय।

करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम्।।14।।

अन्वय— अनया दत्तान् वल्कलान् तावत् मंगलार्थे आनय। अन्यैः नृपैः नैवाप्तं नोपपादितम् धर्मं करोमि।

अनुवाद— सीते! अवदातिका द्वारा दिए गए वक्कल वस्त्रों को मंगलकार्य के लिए लाओ। दूसरे राजाओं के द्वारा अप्राप्त, असम्पादित धर्म का अनुष्ठान मैं करूँगा।

व्याख्या– राम रघुवंशी हैं, ऐसा महान् वंश जिसके राजाओं ने आजीवन महान् धार्मिक कार्य किए हैं, भारतीय संस्कृति द्वारा उपदिष्ट, वर्णाश्रम व्यवस्था का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए जीवन की चौथी आयु में संन्यास लेकर वनगमन भी किया है परन्तु राम को वनवास का यह सुअवसर जीवन की द्वितीय आयु–गृहस्थ काल में ही प्राप्त हो गया है अतः वे सहर्ष दासी द्वारा लाए गए वल्कल पहनने को प्रस्तुत हैं।

लक्ष्मण– **अनुचरित शशांकः राहुदोषेऽपि तारा**
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पंकलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः।।15।।

अन्वय– तारा राहुदोषेअपि शशांकम् अनुचरति। लता वनवृक्षे पतति च भूमिं याति। करेणुः पंकलग्नं गजेन्द्रं न त्यजति। हि भतृनाथा नार्यः, व्रजतु धर्मं चरतु।

अनुवाद– तारा अर्थात् (चन्द्रपत्नी) रोहिणी नक्षत्र राहु से ग्रसित होने पर भी (ग्रहण–काल में) चन्द्रमा का साथ देता है। लताएँ वनवृक्ष के गिरने पर स्वयं भी भूमि पर गिर जाती है। हस्तिनी कीचड़ में फंस जाने पर गजराज को छोड़ती नहीं है। स्त्रियों के पति ही उनके सर्वस्व हैं अतः आप चलें, अपना (पत्नी) धर्म निभाएँ।

व्याख्या– राम को पिता का वनगमन का आदेश शिरोधार्य हुआ तो पत्नी सीता भी उनके साथ चौदह वर्षों के लिए वन जाने को प्रस्तुत हो गईं। राम के निषेध करने पर भी वे न मानीं तो राम ने लक्ष्मण से उन्हें रोकने को कहा। लक्ष्मण स्वदेश और स्ववंश की संस्कृति और परम्परा से परिचित थे। वे जानते थे कि प्रकृति सदा पुरुष का साथ देती है विशेष रूप से आपाद्काल में, अतएव सीता भी पत्नी धर्म निभाते हेतु राम के साथ जाने की इच्छुक हैं तो क्या आश्चर्य? इसी में उनकी सद्गति है।

काञ्चुकीयः– **कुमार! न खलु गन्तव्यम्। एष हि महाराजः,**
श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम्।
उत्थाय क्षितितलरेणुरूषितांगः
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः।।16।।

अन्वय– एष महाराजः वधूसहायं सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रं ते वनगमनं श्रुत्वा क्षितितलरेणुरूषितांगः उत्थाय जीर्णः कान्तारद्विरद इव उपयाति।

अनुवाद– कुमार! मत जाइए। यह महाराज दशरथ सीता सहित आपका वनगमन तथा भ्रातृप्रेम के कारण लक्ष्मण का अनुगमन सुनकर धरती पर लोटने से धूल धूसरित अंगों से उठकर वृद्ध जंगली गजराज के समान (लड़खड़ाते हुए) इधर ही आ रहे हैं।

व्याख्या– अयोध्या समविशाल साम्राज्य में राज्याभिषेक का उत्सव, उत्सव के उन्हीं क्षणों में कैकेयी द्वारा राम के वनगमन का प्रस्ताव मनवा कर रंग में भंग करना, राम का वनगमन, सीता की सहयात्रा, लक्ष्मण का

उनके साथ जाने का दृढ़ निश्चय–राजा दशरथ पर अकस्मात् एकसाथ अनेक हृदयविदारक प्रहार, जिनकी कभी स्वप्न में भी आशा न थी, इस दारूण स्थिति में भी सन्तान को अन्तिम बार देख लेने की अभिलाषा से वे उठकर चल दिए।

यहाँ परिकर अलंकार तथा प्रहर्षिणी छन्द है।

लक्ष्मणः– **आर्य!**

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम्?

रामः– **गतेष्वस्मासु राजा नः शिरः स्थानानि पश्यतु।।17।।**

अन्वय– आर्य! चीरमात्रोत्तरीयाणां वनवासिनां किं दृश्यम्?

राम – राजा अस्मासु गतेषु नः शिरः स्थानानि पश्यतु।

अनुवाद– लक्ष्मण – आर्य! वल्कलवस्त्र मात्र धारण करने वाले वनवासियों को क्या देखना।

राम– हमारे चले जाने पर महाराज हमारे प्रधान स्थानों को देखा करेंगे।

व्याख्या– महाराज के आने की सूचना पाकर खिन्न मन लक्ष्मण कहते हैं कि अपने प्रिय पुत्रों को वल्कल में वे न देखें तो उचित होगा अन्यथा उन्हें अधिक दुःख होगा। राम लक्ष्मण से सहमत होते हुए कहते हैं कि हमारे जाने के पश्चात् पिता स्नेह के अधीन होकर हमारे सूने महलों को देखकर दुःखी होंगे।

यही तो विधि की विडम्बना है कि अन्ततः रघुकुल के राजकुमार राम–लक्ष्मण वधू सीता के साथ सुदीर्घ काल के लिए वन को चले गए।

3.3 द्वितीय अंक के श्लोक (अन्वय, अनुवाद एवं व्याख्या)

काञ्चुकीयः– **मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे**

शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः।

सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः

शोकाद् भृशं शिथिलेदहमतिर्नरेन्द्रः।।1।।

अन्वय– युगक्षयसन्निकर्षे मेरुः चलन्निव अप्रमेयः महोदधिः शोषं व्रजन्निव मण्डलमात्रलक्ष्यः सूर्यः पतिन्नव च नरेन्द्र शोकात् भृशं शिथिलदेहमतिः (अस्ति)।

अनुवाद– कञ्चुकी–युग का अन्तकाल आने पर चलायमान सुमेरू पर्वत की भाँति, सूख रहे विशाल सागर की भाँति, तेजोविहीन मण्डलमात्र अवशिष्ट सूर्य की भाँति राजा अत्यधिक शोक से शिथिल और चेतनाशून्य हो रहे हैं।

व्याख्या– प्रलयकाल में सुमेरू सदृश सुदृढ़ पर्वत भी लड़खड़ा जाएगा, अपार जल से भरा सागर भी सूख जाएगा, सूर्य भी किरणों की प्रखरता से रहित होकर शान्त हो जाएगा, यह है पराकाष्ठा – राजा मानों पुत्र वियोग में ऐसी ही पराकाष्ठा को प्राप्त हो सुध–बुध भूल चुके हैं।

यहाँ मालोपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है, लक्षण–उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

काञ्चुकीयः— **एष एव महाराजः—**

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः।

दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः।।2।।

अन्वय— हा हा इति उच्चैः मुहुः लपन् उत्थाय उत्थाय च पतति, तामेव च दिशं पश्यति यया रघूद्वहः यातः।

अनुवाद— कञ्चुकी— महाराज हा, हा, इस प्रकार उच्च स्वर से बार—बार विलाप करते हुए उठ—उठ कर गिर पड़ते हैं, उस ही दिशा में देखते हैं जिस दिशा में रघुवंश में श्रेष्ठ राम गए हैं।

व्याख्या— पुत्र वियोग की पीड़ा महाराज दशरथ को असह्य है, वे उच्च स्वर से विलाप करते हुए वनवासी पुत्रों का स्मरण करके अचेत हो जाते हैं। राम के वापस लौट आने की आशा में जाने की दिशा निहारते हैं।

वस्तुत काव्यशास्त्रियों ने वियोग में मूर्छा को स्वाभाविक माना है अतः राजा की मूर्छा वियोग की एक दशा है।

राजा दशरथः— **हा वत्स! राम! जगतां नयनाभिराम!**

हा वत्स! लक्ष्मण! सलक्षणसर्वगात्र!

हा साध्वि! मैथिलि! पतिस्थितचित्तवृत्ते!

हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः।।3।।

अन्वय— हा जगतां नयनाभिराम! वत्स राम!, हा सलक्षण सर्वगात्र! वत्स लक्ष्मण!, हा पतिस्थितचित्तवृत्ते! साध्वि मैथिलि!, बत मे तनूजाः, हा हा किल वनं गताः।

अनुवाद— राजा—हा संसार के नेत्रों को सुख देने वाले पुत्र राम!, हा सर्वगुण—सम्पन्न पुत्र लक्ष्मण!, हा पतिव्रते साध्वि सीते!, हा मेरे बच्चे निश्चय ही वन को चले गए।

व्याख्या— पिता का ह्रदय, कोमल सुकुमार राजकुमार, पुत्रवधू को लेकर वन को चले गए, वह भी पिता दशरथ के वचन के कारण, क्योंकर चैन आए राजा को? वे तीनों के गुणों का स्मरण कर व्याकुल चित्त को सान्त्वना देने का प्रयास कर रहे हैं।

प्रस्तुत स्थल पर परिकर अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त है।

राजा— **वधु वैदेहि!**

रामेणापि परित्यक्तो लक्ष्मणेन च गर्हितः।

अयशोभाजनं लोके परित्क्तस्त्वयाप्यहम्।।4।।

अन्वय— रामेण अपि परित्यक्तः, लक्ष्मणेन च गर्हितः, त्वया अपि परित्यक्तः अहं लोके अयशःभाजनं (जातः)

अनुवाद— वधू सीते! राम ने मुझे छोड़ दिया, लक्ष्मण ने भी मुझे उपेक्षित कर दिया, तुम्हारे द्वारा भी त्यागा गया मैं संसार में अपयश का भागी हुआ।

व्याख्या– सामान्य गृहस्थ परिवार के विघटन से टूट जाता है फिर यह तो रघुवंश सम उच्चवंश में अकस्मात् घटी घटना थी जिसके आदर्शों के उदाहरण विश्व के सामने प्रस्तुत होते थे। यथा राजा तथा प्रजा – राजपरिवार में घटित घटनाओं का प्रभाव विश्व पर पड़ना ही था, यही अगर समाज में घटने लगे तो भारतीय संस्कृति का ह्रास हो जाएगा। महाराजा दशरथ का परिवार तो विनष्ट हुआ ही, प्रजा को दोषारोपण का भी अवसर मिल गया। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

राजा– **सूर्य इव गतो रामः, सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।**

सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता।।5।।

अन्वय– सूर्यः इव रामः गतः, दिवसः इव लक्ष्मणः सूर्यम् अनुगतः। सूर्य दिवसावसाने छाया इव सीता न दृश्यते।

अनुवाद– सूर्य के समान राम चले गए, सूर्य के पीछे चलने वाले दिन के समान लक्ष्मण चले गए, सूर्य और दिन के समाप्त हो जाने पर छाया के समान सीता भी नहीं दिखाई देती है।

व्याख्या– सूर्य अस्त होता है, सूर्यास्त के साथ दिवस का अवसान हो जाता है, सूर्य और दिवस दोनों के अभाव में छाया का भी अस्तित्व लुप्त हो जाता है। दशरथ के परिवार की भी यही स्थिति हुई, सूर्य समान तेजस्वती राम गए, प्रकाशपूरित दिवस समान लक्ष्मण गए, शान्तिदायिनी छाया समान सीता गई।

यहाँ साम्यवर्णन से उपमा अलंकार है तथा आर्या छन्द है, लक्षण है–

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या।।

राजा– **(ऊर्ध्वमवलोक्य) भोः कृतान्तहतक!**

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः।

वने व्याघ्रो च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम्।।6।।

अन्वय– वयम् अनपत्याः, रामः अन्यस्य महीपतेः पुत्रः, कैकेयी वने व्याघ्री च–त्वया त्रयं किं न कृतम्?

अनुवाद– राजा – (ऊपर की ओर देखकर) हे दुष्ट यमराज! हमें निस्संतान रखता, राम को किसी अन्य राजा का पुत्र बनाता और कैकेयी को जंगल में बाघिन बनाता –तूने ये तीन काम क्यों नहीं किए?

व्याख्या– राम, लक्ष्मण सदृश प्रिय पुत्रों को वन भेजकर मैं एक प्रकार से संतानहीन हो गया हूँ, वन भेजना था तो मुझे दिया ही क्यों था? राम को मेरे घर में जन्म न देकर किसी अन्य कुल में उत्पन्न करता। यदि मेरे कुल में ही जन्म दिया तो कैकेयी को जंगल में बाघिन बनाकर राजपरिवार से हटा दिया होता, यदि यम! तूने ये कार्य किए होते तो ऐसी सन्तापदायिनी पीड़ा मुझे न सहनी पड़ती।

यहाँ पर्यायोक्ति अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

राजा– **अहं हि दुःखमत्यन्तमसह्यं ज्वलनोपमम्।**

नैव सोढुं न संहर्तुं शक्नोमि मुषितेन्द्रियः।।7।।

अन्वय– अहं हि मुषितेन्द्रियः अत्यन्तम् असह्यं ज्वलनोपमं दुःखं नैव सोढुं नैव संहर्तुं शक्नोमि।

अनुवाद– संज्ञाशून्य इन्द्रियों से मैं अग्निसदृश तापदायी अत्यन्त दुःसह्य इस दुःख को न सह सकता हूँ, न समाप्त कर सकता हूँ।

व्याख्या– महाराज दशरथ की न तो ज्ञानेन्द्रियाँ और न ही कर्मेन्द्रियाँ उनके वश में रह गई हैं, यह है दुःख की पराकाष्ठा, जिसे सह पाना या नष्ट कर पाना, उनके सामर्थ्य के बाहर की बात है। सार यह कि वे अग्नि सदृश भयंकर कष्ट से मानों जल रहे हैं, उससे प्रतिकार का कोई उपाय भी उन्हें नहीं सूझ रहा है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

राजा– **आर्य सुमित्रे!**

तवैव पुत्र सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने।
रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते।।8।।

अन्वय– आर्य सुमित्रे! तव पुत्रः एव सत्पुत्रः, येन वने रघुकुलश्रेष्ठः नक्तन्दिवं छायया इव अनुगम्यते।

अनुवाद– ओ सुमित्रे! तुम्हारा पुत्र ही सुपुत्र है जो वन में रघुकुल में श्रेष्ठ राम का रात–दिन छाया के समान अनुगमन कर रहा है।

व्याख्या– रघुकुलभूषण मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सान्निध्य जिसे प्राप्त हो वह व्यक्ति निश्चय ही सौभाग्यशाली है। 'छाययेव' के कारण उपमा अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

राजा– **कष्टं भोः!**

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः।।9।।

अन्वय– यदि रथः शून्यः प्राप्तः (तर्हि) मम मनोरथः भग्नः। नूनं कालेन दशरथं नेतुं रथः प्रेषितः।

अनुवाद– हा शोक! यदि सुमन्त्र सूना रथ लाए हैं तो मेरी आशा टूट गई। निश्चय ही यमराज ने दशरथ को लाने के लिए (यह सूना) रथ भेजा है।

व्याख्या– वियोग की चरम दशा है प्रलाप, महाराज उसी के वशीभूत हो अपने मरण की आशंका कर रहे हैं। 'नूनं' पद से उत्प्रेक्षा अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

राजा– **धन्याः खलु वने वातास्तटाकपरिवर्तिनः।**
विचरन्तं वने रामं ये स्पृशन्ति यथासुखम्।।10।।

अन्वय– वने तटाकपरिवर्तिनः वाताः धन्याः खलु, ये वने विचरन्तं रामं यथासुखं स्पृशन्ति।

अनुवाद– वन में तालाबों में बहने वाली वायु निश्चय ही धन्य है जो वन में घूमते हुए रामका इच्छानुसार स्पर्श करती है।

व्याख्या– पुत्र का स्पर्श कितना सुखद होता है, वह भी राम सदृश पितृपरायण, आज्ञाकारी पुत्र का, अब यह स्पर्श सुख मुझे नहीं वन की हवाओं को मिल रहा है। यहाँ वायु के धन्यत्व का हेतु होने से काव्यलिंग अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

राजा– **(सर्वतो विलोक्य सशोकम्)**

एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा स्नेहाद् रामे जातवाष्पाकुलाक्षाः।
चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहाः विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति।।11।।

अन्वय— एते भृत्याः रामे स्नेहात् स्वानि कर्मणि हित्वा जातवाष्पाकुलाक्षाः चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहाः विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति।

अनुवाद— (सब ओर देखकर शोक से) ये सेवक राम के स्नेह से अपने–अपने कामों को छोड़कर आंसुओं से भरे हुए नेत्रों से, चिन्ता से कातर और शोक से सन्तप्त शरीरों से रोते हुए, महाराज की निन्दा कर रहे हैं।

व्याख्या— **भ्रातः! सुमन्त्र!**

> **क्व ते ज्येष्ठो रामः प्रियसुतः! सुतः सा क्व दुहिता—**
> **विदेहानां भर्तुनिरतिशयभक्तिर्गुरुजने।**
> **क्व वा सौमित्रिर्मा हतपितृकमासन्नमरणं—**
> **किमप्याहुः किं ते सकलजनशोकार्णवकरम्।।12।।**

अन्वय— भ्रातः सुमन्त्रः! ते प्रियसुतः ज्येष्ठः सुतः रामः क्व? गुरुजने निरतिशय भक्तिः विदेहानां भर्तुः सा दुहितां क्व? सौमित्रिः वा क्व? किं ते सकलजनशोकार्णवकरं आसन्नमरणं हतपितृकं मां किमपि आहुः?

अनुवाद— भाई सुमन्त्र! तुम्हारा प्रिय ज्येष्ठपुत्र राम कहाँ हैं? गुरुजनों के प्रति अत्यधिक श्रद्धायुक्त, मिथिला के स्वामी की वह पुत्री कहाँ है? सुमित्रापुत्र लक्ष्मण कहाँ? क्या समस्त जनों के लिए शोकसागर उपस्थित कर देने वाले, मरणासन्न, अभागे मुझ पिता के लिए उन्होंने कुछ भी सन्देश कहा है?

व्याख्या— शोक के अपार सागर में डूबे राजा मानो मृत्यु के बिल्कुल निकट हैं। यदि राम ने कोई सान्त्वना वचन कहें हों तो शीघ्र कहो अन्यथा मेरे प्राण निकले—यही राजा का आशय है। यहाँ शिखरिणी छन्द है, लक्षण—रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।

सुमन्त्रः— **कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः।**
वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः।।13।।

अन्वय— चिरं कमपि अर्थं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुतिाधराः वापस्तम्भितकण्ठत्वात् अनुक्त्वा एव वनं गताः।

अनुवाद— देर तक कुछ बात सोचकर कुछ कहने के लिए उनके अधर फड़के, परन्तु आँसुओं से गला रूँध जाने के कारण बिना कुछ कहे ही वन को चले गए।

व्याख्या— वन गमन का कारण मैं हूँ, महाराज दशरथ को यह आत्मग्लानि है, सम्भवतः इसी हेतु से वे राम से अपने प्रति क्षमादायी वचनों की अपेक्षा कर रहे हों। राम कुछ तो, कहें, वे मुझे दोष दें या क्षमा करें। वे कह सकते हैं कि पिता! परिस्थितिवश हमें वन जाना पड़ रहा है परन्तु इसके लिए आप स्वयं को अपराधी मानकर अपने वृद्ध शरीर को और कष्ट मत दीजिएगा परन्तु वे चाह कर भी कुछ न कह सके क्योंकि वे भी तो (इस समय) मानव थे, स्नेहीजनों का बिछोह, कष्टमय भविष्य की आशंका उन्हें भी तो शोकदग्ध कर रही थी।

वाष्पस्तम्भितकण्ठत्व रूप हेतु होने से काव्यलिंग अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है।

राजा— **पुत्र! राम! यत् खलु मया सन्ततं चिन्तितम्—**

> **राज्ये त्वाममिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः —**
> **कृत्वा, त्वतसहजान् समानविभवान् कुर्वात्मनः सन्ततम्।**
> **इत्यादिश्च च ते, तपोवनमितो गन्तव्यमित्येतया—**
> **कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे।।14।।**

अन्वय— त्वां राज्ये अभिषिच्य सन्नरपतेः लाभात् प्रजाः कृतार्थाः कृत्वा, त्वत् सहजान् सन्ततम् आत्मनः समानविभवान् कुरू इति च ते आदिश्य इतः तपोवनं गन्तव्यम् इति अहो एतया कैकेय्या हि तत् एकक्षणे अन्यथा निःशेषं कृतम्।

अनुवाद— राजा—पुत्र राम! मैं सदा सोचता था कि—

तुमको राज्यारूढ़ करके, श्रेष्ठ राजा रूप लाभ से प्रजा को कृतार्थ करके, अपने सहोदर भ्राताओं को निरन्तर अपने समान सम्पन्न बनाना— ऐसा आदेश तुम्हें देकर मैं तपोवन चला जाऊँगा परन्तु हाय! इस कैकेयी ने वह सब एकक्षण में ही सर्वथा नष्ट कर दिया।

व्याख्या— एक व्यक्ति भी विनाश का कारण बन सकता है, रघुवंश की आपत्ति का हेतु कैकेयी बनी। चौदह वर्ष के अन्तराल से अयोध्या को रामराज्य का सौभाग्य मिला। कैकेयी के एक दुराग्रह से राज्यसमृद्धि की योजना तत्काल सफल न हो सकी। कैकेयी के सर्व अनर्थ का हेतु होने से काव्यलिंग अलंकार व शार्दूलविक्रीडित छन्द है, लक्षण है— सूर्याश्वैर्मसजस्ततः समुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

राजा— **सुमन्त्र! उच्यतां कैकेय्याः —**
गतो रामः प्रियं तेऽस्तु त्यक्तोऽहमपि जीवितैः।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः, पापं सफलमस्त्विति।।15।।

अन्वय— रामः गतः, जीवितैः अहम् अपि त्यक्तः, पुत्रः क्षिप्रम् आनीयताम्, पापं सफलम् अस्तु इति।

अनुवाद— राजा—सुमन्त्र! कैकेयी से कह दो— राम चले गए, प्राण मुझे भी छोड़ रहे हैं, अपने पुत्र भरत को शीघ्र ले आओ, तुम्हारा षड़यन्त्र सफल हो।

व्याख्या— राम, लक्ष्मण, सीता वन को गए, उनके वियोग में—पश्चात्ताप में दशरथ भी मृतप्राय हैं, भरत को राज्य मिले—इसी कारण यह सारा षड़यन्त्र कैकेयी ने किया है तो भरत को बुलाकर वह अपना पाप सफल करें। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

राजा— **(आचम्य, अवलोक्य)**

अयममरपतेः सखा दिलीपः रघुरयमत्र भवानजः पिता मे।

किमभिगमनकारणं, भवद्भिः सह वसने समयो ममापि तत्र।।16।।

अन्वय— अयम् अमरपतेः सखा दिलीपः, अयं रघुः, अत्र भवान् मे पिता अजः अभिगमनकारणं किम्? ममापि सहवसने समयः (आगतः)।

अनुवाद— (जल से आचमन करके, देखकरके) यह देवराज इन्द्र के मित्र दिलीप हैं। यह रघु हैं, यह मेरे पूज्य पिता अज हैं, आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है? (अब) मेरा भी आप लोगों के साथ रहने का समय आ गया है।

व्याख्या— अन्ततः दशरथ मृत्यु को प्राप्त हुए, एक अघटित घटना घटी, परन्तु भवितव्यता को यही स्वीकार्य था, विधि ने यही विधान रचा था, विधि के विधान पर मनुष्य का वश नहीं है। यहाँ पर्यायोक्ति अलंकार तथ पुष्पिताग्रा छन्द है, लक्षण है—

इति द्वितीयोऽङ्कः

3.4 बोध प्रश्न

1. प्रथम अंक के चौथे तथा सातवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

2. प्रथम अंक के नवें तथा ग्यारहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

3. प्रथम अंक के बारहवें तथा पन्द्रहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

4. प्रथम अंक के सोलहवें तथा सत्रहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

5. द्वितीय अंक के पहले तथा तीसरे श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

6. द्वितीय अंक के पांचवें तथा आठवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

7. द्वितीय अंक के ग्यारहवें तथा बारहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

8. द्वितीय अंक के तेरहवें तथा चौदहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई-4 तृतीय, चतुर्थ, पंञ्चम, षष्ठ, सप्तम अङ्क के श्लोकों की अन्वय, हिन्दी अनुवाद एवं हिन्दी व्याख्या

इकाई की रुपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 तृतीय अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

4.3 चतुर्थ अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

4.4 पंञ्चम अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

4.5 षष्ठ अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

4.6 सप्तम अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

4.7 बोध प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

इस इकाई में प्रतिमानाटक नाटक के चतुर्थ से सप्रम अङ्क तक के सभी श्लोकों के अन्वय, हिन्दी में अनुवाद तथा हिन्दी में व्याख्या का अध्ययन किया जाना है। हिन्दी भाषा में व्याख्या द्वारा आप सुगमता से नाटक को समझ सकेंगे।

4.1 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात शिक्षार्थी चतुर्थ से से सप्तम अङ्क तक के सभी श्लोकों का अध्ययन कर पाएँगे।
- सभी श्लोको का अन्वय तथा हिन्दी में अनुवाद करना सीख पाएँगे।
- सभी श्लोकों का हिन्दी अनुवाद कर पाएँगे।
- सम्पूर्ण नाटक को सरलता से हृदयंगम कर पाएँगे।

4.2 तृतीय अंक के श्लोक (अन्वय, अनुवाद एवं व्याख्या)

भरतः – तदुच्यताम् –
पितुर्मे को व्याधिः
सूतः – हृदयपरितापः खलु महान्
भरतः – किमाहुस्तं वैद्याः
सूतः – न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः।
भरतः – किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि
सूतः – भूमौ निरशनः
भरतः – किमाशा स्याद्
सूतः – दैवम्
भरतः – स्फुरति हृदयं वाह्य रथम्।।1।।

अनुवाद –

भरत – कहो, मेरे पिता को क्या रोग है?
सूत – उन्हें भयंकर हार्दिक व्यथा है।
भरत – वैद्यों ने क्या कहा?
सूत – वैद्य उस विषय में निपुण नहीं हैं।

भरत	–	क्या भोजन करते हैं, सोते हैं?
सूत	–	भूमि पर सोते हैं, निराहार रहते हैं।
भरत	–	क्या आशा है?
सूत	–	जो भगवान् की इच्छा।
भरत	–	मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ चलाइए।

व्याख्या– महाकवि भास की काव्यकुशलता का चूड़ान्त निदर्शन है प्रस्तुत श्लोक। वार्तालाप के माध्यम से कवि ने ननिहाल से लौट रहे भरत को पिताश्री की रूग्णता की सूचना दी है। कथोपकथन में श्लोक का ग्रथन नितान्त मनोहारी और कवित्व प्रतिभा का परिचायक है। श्लोक में शिखरिणी छन्द है।

भरतः– **(रथवेगं निरूप्य) अहो न् खलु रथवेगः। एते ते,**

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया,
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं–
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति।।2।।

अन्वय– द्रुतरथगतिक्षीणविषयाः द्रुमाः धावन्ति इव, मही उद्वृत्ताम्बुः नदी इव नेमिविवरे निपतति। अरव्यक्तिः नष्टा, चक्रवलयं जवात् स्थितमिव, अश्वोद्धूतं रजः पुरतः पतति न अनुपतति।

अनुवाद– भरत – (रथवेग को देखकर) अरे! रथवेग कितना अधिक है। ये रथ की तीव्रगति से के कारण वृक्ष मानों छोटे हो कर दौड़ रहे हैं, धरती उछलते हुए जलवाली नदी के समान पहिए की धुरी के मध्य में मानों गिर रही है। अरपंक्ति स्पष्ट नहीं दिख रही है, चक्रपरिधि वेग के कारण मानों स्थिर हो गई हे, अश्वों के खुरों से उठाई गई धूल आगे गिरती है पीछे नहीं।

व्याख्या– भरत रथ की स्वाभाविक तीव्र गति का वर्णन कर रहे हैं। कवि कालिदास ने महाराजा दुष्यन्त के मृगयावर्णन में भी रथ की गति सम्बन्धी एक श्लोक की रचना की है। स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

सूतः– **(आत्मगतम्) भोः कष्टम्, कुतः –**

पितुः प्राणपरित्यागं मातुरैश्वर्यलुब्धताम्।
ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं च त्रीन, दोषान् कोऽमिधास्यति।।3।।

अन्वय– भोः कष्टं, कुतः पितुः प्राणपरित्यागं, मातुः ऐश्वर्यलुब्धतां, ज्येष्ठभ्रातुः प्रवासं–त्रीन् दोषान् कः अमिधास्यति।

अनुवाद– अरे कष्ट है, क्योंकि –

पिता का प्राण परित्याग, माँ का ऐश्वर्य लोभ, बड़े भाई का वनगमन– ये तीन दुःख इनसे कौन कहेगा?

व्याख्या– तीन् महान् विपत्तियाँ इस नवयुवक को कैसे कही जाए, एक विपत्ति ही प्राणहारक होती है, एक साथ तीन आपदाएँ यह बालक कैसे सह सकेगा?

भरतः– मा तावद् भोः!

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते

किं कृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता।।4।।

अन्वय– अस्मासु किञ्चिद् वक्तव्यं, विशिष्टः प्रतिपाल्यते। अयं प्रतिषेधः किं कृतः, नियमप्रभविष्णुता।

अनुवाद– भरत – प्रणाम नहीं क्यों! हममें क्या कोई दोष है? अथवा किसी विशिष्ट व्यक्ति की प्रतीक्षा है। यह निषेध किसलिए है? अथवा यह आपका अधिकार मद है।

व्याख्या– राजपुत्रों को शिष्टाचार प्रदर्शन से रोकना सामान्य बात नहीं है, यदि कोई यह चेष्टा कर रहा है तो यह या तो उसका दुस्साहस है अथवा उसका अधिकार। प्रस्तुत स्थल पर अनुष्टुप् छन्द है।

भरतः– **(सहर्षम्) इक्ष्वाकव इति। एते तेऽयोध्या भर्तारः।**

एते ते देवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी–

मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः।

एते ते प्राप्नुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती–

मेते ते, मृत्युना ये चिरमनवसिताश्छन्दं मृगयता।।5।।

अन्वय– एते ते असुरपुरवधे देवतानाम् अमिसरीं गच्छन्ति, एते ते सपुरजनपदाः स्वसुकृतैः शक्रलोके गच्छन्ति। एते ते कृत्स्नां वसुमतीं स्वभुजबलजितां प्राप्नुवन्तः, एते ते छन्दं मृगयता मृत्युना चिरम् अनवसिताः।

अनुवाद– भरत – (हर्ष के साथ) इक्ष्वाकुवंशी, ये अयोध्या के राजा–

ये वही राजागण हैं जो असुरों के नगर के विनाश हेतु देवताओं के आगे चलते थे, ये वही राजागण हैं जो नगर और जनपद की प्रजाओं के साथ अपने पुण्य कर्मों से इन्द्रलोक अर्थात् स्वर्ग को जाते थे। ये वही राजागण हैं जो सम्पूर्ण धरती को अपनी भुजाओं के बल से जीतकर पा लेते थे, ये वही राजागण हैं जो मृत्यु की इच्छा रखते हुए चिरकाल तक जीवित रहते थे।

व्याख्या– रघुवंशी राजागण आसुरी शक्तियों के विनाश में देवताओं की सहायता करते थे, अपने पुण्यकर्मों से वे प्रजा को भी सन्मार्गगामी बनाते थे तथा प्रजा सहित स्वर्गलोक के सुखों का भोग करते थे। पृथिवी पर शत्रुओं का विनाश उनके लिए सामान्य सी बात थी, मृत्यु पर भी उनका अधिकार था अर्थात् चिरकाल तक पुण्यकार्य करते हुए वे इच्छामृत्यु का वरण करते थे। यहाँ सुवदना छंद है।

दवकुलिकः– **तिष्ठ।**

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्री शुल्कार्थे विसर्जिताः।

इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं नु पृच्छसे।।6।।

अन्वय– येन स्त्रीशुल्कार्थे प्राणाः राज्यं च विसर्जिताः, दशरथस्य इमां प्रतिमां त्वं किं न पृच्छसे?

अनुवाद– जिन्होंने स्त्रीशुल्क के लिए अपने प्राण और राज्य छोड़ दिए, महाराजा दशरथ की इस प्रतिमा के विषय में आप कुछ क्यों नहीं जानना चाहते हैं?

व्याख्या– भरत को देवकुलिक से यह सूचना मिल चुकी थी कि मृत रघुवंशी राजाओं की प्रतिमाएँ ही प्रतिमागृह में स्थापित की जाती थीं अतएव वहाँ दशरथ की प्रतिमा की कल्पना भी वे नहीं कर सकते थे। पिता दिवंगत हो चुके हैं, यह प्रथम सूचना उन्हें देवकुलिक से प्राप्त होती है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

भरतः– **हा तात् (मूर्च्छितः। पुनः प्रत्यागत्य)**

हृदय! भव सकामं यत्कृते शंकसे त्वं

श्रृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत्।

स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्द–

स्त्वथ चा भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः।।7।।

अन्वय– हे हृदय! सकामं भव। त्वं यत्कृते शंकसे तत् पितृनिधनं श्रृणु, धैर्यं च तावद् गच्छ। यदि तु नीचः अयं शुल्कशब्दः मां स्पृशति, अथ च सत्यं भवति तत्र देहः विशोध्यः।

अनुवाद– हा तात! (मृच्छित होकर, पुनः चैतन्य होकर)

हृदय अब तुम्हारी इच्छा पूरी हुई, जिसकी तुम्हें आशंका थी वही पिताकी मृत्यु (का समाचार) सुनो और धीरज धरो। यदि यह नीच स्त्रीशुल्क शब्द मेरे लिए प्रयुक्त है, यदि यह सत्य होता है तो मुझे अपना शरीर शुद्ध करना होगा।

व्याख्या– रघुवंश के श्रेष्ठ गुण भरत में भी विद्यमान हैं, पितृमरण की अकस्मात् घटी घटना राजनीतिक षड़यन्त्र हो सकती है, सम्भवतः उनकी माँ इस षडयन्त्र का केन्द्र हों यदि सचमुच ऐसा हुआ तो मैं इस छल में सम्मिलित न होऊँगा। मैं कठोरतम परीक्षा देकर अपना निर्दोषत्व सिद्ध करूँगा। संसार साक्षी है, भरत द्वारा आचरित भावी क्रिया–कलापों ने उन्हें निर्दोष सिद्ध कर आप्रलयान्त मान–सम्मान का अधिकारी भी बनाया।

प्रस्तुत श्लोक में मालिनी छन्द है– ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

भरतः– **(समाश्वस्य)**

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।

पिपासार्तोऽनुजानामि क्षीणतोयां नदीमिव।।8।।

अन्वय– पिता भ्रात्रा च वर्जिताम् अटवीभूताम् अयोध्यां पिपासार्तः क्षीणतोयां नदीम् इव अनुधावामि।

अनुवाद– (संभल कर) पिता और भाई से विहीन, वन जैसी अयोध्य नगरी को उसी प्रकार जा रहा हूँ जैसे प्यासा व्यक्ति सूखी नदी की ओर दौड़ता है।

व्याख्या– स्नेही पिता और भाइयों के बिना अयोध्या नगरी वन जसी उजाड़ होगी, उनसे मिलन की आशा में जाने का अपूर्व उत्साह अब शान्त हो गया, अब तो वहाँ जाना वैसा ही है जैसे प्यास सूखी नदी की ओर दौड़ता तो है परन्तु उसकी यह दौड़ व्यर्थ होती है।

नदीम् इव के कारण उपमा अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

भरतः— तिष्ठ।

तं स्मृत्वा शुल्कदोषं भवतु मम सुतो राजेत्यभिहितं
तद्धैर्येणाश्वसन्त्या व्रज सुत! वनमित्यार्थोऽप्यभिहितः।
तं दृष्ट्वा बद्धचीरं निधनमसदृशं राजा ननु गतः
पात्यन्ते धिक्प्रलापा ननु मयि सदृशाः शेषाः प्रकृतिभि।।।9।।

अन्वय— तं शुल्कदोषं स्मृत्वा मम सुतः राजा भवतु इति तया अभिहितम्, तत् धैर्येण आश्वसन्त्या सुत, वनं व्रज इति आर्यः अपि अभिहितः, तं बद्धचीरं दृष्टवा राजा असदृशं निधनं गतः ननु, प्रकृतिभिः शेषाः सदृशाः धिक् प्रलापाः ननु मयि पात्यन्ते।

अनुवाद— रुकिए, उस (अनर्थ के कारण) विवाह शुल्क को याद कर, मेरा पुत्र राजा हो, यह कैकेयी ने कहा होगा; उस विषय में राजा द्वारा धैर्यपूर्वक आश्वस्त किए जाने पर (मनोबल बढ़ने से) पुत्र राम वन को जाएँ इस प्रकार आर्य को आदेश दिया होगा, वल्कलवेशधारी राम को देखकर राजा असमय ही दिवंगत हुए होंगे, प्रजा (दुःखी होकर) माँ के पश्चात् मुझे धिक्कार रही होगी।

व्याख्या— विवाहशुल्क के रूप में पिता द्वारा माँ कैकेयी से की गईं दो प्रतिज्ञाएँ भरत को प्रतिज्ञात थीं, घटनाक्रम को सुनकर वे समग्र दृश्य की कल्पना स्वयं कर लेते हैं। दुःख तो इस बात का है कि इस षड्यन्त्र से उनका कोई सम्बन्ध नहीं तथापि कारण वे बने हैं, माँ के साथ वे भी प्रजा के कोपभाजन हो रहे होंगे।

'ननु' शब्द से उत्प्रेक्षा अलंकार तथा सुवदना छन्द है।

सुमन्त्रः— **(प्रविश्यावलोक्य)**

अयं हि पतितः कोऽपि वयःस्थ इव पार्थिवः

देवकुलिकः— परशंकामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्यम्।।10।।

अन्वय— अयं हि कोऽपि वयः स्थः पार्थिवः इव पतितः। परशंका कर्तुम् अलम्, हि अयं भरतः गृह्यताम्।

अनुवाद— सुमन्त्र – (प्रवेश कर, देख कर) यह कोई युवा दिखने वाले महाराज दशरथ के समान गिर गया है।

देवकुलिक— किसी अन्य की आशंका न करें, यह भरत हैं, संभालें।

व्याख्या— पिता जैसे आकार–प्रकार वाले भरत को देखकर सुमन्त्र की आशंका को देवकुलिक स्पष्ट कर देते हैं। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

भरतः— **(सरोषमुत्थाय) आः पापे!**

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे।
गंगायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता।।11।।

अन्वय— मम मातुः मातुः च मध्यस्था त्वं गंगायमुनयोः मध्ये प्रवेशिता कुनदी इव न शोभसे।

अनुवाद— (क्रोध से उठकर) ओ पापिनी! मेरी माँ कौशल्या और माँ सुमित्रा के मध्य तुम गंगा और यमुना के मध्य क्षुद्र नदी के समान शोभित नहीं होती हो।

व्याख्या– कौशल्या तथा सुमित्रा महान् हैं जिन्होंने अपनी सन्तानों के लिए कुछ नहीं चाहा, कहाँ वे और कहाँ मेरी जन्मदात्री कैकेयी, मानो पवित्र गंगा–यमुना में कोई गन्दी नहीं आ मिली हो।

'कुनदीव' के कारण यहाँ उपमा अलंकार है इसमें अनुष्टुप् छन्द है।

भरतः– पश्यतु भवती

त्यक्त्वा स्नेहं शीलसङ्क्रान्तदोषैः पुत्रास्तावन्नन्वपुत्राः क्रियन्ते।

लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येव धर्मं भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता।।12।।

अन्वय– ननु शीलसंक्रन्तदोषैः तावत्पुत्राः स्नेहं त्यक्त्वा अपुत्राः क्रियन्ते, एवं लोके अपूर्वं स्थापयामि, भर्तृद्रोहात् माता अपि अमाता अस्तु।

अनुवाद– शील आचारादि के दोषों से दोषी इसने पुत्रो को भी अपुत्र बना दिया है। आज मैं संसार में अपूर्व धर्म की स्थापना करता हूँ, पति से द्रोह करने वाली माता भी माता न रहे।

व्याख्या– सभी अनर्थों की जड़ कैकेयी भी भर्त्सना करते हुए भरत माँ को संस्कारी स्त्री नहीं मानते हैं क्योंकि उन्होंने राम, लक्ष्मण, सीता सदृश सम्मान और स्नेह देने वाली सन्तानों को भी परायों की तरह निर्वासित कर दिया। खिन्नमन से स्वीकार करते हैं कि पति से द्रोह करने वाली मेरी माँ को माँ कहलाने का अधिकार नहीं रहा।

यहाँ अप्रस्तुत अलंकार तथा शालिनी छन्द है।

भरतः– **पितुर्मे औरसः पुत्रो न क्रमेणाभिषिच्यते।**

दयिता भ्रातरो न स्युः प्रकृतीनां न रोचते।।13।।

अन्वय– मे पितुः औरसः पुत्रः न क्रमेण अभिषच्यते, भ्रातरः दयिता न स्युः, प्रकृतीनां न रोचते?

अनुवाद– क्या मेरे पिता के वास्तविक ज्येष्ठ क्रम से प्राप्त पुत्र राम का अभिषेक नहीं हो रहा था, क्या हम भाइयों में परस्पर प्रेम नहीं है, क्या राम का अभिषेक प्रजा की रुचि के अनुकूल नहीं था?

व्याख्या– भरत के अनुसार राम ज्येष्ठ पुत्र हैं, भाइयों में उनके प्रति कोई द्वेष नहीं है, राम का राज्याभिषेक प्रजा द्वारा अनुमोदित भी है तो कैकेयी ने महाराज दशरथ के इस शुभ संकल्प में विघ्न क्यों उपस्थित किया? भरत के अनुसार यह महारानी का भयंकर अपराध है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

भरतः– **कष्टं कृतं भवत्या,**

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवतो।
न शीर्णं यद दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवती–
महो धात्रा सृष्टं भवति! हृदयं वज्रकठिनम्।।14।।

अन्वय– भवति! राज्यैषिण्या त्वया नृपतिः असुभिः नैव गणितः, त्वं च वनं व्रज इति ज्येष्ठं सुतं प्रेषितवती। यत् वल्कलवतीं जनकतनयां दृष्ट्वा न शीर्णम्; अहो! धात्रा वज्रकठिनं हृदयं सृष्टम्।

अनुवाद– आपने कितना अनुचित किया,

आपने! राज्य चाहने वाली आपने! महाराज के प्राणों की चिन्ता नहीं की, 'तुम वन जाओ' यह कहकर बड़े बेटे को वन भेज दिया। वल्कलवस्त्र पहन लेने वाली सीता को भी देखकर जो हृदय नहीं विदीर्ण नहीं हुआ अरे! विधाता ने उस हृदय को वस्तुतः वज्र से भी कठोर बनाया है।

व्याख्या– राज्यलोभी माँ ने पुत्र के लिए 'राज्यपद' और अपने लिए 'राजमाता' पद सुनिश्चित किया था, पुत्र भरत ने माँ की दुबुर्द्धि से लज्जित हो उन्हें बता दिया कि स्वार्थान्ध माँ ने एक लोभ के लिए कितने अनर्थ कर दिए।

अनेक हेतुओं का अनुमान होने से अनुमति अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

सुमन्त्रः– कुमार! एतौ वशिष्ठवामदेवौ अभिषेक पुरस्कृत्य भवन्तं विज्ञापयतः

गोपहीना यथागावो विलयं यान्त्यपालिताः।

एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः।।15।।

अन्वय– यथा गोपहीनाः अपालिताः गावः विलयं यान्ति, एवं नृपतिहीनाः प्रजाः विलयं यान्ति वै।

अनुवाद– सुमन्त्र–कुमार! ये वशिष्ठ वामदेव आदि ऋषि राज्याभिषेक का विचार करके आपको सूचित कर रहे हैं।

जिस प्रकार गोपालों के बिना अरक्षित गाएँ नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार राजा से रहित प्रजा नष्ट हो जाती है।

व्याख्या– राजा के बिना राज्य अनाथ है, शत्रुदृष्टि भी राजाविहीन राज्य पर लगी रहती है अतः ज्येष्ठों के विचार में भरत का राज्यतिलक हो जाना चाहिए।

यहाँ वाक्योपमा अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

सुमन्त्रः– **क्व भवान् यास्यति?**

भरतः– **तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः।**

नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः।।16।।

अन्वय– यत्र असौ लक्ष्मणप्रियः वर्तते, तत्र यास्यामि, अयोध्या तं विना अयोध्या न, सा अयोध्या यत्र राघवः।

अनुवाद– सुमन्त्र– आप कहाँ जाएँगे?

भरत– जहाँ लक्ष्मणप्रिय राम हैं, वहाँ जाऊँगा, अयोध्या उनके बिना अयोध्या नहीं, अयोध्या वहाँ जहाँ राम।

व्याख्या– पश्चात्ताप दग्ध भरत राम से मिलने को व्याकुल हैं, इस हेतु वे (राज्याभिषेक का आग्रह ठुकरा कर) शीघ्र वन गमन को प्रस्तुत हो जाते हैं।

यहाँ अयोध्या का निषेध तथा वन में अयोध्या की स्थापना के कारण अपह्युति अलंकार है, लक्षण है–प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्युतिः। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग है।

4.3 चतुर्थ अंक के श्लोक (अन्वय, अनुवाद एवं व्याख्या)

भरतः– **स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे**
पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः
द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु
रामाभिधानमपरं जगतः शशांकम्।।1।।

अन्वय– सुकृतानुयात्रे नरपतौ स्वर्गं गते पौराश्रुपातसलिलैः अनुगम्यमानः अकृपणेषु तपोवनेषु, रामाभिधानम् अपरं जगतः शशांकं द्रष्टुं प्रयामि।

अनुवाद– पुण्यवान् राजा दशरथ के स्वर्ग चले जाने पर नगरवासियों के आँसुओं के जल से अनुगमन को विवश हुआ, उदार वनवासी राम नामक जगत के द्वितीय चन्द्र को देखने जा रहा हूँ।

व्याख्या– महाराजा पिता होते तो यह उनका दायित्व था, उनके दिवंगत हो जाने पर नगरवासियों की हार्दिक इच्छा के अनुरूप मैं भरत इस राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी की कुशलता का समाचार लेने का दायित्व निभा रहा हूँ।

यहाँ राम पर चन्द्र का आरोप होने से रूपक अलंकार है, लक्षण है–रूपक रूपितारोपो विषये निरपह्नवे। वसन्ततिलका छन्द है–उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः।

भरतः– **एष एष आयुष्मान् भरतः–**
दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रो
यज्ञोपयुक्तविभवस्य नृपस्य पौत्रः।
भ्राता पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य
रामस्य रामसदृशेन पथा प्रयाति।।2।।

अन्वय– दैत्येन्द्रमानमथनस्य नृपस्य पुत्रः यज्ञोपयुक्तविमवस्य नृपस्य पौत्रः पितुः प्रियकरस्य जगत्प्रियस्य रामस्य भ्राता रामसदृशेन पथा प्रयाति।

अनुवाद– असुरों के स्वामी का अहंकार तोड़ देने वाले राजा दशरथ के पुत्र, यज्ञों में अपना सम्पूर्ण धन–वैभव समर्पित कर देने वाले महाराज अज के पौत्र, राम के भाई भरत, पिता के प्रिय, संसार केप्रिय राम के पथ का ही अनुसरण कर रहे हैं।

व्याख्या– श्रेष्ठ वंश रघुवंश, पितृपरम्परा से भरत में भी वे सभी गुण स्वभावतः विद्यमान हैं जो उस वंश की अन्य सन्तानों में दृष्टिगत होते हैं।

साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग होने से परिकर अलंकार है तथा वसन्ततिलका छन्द है।

भरतः– **मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीविसर्जिता।**
तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम।।3।।

अन्वय– येन मम मातुः प्रियं कर्तुं लक्ष्मीः विसर्जिता अहं तं परमं दैवतं द्रष्टुम् इच्छामि।

अनुवाद— जिस राम ने मेरी माता का प्रिय करने के लिए राज्यलक्ष्मी का परित्याग कर दिया, मैं अपने उन्हीं परम आराध्य को देखना चाहता हूँ।

व्याख्या— राम ने भरत की माँ कैकेयी की अभिलाषा पूर्ति हेतु राज्य सुख का त्याग किया है तो भरत का भी यह दायित्व बनता है कि वे राम की सुध लें।

राम पर देवत्व का आरोप होने से रूपक अलंकार तथा उत्तरवाक्य का हेतु होने से काव्यलिंग अलंकार है तथा अनुष्टुप् छन्द है।

सुमन्त्रः— **कुमार! एतस्मिन्नाश्रमपदे –**

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः।

सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिता।।4।।

अन्वय— अत्र महायशाः रामः च सीता च लक्ष्मणश्च येषु सत्यं शीलं भक्तिः च विग्रहवत् स्थिता।

अनुवाद— कुमार! इसी आश्रम में –

महायशस्वी राम, सीता और लक्ष्मण वास करते हैं जिनमें सत्य, शील और भक्ति मूर्तिवान् होकर स्थित है।

व्याख्या— यही चित्रकूट स्थित वह स्थल है जहाँ सत्यरूप राम, शीलरूप सीता और भक्तिरूप लक्ष्मण निवास करते हैं।

क्रमानुसार वर्णन होने से यथासंख्य अलंकार है, अनुष्टुप् छन्द है।

भरतः— **(रथादवतीर्य) भोस्तात् निवेद्यतां राघवाय–**

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।

भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति।।5।।

अन्वय— निर्घृण कृतघ्नः प्राकृतः प्रियसाहसः भक्तिमान् कश्चित् आगतः कथं तिष्ठतु यातु इति।

अनुवाद— भरत – (रथ से उतर कर) हे सुमन्त्र तात! पूज्य राम से निवेदित करें– नृशंस, कृतघ्न, अधम, बुरे कार्यों में साहस दिखाने वाला किन्तु भक्तिगुण से युक्त कोई व्यक्ति आया है, क्या वह प्रतीक्षा करे अथवा लौट जाए।

व्याख्या— अपरोक्ष रूप से जिसकी भी इतना बड़ी हानि की हो, अन्तरात्मा से लज्जित होते हुए भी उसके सामने जाने का साहस चाहिए, भरत की यही मनोव्यथा है।

साभिप्राय विशेषणों के कारण परिकर अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

रामः— **(आकर्ण्य, सहर्षम्)**

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे

गाम्भीर्यात् परिभवतीति मेघनाद।

यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशंङ्का

सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः।।6।।

अन्वय— मे पितुः सदृशतरः कस्य असौ स्वरः गाम्भीर्यात् मेघनादं परिभवति, यः मम हृदयस्य बन्धुशंङ्कां कुर्वन् इष्टतः सस्नेहः श्रुतिपथं प्रविष्टः।

अनुवाद– (सुनकर, सहर्ष) मेरे पिता के समान किसका यह स्वर गम्भीरता से बादलों की गर्जना को भी तिरस्कृत करता हुआ स्वाभाविक रूप से स्नेहपूर्वक कानों में सुनाई पड़ रहा है।

व्याख्या– सहोदर का स्नेह अवसर पाते ही अप्रत्यक्ष रूप से उद्वेलित करता है, राम को भी अवचेतन मस्तिष्क में प्रिय भरत के आने का आभास हो गया है। प्रस्तुत श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है।

लक्ष्मणः– **आर्य! एषहि**

घनः स्पष्टो धीरः समदवृषभस्निग्धमधुरः

कलः कण्ठे वक्षस्यनुपहतसंचाररभसः।

यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया

चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः।।7।।

अन्वय– घनः स्पष्टः धीरः समदवृक्षभस्निग्धमधुरः कलः स्फुटकरणनानाक्षरतया कण्ठे वक्षसि अनुपहतसंचाररभसः चतुर्णां वर्णानाम् अभयं दातुम् इव व्यवसितः।

अनुवाद– आर्य! यह स्वर मांसल, स्पष्ट, धीर मतवाले सांड़ की ध्वनि के समान सरस, मधुर, सुन्दर, विशिष्ट उच्चारणस्थानों से उच्चरित गले ओर छाती में निर्विघ्न शीघ्र प्रविष्ट होने वाला, चारों वर्णों को अभयदान देता सा प्रस्तुत है।

व्याख्या– सहोदर का स्वर, श्रेष्ठवंशी भरत का स्वर, कुलगुरू से सम्यक् शिक्षा प्राप्त भरत का कण्ठ स्वर स्पष्ट अतएव मनोहारी होने से आकर्षित तो करेगा ही। राजकुमार का स्वर है तो चारों वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र को अभयदान मिले, स्वर में यह गुण भी होना ही चाहिए, ऐसी वर्णोच्चारण की स्पष्टता और स्वरों की मधुरता निश्चय ही प्रभावित करेगी।

स्वर में अभयदान की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलंकार तथा शिखरिणी छन्द का संयोग है।

सुमन्त्रः– **कुमार!**

रघोश्चतुर्थोऽयमजात तृतीयः पितुः प्रकाशस्य इव द्वितीयः।

यस्यानुजस्त्वं स्वकुलस्य केतोस्तस्यानुजोऽयं भरतः कुमारः।।8।।

अन्वय– अयं रघोः चतुर्थः अजात् तृतीयः प्रकाशस्य तव पितुः द्वितीयः स्वकुलस्य केतोः यस्य त्वम अनुजः तस्य अनुजः अयं कुमारः भरतः।

अनुवाद– यह महाराज रघु के चतुर्थ अर्थात् प्रपौत्र, अज से तृतीय अर्थात् पौत्र लोक विख्यात तुम्हारे पिता के द्वितीय अर्थात् पुत्र तथा अपने वंश की ध्वजा स्वरूप जिस राम के तुम अनुज हो, उन्हीं के अनुज कुमार भरत हैं। यहाँ कवि ने उपजाति छन्द का प्रयोग किया है।

व्याख्या– रघुवंश के वंशज भरत का यह समुचित परिचय था, कवि ने सुमन्त्र के माध्यम से अति कुशलता से लक्ष्मण को भरत के भ्रातृत्व का प्रमाण दिया है। यहाँ उपजाति छन्द है।

भरतः– **बाढम (उपेत्य) जयत्वार्यः। आर्य।**

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातवत्सलः।

संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्श इव तिष्ठति।।9।।

अन्वय– अयं ते दयितः भ्रातृवत्सलः भ्राता भरतः यत्र आदर्शे इव ते रूपं सक्रान्तं तिष्ठति।

अनुवाद– लक्ष्मण – ठीक है। (समीप जाकर) आर्य की जय हो, जय हो। यह आपके प्रिय भ्रातृस्नेही भाई भरत है जिनमें दर्पण के समान आपकी आकृति संक्रान्त हो रही है।

व्याख्या– राम भरत के सहोदर है तो एक में दूसरे की आकृति झलकना स्वाभाविक है। लक्ष्मण आकृति से ही भरत को पहचान लेते हैं।

'आदर्शे इव' के कारण उपमा अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है।

रामः– **इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मातव भावं तनये निवेश्य।**

तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा हर्षास्त्रमासारमिवोत्सजन्ती।।10।।

अन्वय– इयं तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा आसारमिव हर्षास्त्रम् उत्सृजन्ती तनये इव भावं निवेश्य स्वयं मानहेतोः गच्छतु।

अनुवाद– ओस बिन्दुओं से भरे कमलदल के समान नयनों वाली, धाराप्रवाह हर्ष के आंसुओं को बहाती हुई पुत्र भरत के प्रति वात्सल्य भाव से भरी हुई सीता स्वयं भरत के सत्कार के लिए जाएँ।

व्याख्या– भरत भ्रातृस्नेह से इतना कष्ट सहकर इतनी दूर राम से मिलने आए हैं अतः सीता सम्मानपूर्वक भरत को लेकर आएँ। प्रथम पंक्ति में 'मातेव' पद में तथा द्वितीय पंक्ति में 'आसारमिव' पदों में उपमा अलंकार है।

भरतः– **अये, इयमत्रभवती जनकराजपुत्री?**

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात्।

जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम्।।11।।

अन्वय– हलात क्षेत्रोदरात् जातम् इदं स्त्रीमयं तेजः यत् नृपेन्द्रस्य जनकस्य तपसः निदर्शनम्।

अनुवाद– भरत–अरे! यह पूज्या सीता हैं?

हल चलाते समय पृथिवी के गर्भ से उत्पन्न यह नारीरूप तेज राजा जनक की तपस्या का उदाहरण है।

व्याख्या– सीता राजा जनक के हल से खेत जोतते समय उत्पन्न हुईं थी अतएव वे विशेष तेजस्विनी थी, सामान्य नारी नहीं। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

रामः– **(सहर्ष) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार!**

वक्षः प्रसारय कपाट पुट प्रमाण–

मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन।

उन्नामयााननमिदं शरदिन्दु कल्पं

प्रहलादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम्।।12।।

अन्वय– कपाटपुटप्रमाण वक्षः प्रसारय सुविपुलेन भुजद्वयेन माम् आलिंङ्ग। शरदिन्दुकल्प इदम् आननम् उन्नामय, व्यसनदग्धम् इदं शरीरं प्रह्लादय।

अनुवाद– राम – (सहर्ष) आओ, आओ इक्ष्वाकुकुमार!

कपाट के समान चौड़ी छाती फैलाकर, विशाल भुजाओं से मेरा आलिंगन करो। शरत्कालीन चन्द्रमा के समान आहलादक अपने मुख को ऊपर उठाओ, दुःख से जलते हुए मेरे शरीर को शीतल करो।

व्याख्या— दीर्घकाल के पश्चात् भाई से भाई मिल रहा है, भ्रातृस्नेह से वातावरण भावुक है, एक दूसरे का आलिंगन कर वियोग दग्ध ह्रदयों को शीतलत मिलेगी ही। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

सुमन्त्रः— **(सशोकम्)**

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य।

बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे।।13।।

अन्वय— नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादं कुलस्य अनाथतां, बहुविधं दुष्प्रसह्यम् अनुभूय, मे आयुषा गुणे इव बहु अपराद्धम्।

अनुवाद— महाराज दशरथ की मृत्यु, आपका वनवास, भरत का कष्ट, कुल आश्रयहीनता आदि अनेक प्रकार के असह्य कष्टों को अनुभव करा कर मेरी दीर्घ आयु ने गुणों के साथ मानो दोष अधिक दिए हैं।

व्याख्या— संसार में सुख–दुःख धूप–छाँव की भाँति लगे ही रहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति निर्धन हो या दरिद्र, उसे इन दोनों को ही जीवन में सहना पड़ता है। कर्मानुसार कोई कष्ट अधिक पाता है तो कोई आजीवन सुख के झूले पर झूलता है। यहाँ पुष्पिताग्रा छन्द है, लक्षण है— अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।

भरतः— **आर्य!**

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा।

नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति।।14।।

अन्वय— इह देहेन स्थास्यामि, तत्र कर्मणा स्थास्यामि, भवतः नाम्नैव राज्यं कृतरक्षम्।

अनुवाद— आर्य! मैं शरीर से यहाँ रहूँगा, वहाँ व्यवस्था करता रहूँगा, आपके नाममात्र से ही राज्य की रक्षा हो जाएगी।

व्याख्या— राम सदृश भ्राता का सान्निध्य कोई क्योंकर छोड़ना चाहेगा। राम के नाममात्र से राज्य में उपद्रव नहीं होंगे, शान्ति रहेगी। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

रामः— **वत्स!**

पितुर्नियोगदादहमागतो वनं न वत्स! दर्पान्न भयान्न विभ्रमात्।

कुल च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते।।15।।

अन्वय— वत्स! अहं पितुः नियोगात् वनम् आगतः। दर्पात् न, भयात् न, विभ्रमात् न। कुलं च सत्यं धनं, ते ब्रवीमिः, भवान् नीचपथे कथं प्रवर्तते।

अनुवाद— भाई! मैं पिता के आदेश से वन को आया हूँ, न दर्प से, नभय से, न किसी भ्रम से। अपना वंश सत्य रूपी धन के लिए प्रसिद्ध है, यह तुम्हें ज्ञात ही है, फिर मुझे निकृष्ट पथगामी क्यों बना रहे हो।

व्याख्या— राम को पिता द्वारा चौदह वर्ष के वनवास का आदेश है, वे यह प्रतिज्ञा तोड़कर कैसे मध्य में ही जा सकते हैं? जाने से उनके श्रेष्ठ वंश को कलंक, उनके कारण लगेगा।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा वंशस्थवृत्त है, लक्षण है— जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।

भरतः— **प्रसीदत्वार्यः।**

अपि सुगुण! ममापि त्वत्प्रसूतिः।
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता में पिता च।
सुपुरूष! पुरूषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद! भरतमार्तं पश्य तावद्धाथावत्।।16।।

अन्वय— सुगुण! त्वत्प्रसूतिः ममापि, सः खलु निभृतधीमान् ते पिता मे पिता च, सुपुरूष! पुरूषाणां मातृदोषः न दोषः, वरद् आर्तं भरतं तावत् यथावत् पश्य।

अनुवाद— आर्य! आप प्रसन्न हों, हे गुणज्ञ! आपके कुल में ही मेरा जन्म हुआ है, वे प्रशस्तबुद्धि दशरथ आपके पिता हैं और मेरे भी पिता हैं। हे श्रेष्ठ पुरुष! सन्तान को माँ के दोष से दोषी न मानिए। हे अभीष्टप्रदायक! दुःख सन्तप्त भरत की वास्तविकता को देखिए।

व्याख्या— राम हों या भरत, दोनों रघुवंश की श्रेष्ठ सन्तानें हैं यदि एक राज्य का त्याग कर सकता है तो दूसरा क्यों नहीं? दोनों ही एक—दूसरे से राज्य को स्वीकार करने का आग्रह कर रहे हैं, यह अपूर्व त्याग प्रशस्त है, भारतीय संस्कृति की उच्चता का द्योतक है। प्रस्तुत श्लोक में परिकर अलंकार तथा मालिनी छन्द है।

रामः— **मैथिली!**

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं—
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके—
धिग् भो! विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु।।17।।

अन्वय— सुरलोकयातं तं नृपतिं चिन्तयामि येन अयम् आत्मजविशिष्टगुणः न दृष्टः, लोके ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य यदि पुरुषोत्तमेषु विधेः बलं भो धिक्।

अनुवाद— सीते! स्वर्ग गए हुए पिता महाराज दशरथ के विषय में सोचता हूँ जिन्होंने विशिष्टगुणसम्पन्न अपने पुत्र भरत को नहीं देखा, संसार में इस प्रकार के गुणागार पुत्र को पाकर भी पुरुषोत्तम महाराज पर भाग्य प्रबल हुआ, धिक्कार है इस विडम्बना को।

व्याख्या— काश! महाराज ने पुत्र भरत की प्रतीक्षा की होती तो वे देखते जो वंश की बर्बादी का माध्यम बने, वह भरत राज्यलोभ से सर्वथ ऊपर हैं। ऐसे पुत्र भरत की निर्लोभता देखकर मृत्यु तो दूर की बात, उन्हें अवसाद भी छू नहीं पाता। यहाँ श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

भरतः— **यावद् भविष्यति भवन्नियमावसानं—**
तावद् भवेयमिह ते नृप! पादमूले।

रामः— **मैवं, नृपः स्वसुकुतैरनुयातु सिद्धिं**

मे शापितो, न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम्।।18।।

अन्वय— यावत् भवतः नियमावसानं भविष्यति तावत् हे नृप। इह ते पादमूले भवेयम्। मा एवम् स्वसुकृतैः सिद्धिम्, अनुयातु, मे शापितः चेत् स्वराज्यं न परिरक्षसि।

अनुवाद— भरत – जब तक आपके वनवास का संकल्प पूर्ण होगा तब तक हे राजन्। यहाँ आपके चरणों में रहूँगा।

रामः— नहीं ऐसा मत करो, महाराज दशरथ अपने पुण्यों से सिद्धि प्राप्त करें, तुम्हें मेरी शपथ है, यदि तुम अपने राज्य की रक्षा न करो।

व्याख्या— यह है त्याग की पराकाष्ठा, किन्तु राज्य की, प्रजा की रक्षा भी तो राजा का कर्त्तव्य है अतएव सम्प्रति वही भरत का प्रथम कर्त्तव्य है। प्रस्तुत श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

भरतः— **पादोपभुक्ते तव पादुके म एते प्रयच्छ प्रणतायमूर्ध्ना।**

यावद्भवानेष्यति कार्यसिद्धिं तावद्भविष्याम्यनयोर्विधेयः।।19।।

अन्वय— मूर्ध्ना प्रणताय में पादोपभुक्ते एते तव पादुके प्रयच्छ यावद् भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति तावत् अनयोः विधेयः भविष्यामि।।

अनुवाद— आपके चरणों में सिर झुकाए हुए मुझे अपने चरणों से सेवित इन पादुकाओं को दे दें, जब तक आप वनवास समाप्त कर लौटेंगे तब तक इन्हीं के अधीन रहकर राज्यकार्य संभाल लूँगा।

व्याख्या— भरत ने निर्णय दिया कि राज्याभिषेक तो वे कदापि न स्वीकार करेंगे यह राम का अधिकार है अतएव उन्हीं की पादुकाओं को प्रतिष्ठापित कर वे राजा के प्रतिनिधि के रूप में राज्यकार्य करते रहेंगे। यहाँ इन्द्रवज्रा छन्द है।

रामः— (स्वगतम्) हन्त भोः!

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्।

अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम्।।20।।

अन्वय— हन्त भोः! मया सुचिरेणापि कालेन किञ्चिदेव यशः अर्जितम्। अद्य भरतेन अचिरेण एव कालेन अर्जितम्।

अनुवाद— राम – (मन में) अहा! मैंने बहुत दिनों में जो थोड़ा यश प्राप्त किया था, आज भरत ने अल्पकाल में ही उतना यश अर्जित कर लिया।

व्याख्या— व्यक्ति का एक श्रेष्ठ कार्य ही उसके यश को स्थाई बनाने के लिए पर्याप्त है, यदि पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ वह सम्पादित किया जाए। यहाँ 'सुचिरेण–अचिरेण' के कारण व्यतिरेक अलंकार है, लक्षण है– आधिक्यमुपमेयस्य उपमानान्न्यूनता अथवा व्यतिरेकः। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

भरतः— **आशावन्तः पुरे पौराः स्थास्यन्ति त्वद्दिदृक्षया।**

तेषां प्रीतिं करिष्यामि त्वत्प्रसादस्य दर्शनात्।।21।।

अन्वय— पुरे पौराः आशावन्तः त्वद्दिदृक्षया स्थास्यन्ति, त्वत्प्रसादस्य दर्शनात् तेषां प्रीतिं करिष्यामि।

अनुवाद– नगरवासी जन आशावान् हुए आपको देखने की इच्छा से प्रतीक्षारत होंगे, आपके प्रसाद रूपी पादुकाओं के दर्शन से वे प्रसन्न होंगे।

व्याख्या– प्रिय के अभाव में प्रिय का सन्देश अथवा प्रिय की किसी वस्तु का दर्शन–स्पर्शन ही आनन्ददायी होता है। नगरवासी प्रिय राम के लौटने की आशा लगाए होंगे, राम के न आने से क्षुब्ध वे चरणपादुका देखकर सन्तोष तो करेंगे ही, रघुवंशी राजकुमारों के त्याग की भी सराहना करेंगे। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

4.4 पन्चम अंक के श्लोक (अन्वय, अनुवाद एवं व्याख्या)

रामः– **(सशोकम्)**

त्यक्त्वा तां गुरुणा मया च रहितां रम्यामयोध्यां पुरी–
मुद्यम्यापि ममाभिषेकमखिलं मत्सन्निधावागतः
रक्षार्थं भरतः पुनर्गुणनिधिस्तत्रैव सम्प्रेषितः
कष्टं भोः! नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति।।1।।

अन्वय– गुरुणा मया च रहितां तां रम्याम् अयोध्यापुरीम् त्यक्त्वा अखिलमपि मम अभिषेकम् उद्यम्य मत्सिन्नधौ इह आगतः, सः भरतः गुणनिधिः तत्रैव सम्प्रेषितः, कष्टं भो! एकः सुमहतीं नृपतेर्धुरं समुत्कर्षति।

अनुवाद– पिता दशरथ और मुझसे रहित उस रम्य अयोध्या नगरी को छोड़कर मेरे अभिषेक की समग्र सामग्री सम्पादित कर भरत मेरे समीप आए। उन गुणों के आगार भरत को मैंने वहीं (राज्यपालन हेतु) भेज दिया। कष्ट होता है कि वह अकेले ही गुरुतर राज्यभार का वहन कर रहे हैं।

व्याख्या– अयोध्या का महान् साम्राज्य, अल्पायु भरत–दोनों की चिन्ताएँ प्रजावत्सल राम को पीड़ित कर रही हैं। चौदह वर्ष–इतने दीर्घ अन्तराल में भरत के कन्धों पर ही सारा दायित्व आ गया, भाई भरत पर अकस्मात् आया यह भारी बोझ राम को चिन्तित कर रहा है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द है, लक्षण है–

सूर्याश्वैर्यसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

रामः– **(विलोक्य) अये इयं वैदेही! भोः! कष्टम्।**

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि सः नैति खेदं कलशं वहन्त्या।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनोकरोति।।2।।

अन्वय– यः अस्याः करः दर्पणेऽपि श्राम्यति। सः कलशं वहन्त्याः खेदं न एति। कष्टम्! वनं लताभिः समं स्त्रीजनसौकुमार्यं कठिनीकरोति।

अनुवाद– राम – (देखकर) अरे! यह सीता है। कष्ट होता है कि– जो इसका हाथ दर्पण उठाने में थक जाता था, वह घड़ा उठाते हुए भी नहीं थकता है। दुःख है कि वन लताओं के साथ स्त्रियों की सुकुमारता को भी कठोरता में बदल देता है।

व्याख्या– राजरानी सीता, शृंगार के समय दर्पण भी स्वयं नहीं उठाती थी, दासियाँ दर्पण लेकर खड़ी होती थीं, आज वही सीता सारे गृहकार्य स्वयं अकेले

करती हैं, परिस्थितियों ने उसकी कोमलता ही समाप्त कर दी। यहाँ उपजाति छन्द है।

रामः— **श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः।**

गच्छन्ति तुष्टिं खलु येन केन त एव जानन्ति हि तां दशां में।

इच्छामि पूजां च तथापि कर्तुं तातस्य रामस्य च सानुरूपाम्।।3।।

अन्वय— येन केन खलु तुष्टिं गच्छन्ति हि ते मे तां दशां जाननि एव, तथापि तातस्य रामस्य सानुरूपां पूजां कर्तुम् इच्छामि।

अनुवाद— कल पूज्य पिता का वार्षिक श्राद्ध है,

वे जिस किसी प्रकार से तृप्त हों, क्योंकि वे हमारी वर्तमान स्थिति जानते ही हैं फिर भी पिता का राम अपनी सामर्थ्य के अनुरूप श्राद्ध करने की इच्छा करता है।

व्याख्या— सुपुत्र राम पिता का श्राद्ध करने को व्याकुल हैं, जैसे भी हो वे पिता की मुक्ति हेतु श्राद्ध करेंगे ही। यहाँ उपजाति छन्द है।

रामः— **मैथिलि!**

फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः।

स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति।।4।।

अन्वय— दर्भेषु नः स्वहस्तरचितानि फलानि दृष्ट्वा तातः वनवासं स्मारितः तत्रापि रोदिति।

अनुवाद— सीते! कुशों के ऊपर हमारे हाथों से दिए गए फलों को देखकर पिता हमारे वनवास का स्मरण करते हुए वहाँ स्वर्ग में भी रो देंगे।

व्याख्या— सोने के पात्रों का प्रयोग करने वाले, पात्रों में बहुमूल्य भोज्य पदार्थों का उपभोग करने वाले हम लोगों की दयनीय दशा स्वर्गवासी पिता को अवश्य ही दुःखित कर देगी।

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः)

रावणः— एष भोः!

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा।

स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि।।5।।

अन्वय— अनियतात्मा अहम् एतद् रूपं गृहीत्वा नियतं खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा तां जनकनृपसुतां स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिव हर्तुकामः प्रयामि।

अनुवाद— असंयमित इन्द्रियों वाला मैं इस (कपट) संन्यासी वेश को धारण कर जितेन्द्रिय, खर दूषण का वध करके मुझसे वैर ठान लेने वाले राम को ठग कर उस जनकपुत्री सीता को स्वर और पद से रहित अशुद्ध मन्त्रोच्चारण वाली हवि की धारा के समान हरने की इच्छा से जा रहा हूँ।

व्याख्या— कञ्चनमृग को मार कर लाने के बहाने राम को दूर भेज कर एकाकिनी सीता को हरने वाला मेरा यह कार्य अतिनिकृष्ट है, यथा अशुद्ध मन्त्रों से डाली गई हवि की धार अशुद्ध होती है।

हव्यधारामिव पदों से उपमा अलंकार तथा मालिनी छन्द है।

रावणः– **इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती।**

यस्या भर्तेति नारीभिः सत्कृतः कथ्यते भवान्।।6।।

अन्वय– इयं पृथिव्यां मानुषीणाम् एका हि अरुन्धती, यस्याः भर्ता भवान् नारीभिः सत्कृतः कथ्यते।

अनुवाद– यह सीता पृथिवी पर स्त्रियों में अकेली अरुन्धती के समान है, जिसके स्वामी होने से आप भी नारीजाति के द्वारा सम्मान के योग्य हैं।

व्याख्या– कपटवेशी रावण की पति–पत्नी सीता–राम के प्रति स्व निकृष्ट कार्यसिद्धि हेतु चाटुकारिता स्पष्ट है।

रामः– **उभयस्यास्ति सान्निध्यं यद्येतत् साधयिष्यति।**

धनुर्वा तपसि श्रान्ते श्रान्ते धनुषि वा तपः।।7।।

अन्वय– उभयस्य सान्निध्यं अस्ति एतत् यदि साधयिष्यति, तपसि श्रान्ते धनुः वा, धनुषि श्रान्ते तपः वा।

अनुवाद– मेरे पास दोनों साधन विद्यमान हैं जो कार्य को पूर्ण कर देंगे, यदि तप असिद्ध है तो धनुष और धनुष निरर्थक है तो तप।

व्याख्या– रामके व्यक्तित्व में तप और बल दोनों सन्निहित हैं, वे यथावश्यक उनका प्रयोग कर कार्य सिद्ध कर लेते हैं।

रावणः– **तैस्तर्पिताः सुतफलं पितरो लभन्ते,**

हित्वा जरां खमुपयान्ति हि दीप्यमानाः।

तुल्यं सुरैः समुपयन्ति विमानवास

मावर्तिभिश्च विषयैर्न बलाद् घ्रियन्त।।8।।

अन्वय– तैः तर्पिताः पितरः सुतफलं लभन्ते, हि दीप्यमानाः जरां हित्वा एवम् उपयान्ति, सुरैः तुल्यं विमानवासं समुपयान्ति, च आवर्त्तिभिः विषयैः बलात् न घ्रियन्ते।

अनुवाद– उन काञ्चनपार्श्व मृगों से तर्पित होकर ही पितृगण पुत्र रूप फल को प्राप्त करते हैं, तेजस्विता से वृद्धावस्था को त्याग कर स्वर्ग को गमन करते हैं, देवताओं के समकक्ष आकाश में निवास करते हैं, जन्ममरण के कारणरूप विषयों से पुनः प्रभावित नहीं होते हैं।

व्याख्या– दुर्लभ जाति के मृगों से अनेक दुर्लभ लाभ प्राप्त होंगे, कपटवेशी रावण राम को यही लोभ दे रहा है।

रामः– **सौवर्णान् वा मृगांस्तान् मे हिमवान् दर्शयिष्यति।**

भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति।।9।।

अन्वय– हिमवान् तान् सौवर्णान् मृगान् मे दर्शयिष्यति वा मद् बाणवेगेन भिन्नौ क्रौञ्चत्वं गमिष्यति वा।

अनुवाद– हिमलाय उन सुवर्ण मृगों को स्वयं मेरे सामने उपस्थित करेगा अथवा मेरे बाणों को प्रहार से आहत क्रौंच पर्वत की दशा को प्राप्त करेगा।

व्याख्या– राम के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है, उनकी गरिमा के समक्ष हिमालय स्वयं नतमस्तक है।

रामः— तातस्यैतानि भाग्यानि यदि स्वयमिहागतः।
अर्हत्येव हि पूजायां लक्ष्मणं ब्रूहि मैथिलि!।।10।।

अन्वय— यदि इह स्वयम् आगतः, एतानि तातस्य भाग्यानि, एषः हि पूजायाम् अर्हति, मैथिलि! लक्ष्मणं ब्रूहि।

अनुवाद— यदि यह काञ्चनमृग स्वयं यहाँ आया है तो यह पिता जी का सौभाग्य है, यह पूजा के योग्य है, सीते! लक्ष्मण से कहो।

व्याख्या— रावण ने छल से स्वर्णमृग राम के सामने उपस्थित कर राम को हटाने की योजना सफल कर ली। राम स्वर्णमृग लाने के लिए लक्ष्मण को भेजते किन्तु लक्ष्मण तो कार्यवश अन्यत्र गए थे।

रामः— माययापहृते रामे सीतामेकां तपोवनात्।
हरामि रुदतीं बालाममन्त्रोक्तामिवाहुतिम्।।11।।

अन्वय— मायमा रामे अपहृते, एकां रूदतीं बालां सीतां तपोवनात् अमन्त्रःकृताम् आहुतिम् इव हरामि।

अनुवाद— मायाजाल से राम को दूर कर दिया, अकेली रोती हुई बालिका सीता को तपोवन से मन्त्रोच्चारण से रहित आहुति की तरह हर लेता हूँ।

व्याख्या— रावण की योजना सफल हुई, राम कञ्चनमृग के पीछे चले गए, सीता का अपहरण सरल हो गया, जैसे मन्त्रों के बिना आहुति महत्त्वहीन होती है। रावण की यह योजना सफल हुई, पर यह थी नितान्त कायरतापूर्ण योजना।

रामः— युद्धे येन सुराः सदानवगणाः शक्रादयो निर्जिताः
दृष्ट्वा शूर्पणखाविरूपकरणं श्रुत्वा हतौ भ्रातरौ।
दर्पात् दुर्मतिप्रमेयबलिनं रामं विलोभ्यच्छलैः
स त्वां हर्तुमना विशालनयने! प्राप्तोऽस्म्यहं रावणः।।12।।

अन्वय— विशालनयने! येन युद्धे सदानवगणाः शक्रादयः सुराः निर्जिताः शूर्पणखाविरूपकरणं दृष्ट्वा भ्रातरौ हतौ श्रुत्वा। दर्पात् दुर्मतिम् अप्रमेयबलिनं रामं छलैः विलोभ्य त्वां हर्तुमनाः सः रावणः अहं प्राप्तः अस्मि।

अनुवाद— अरी दीर्घ नेत्रों वाली! जिसने युद्ध में राक्षसों और इन्द्रादि देवताओं को जीत लिया है, जिसने शूर्पणखा की नाक का कटना देखा है, जिसने खर–दूषण भाइयों का मारा जाना सुना है। गर्व से दुर्बुद्धि अतुलनीय शक्तिशाली राम को छल से दूर करके तुम्हें हरने वही मैं रावण यहाँ आया हूँ।

व्याख्या— रावण ने देवों–दानवों को पराजित किया, उसी रावण की बहन की नाक कट गई, उसी रावण के भाइयों का वध हो गया, राम का ऐसा दुस्साहस रावण क्यों कर सहन करे? पर क्या यह रावण के लिए उचित था कि सूने आश्रम से एकाकिनी सीता को हरेगा, क्या यही रावण का पौरुष है? धिक्कार है ऐसे पौरुष को।

रामः— भग्नः शक्रः कम्पितो वित्तनाथः कृष्टः सोमो मर्दितः सूर्यपुत्रः।
धिग् भो स्वर्गं भीतदेवैर्निविष्टं, धन्या भूमिर्वर्तते यत्र सीता।।13।।

अन्वय— शक्रः भग्नः, वित्तनाथः कम्पितः, सोमः कृष्टः, सूर्यपुत्रः मर्दितः। धिग् भो स्वर्गं, भीतदेवैः, निविष्टं, धन्या भूमिः यत्र सीता वर्तते।

अनुवाद– मैंने इन्द्र को जीता, कुबेर को कंपाया, चन्द्रमा को खींच लिया, यमराज को मसल दिया, धिक्कार है स्वर्ग को, जहाँ देवतागण मेरे भय से आकुल रहते हैं, धन्य है वह भूमि जहाँ सीता रहती है।

व्याख्या– रावण ने धरती–आकाश–पाताल की समग्र शक्तियों को पराजित कर अपना वर्चस्व स्थापित किया है, स्वर्ग में निवास करने वाले परमशक्तिशाली देवगण भी उस रावण के भय से संत्रस्त रहते हैं। सीता के निवास करने के कारण सम्प्रति तो यह पृथिवी धन्य है।

रामः– रामं वा शरणमुपेहि लक्ष्मणं वा, स्वर्गस्थं दशरथमेव वा नरेन्द्रम्।

किं वा स्यात् कुपुरूषसंश्रितैर्वचोभिर्न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति।।14।।

अन्वय– रामं वा लक्ष्मणं वा स्वर्गस्थं नरेन्द्रं दशरथमेव वा शरणमुपेहि। किं वा स्यात् कुपुरूषसंश्रितैः वचोभिः वा, मृगशिशवः व्याघ्रं न प्रधर्षयन्ति।।

अनुवाद– राम अथवा लक्ष्मण अथवा स्वर्गवासी राजा दशरथ की शरण में जाओ, क्या होगा, इन कायरपुरुषों को पुकारने से क्या लाभ, मृगशावक बाघ को नहीं पछाड़ सकते हैं।

व्याख्या– रावण को अपार दम्भ है अपनी स्वर्गविजयिनी शक्ति का, इसी शक्ति के मद में वह रघुवंश के अवतारी पुरुषों को कायर भीरू आदि कह रहा है, कहीं मृग शावक सिंह को हरा सकता है, कदापि नहीं। उसे यह आभास नहीं कि राम सामान्य नर नहीं, वे तो सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् हैं।

रामः– विलपसि किमिदं विशालनेत्रे! विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम्।

विपुलबलयुतो ममैव योद्धुं ससुरगणोऽप्यसमर्थ एव रामः।।15।।

अन्वय– विशालनेत्रे! किमिदं विलपसि, यथा आर्यपुत्रं मां तव (पतिं) विगणय। विपुलबलयुतः ससुरगणः अपि मम योद्धुं रामः असमर्थः एव।

अनुवाद– हे दीर्घ नयनों वाली! क्यों रोती हो, आर्यपुत्र राम के समान मुझे अपना पति स्वीकार कर लो। विशाल सेना के साथ देवतागण भी राम के साथ मुझसे युद्ध करें तो भी राम मुझसे पराजित होंगे।

व्याख्या– रावण को आर्यस्त्री के पातिव्रत्य का आभास नहीं है, सीता राक्षस जाति की स्त्री नहीं कि एक क्षण में पति बदल लें, वे राम की अर्द्धांगिनी हैं और सात जन्मों तक रहेंगी। रावण को राम के प्रभुत्व का रंचमात्र भी ज्ञान नहीं है, वे तो पराशक्ति हैं, वे अकेले ही पर्याप्त हैं। रावण जैसे अनेकों राक्षसों का संहार वे किसी की सहायता बिना ही कर सकने में समर्थ हैं।

रामः– बलादेव दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति।

क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद्रामः पराक्रमम्।।16।।

अन्वय– दशग्रीवः बलात् एव सीताम् आदाय गच्छति, यदि रामः क्षात्रधर्मे स्निग्धः तदा पराक्रमं कुर्यात्।

अनुवाद– मैं रावण जबरदस्ती सीता को लेकर जा रहा हूँ, यदि राम को क्षत्रिय धर्म में विश्वास है तो अपना शौर्य प्रदर्शित करें।

व्याख्या– राम क्षेष्ठतम रघुवंशी क्षत्रिय हैं तदपि उनकी पत्नी का एकान्त में हरण कर उन्हें चिल्ला–चिल्लाकर चुनौती देना रावण की निकृष्टता को सूचित कर रहा है, उससे राम की मर्यादा कदापि धूमिल नहीं हो रही है।

4.5 षष्ठ अंक के श्लोक (अन्वय, अनुवाद एवं व्याख्या)

प्रथमः वृद्धतापसः– **इयं हि नोलोत्पलदामवर्चसा**
मृणालशुक्लोज्ज्वलद्रंष्ट्रहासिना।
निशाचरेन्द्रेण निशार्धचारिणा
मृगीव सीता परिभूय नीयते।।1।।

अन्वय– नीलोत्पलदामवर्चसा मृणालशुक्लोज्ज्वलद्रंष्टहासिना निशार्धचारिणा निशाचरेन्द्रेण सीता मृगी इव परिभूय नीयते।

अनुवाद– नीलकमल की माला के सदृश आभा वाला, हँसते समय कमलनाल के समान श्वेत दन्त पंक्ति वाला, रात्रिकाल में विचरण करने वाला राक्षसपति रावण सीता को हिरणी के समान दबोच कर लिए जा रहा है।

व्याख्या– पापकर्म छिपता नहीं, रावण के सीताहरण के भयंकर पाप को भी दो वृद्ध तपस्वियों ने देख लिया।

द्वितीयः वृद्धतापसः– **विचेष्टमानेव भुजंगमाङ्गना**
विधूयमानेव च पुष्पिता लता।
प्रसह्य पापेन दशाननेव सा
तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते।।2।।

अन्वय– विचेष्टमाना भुजंगमांगना इव विधूयमाना पुष्पिता लता इव सा पापेन दशाननेन तपोवनातृ सिद्धिः इव प्रसह्य नीयते।

अनुवाद– छूटने की चेष्टा करती हुई सर्पिणी के समान, कंपाई हुई फूलों की लता के समान वह सीता पापी रावण के द्वारा तपोवन से सिद्धि के समान बलात् ले जाई जा रही है।

व्याख्या– परपुरुष के द्वारा बलात् स्त्री का अपहरण निकृष्टतम पाप है किन्तु दुर्मति पापी रावण क्रोधान्ध लोभान्ध होकर यह पाप कर रहा है, मानों वह पापी तपोवन की शोभा को ही उठाकर ले जा रहा है।

प्रथमः तापसः– **पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते**
तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णमचलः संवेष्टनं चेष्टते।
तीक्ष्णैरायसकण्टकैरिव नखैर्भीमान्तरं वक्षसो
वज्राग्रैरिव दार्यमाणविषमात् शैलाच्छिला पाट्यते।।3।।

अन्वय– पक्षाभ्यां परिभूय वीर्यविषयं द्वन्द्वं प्रतिव्यूहते, अचल तुण्डाभ्यां सुनिघृष्टतीक्ष्णं सवेष्टनं चेष्टते, आयसकण्टकैः इव तीक्ष्णै नखैः वक्षसः भीमान्तरं वज्राग्रैः दार्यमाणविषमात् शैलात् शिला इव पाट्यते।

अनुवाद– पक्षिराज जटायु पंखों से प्रहार कर पराक्रमपूर्वक (रावण से) युद्ध कर रहा है, स्थिरतापूर्वक चोंच के दोनों छोरों से दुःसह्य आघात कर उसे घेरने की चेष्टा कर रहा है, लोहे के कांटों के समान नकीले नाखूनों से रावण की छाती

को भयंकर वज्र की नोक से विदीर्ण करता हुआ मानों ऊबड़–खाबड़ पर्वत से चट्टान के समान फाड़ रहा है।

व्याख्या– महाराज दशरथ का मित्र जटायु मैत्री ऋण चुकाने के लिए रावण के ऊपर झपट कर पुत्रवधू की रक्षा को तत्पर हो गया। राक्षसराज के सामने बेचारा पक्षी कर ही क्या सकता था तथापि उसने प्राणों की बाजी लगाकर सीता को रावण के चंगुल से छुड़ाने की चेष्टा की।

प्रथमः– **कृत्वा स्ववींयसदृशं परमं प्रयत्नं क्रीडामयूरमिव शत्रुमचिन्तयित्वा।**

दीप्तं निशाचरपतेरवधूय तेजो नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इवावसन्नः।।4।।

अन्वय– (जटायुः) शत्रुं क्रीडामयूरमिव अचिन्तयित्वा, स्ववीर्यसदृशं परमं प्रयत्नं कृत्वा, निशाचरपतेः दीप्तं तेजः अवधूय नागेन्द्रभग्नवनवृक्ष इव अवसन्नः।

अनुवाद– यह जटायु शत्रु को खिलौने के मोर के समान मान करके, अपने पराक्रम के अनुरूप पूर्ण प्रयत्न करके, रावण के बल–वीर्य की चिन्ता न करके जंगली हाथी के द्वारा तोड़े गए वन के वृक्ष के समान विनष्ट हो गया।

व्याख्या– कहाँ राक्षसराज रावण और कहाँ बेचारा निरीह पक्षी, तदपि वह रावण से सीता की मुक्ति के लिए अन्तिम सांस तक लड़ा, अन्ततः रावण ने उसे मार डाला। सच है कुछ विभूतियाँ परोपकार के लिए ही होती हैं।

भरतः– **गत्वा तु पूर्वमार्यनिरीक्षणार्थं लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृते।**

दृष्ट्वा किमागत इहात्रभवान् सुमन्त्रो, रामं प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामम् ।।5।।

अन्वय– लब्धप्रसादशपथे मयि सन्निवृत्ते अयम् अत्रभवान् सुमन्त्र पूर्वम् आर्यनिरीक्षणार्थं गत्वा प्रजानयनबुद्धिमनोभिरामं रामं दृष्ट्वा इह आगतः किम्?

अनवाद– पादुकारूपी प्रसाद लेकर, शपथ स्वीकार कराकर मेरे लौटने के पश्चात् आर्य सुमन्त्र प्रथम बार राम को देखने के लिए वन गए थे, प्रजा के नेत्रों, बुद्धि और मन में रमे हुए राम के दर्शन करके यह आए हैं क्या?

व्याख्या– भरत का भ्रातृप्रेम, भ्राता राम की चिन्ता में व्याकुल रहते हैं, इसी हेतु आर्य सुमन्त्र को वन भेजा, भाई द्वय तथा भाभी की कुशलता का समाचार मिले यह चिन्ता मन में निरन्तर बनी है।

सुमन्त्रः– नरपतिनिधनं मयानुभूतं नृपतिसुतव्यसनं मयैव दृष्टम्।

श्रुत इह स च मैथिलीप्रणाशो गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे।।6।।

अन्वय– मया नरपतिनिधनम् अनुभूतम्, मयैव नृपतिसुतव्यसनं दृष्टम्, इह स च मैथिलीप्रणाशः श्रुतः, मे आयुषा गुण इव बह्वपराद्धम्।

अनुवाद– मैंने राजा दशरथ की मृत्यु देखी, मैंने ही राजपुत्र के वनगमन का दुःख सहा, अब सीता का हरण भी सुना, मेरी दीर्घ आयु ने गुण के स्थान पर दोष ही अधिक किए हैं।

व्याख्या– परिवार के वयोवृद्ध पुरुष सुमन्त्र, राजपविार से सम्बद्ध रहकर जिन राजकुमारों को उन्होंने पुत्रवत् स्नेह दिया, आज उसी राजपरिवार पर एक–एक कर आई विपत्तियों के वे साक्षी पुरुष बन रहे हैं। क्या चिरायु उन्हें ईश्वर ने इन्हीं कष्टों को सहने के लिए दी है?

सुमन्त्रः– **कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम्।**
मया दृष्टं तु तच्छून्यं तैर्विहीनं तपोवनम्।।7।।

अन्वय– विनीतानां क्रोधः कुतः कृतचेतसां लज्जा वा कुतः, मया तु तैर्विहीनं तच्छून्यं तपोवनं दृष्टम्।

अनुवाद– विनम्रजनों का क्रोध अथवा सुसंस्कृत जनों की लज्जा कैसी? मैंने तो उनसे रहित शून्य तपोवन देखा।

व्याख्या–

सुमन्त्रः– **सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन बालिना।**
हृतदारो वसञ्छैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः।।8।।

अन्वय– ज्येष्ठेन भ्रात्रा बालिना सुग्रीवः राज्याद् भ्रंशितः, हृतदारः शैले वसन् तुल्यदुःखेन मोक्षितः।

अनुवाद– बड़े भाई बालि के द्वारा सुग्रीव राज्य से वंचित कर दिए गए, पत्नी का अपहरण होने के पश्चात् पर्वत पर निवास करते हुए समान दुःख वाले सुग्रीव को राम ने दुःख मुक्त कर दिया।

व्याख्या– सुग्रीव और राम के जीवन की घटनाएँ एक समान घटित हुई हैं, दोनों का राज्य तथा दोनों की ही पत्नी का अपहरण हुआ है। न्यायप्रिय राम ने बालिवध कर सुग्रीव को राज्य तथा पत्नी दोनों दिलाकर सुग्रीव को सभी कष्टों से मुक्त कर दिया किन्तु स्वयं तो राज्य तथा पत्नी विहीन होकर वन में भटक रहे हैं।

सुमन्त्रः– **वैरं मुनिजनस्वार्थे रक्षसा महता कृतम्।**
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता।।9।।

अन्वय– मुनिजनस्वार्थे रक्षसा महता वैरं कृतम्, ततः रावणेन मायांम् उपाश्रित्य सीता हृता।

अनुवाद– मुनिजनों की रक्षा के लिए राम ने राक्षसों से शत्रुता कर ली तो रावण ने कपट करके सीता को चुरा लिया।

व्याख्या– राम ईश्वर हैं, सम्प्रति वे मनुष्यरूप हैं, वे साधुजनों की रक्षा के लिए ही पृथिवी पर अवतरित हुए हैं, भले ही इसके लिए उन्हें कितने दुःख सहन करने पड़े।

भरतः– पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे।
भार्यावियोगमपुलभ्य पुनर्ममार्यो जीमूतचन्द्र इवखे प्रभया वियुक्तः।।10।।

अन्वय– मम आर्यः पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तः वनप्रदेशे महत् दुःखं समनुभूय भार्यावियोगम् उपलभ्य खे जीमूतचन्द्र इव प्रभया वियुक्तः।

अनुवाद– मेरे भ्राता राम पिता और बन्धुजनों से वियुक्त हुए, जंगल में अपार कष्ट सहे, पत्नीका वियोग हुआ तो मानो आकाश में चन्द्रमा के समान शोभाविहीन हो गए।

व्याख्या– अवध नामक विशाल साम्राज्य के अधिपति पद पर अधिष्ठित होने वाले राम काल के प्रहार से परिवार से अलग हुए, जंगल में भटकते रहे, पत्नी का भी अपहरण हो गया मानो आकाश में चन्द्रमा श्रीविहीन हो गया।

भरतः— हन्त भोः! सत्त्वयुक्तानामिक्ष्वाकूणं मनास्विनाम्।
वधूप्रधर्षणं प्राप्तं प्राप्यात्रभवतीं वधूम्।।11।।

अन्वय— हन्त भोः! अत्रभवतीं वधूं प्राप्य सत्त्वयुक्तानां मनस्विनाम् इक्ष्वाकूणां वधूप्रघर्षणं प्राप्तम्।

अनुवाद— अरे कष्ट है! आप जैसी कैकेयी नामक वधू को प्राप्त करके पराक्रमशाली मनस्वी इक्ष्वाकुवंश को वधू के अपहरण की दुर्घटना सहनी पड़ी है।

व्याख्या— भरत का पश्चात्ताप स्पष्ट है कि वे ऐसी माँ के पुत्र रूप में पैदा हुए हैं जिसके कारण आर्यावर्त के श्रेष्ठतम रघुवंश की पुत्रवधू का अपहरण कर लिया गया, पूरे वंश के लिए यह कितना अपमानजनक है।

सुमन्त्रः— तेनोक्तं रुदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा।
यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यसे।।12।।

अन्वय— सत्यभाषिणा तेन मुनिना रुदितस्य अनते उक्तम् – यथा अहं पुत्रशोकाद्, भोः एवं त्वमपि विपत्स्यसे।

अनुवाद— सत्यवादी उन मुनि ने रोते हुए अन्ततः कहा— जैसे मैं पुत्रवियोग से मर रहा हूँ, इसी प्रकार तुम भी पुत्रवियोग में मरोगे।

व्याख्या— माता—पिता के लिए जल लाने के लिए गए हुए श्रवणकुमार की राजा दशरथ के बाण से मृत्यु हो गई, आश्रयविहीन माता—पिता ने दशरथ को पुत्रवियोग में ही मरने का शाप दिया, शाप सफल करने का माध्यम बन कलंक की भागी रानी कैकेयी हुई, यह थी भाग्य की विडम्बना।

भरतः— वेलामिमां मत्तगजान्धकारां करोमि सैन्यौघनिवेशनद्धाम्।
बलैस्तरद्भिश्च नयामि तुल्यं ग्लानिं समुद्रं सह रावणेन।।13।।

अन्वय— इमां वेलां मत्तगजान्धकारां सैन्यौघनिवेशनद्धां करोमि, तरदद्भिः बलै रावणेन सह समुद्रं तुल्यं ग्लानिं नयामि।

अनुवाद— इस सागर को मदमत्त हाथियों से अन्धकारित तथा सैन्य छावनियों से व्याप्त कर दूँगा, आगे बढ़ती हुई अपनी सेना से रावण के साथ समुद्र को भी समान रूप से म्लान कर दूँगा।

व्याख्या— सुमन्त्र से रावण द्वारा सीता के अपहरण का दुःखद समाचार सुनकर भरत की भुजाएँ क्रोध से फड़क उठी, वे दुष्ट राक्षसों की नगरी लंका जाकर सीता को वापस लाने के लिए उद्यत हो उठे। रघुवंश की कुलवधू का अपहरण, यह तो सचमुच लज्जास्पद था, पराक्रम से ही इस धोखे का प्रतिशोध लिया जा सकता था।

4.6 सप्तम अंक के श्लोक (अन्वय, अनुवाद एवं व्याख्या)

तापसः— **जयनरवर! जेयः स्याद् द्वितीयस्तवारि—**
स्तव भवतु विधेया भूमिरेकातपगा।
इति मुनिभिरनेकैः स्तुयमानः प्रसन्नैः
क्षितितलमवतीर्णो मानवेन्द्रो विमानात्।।1।।

अन्वय— जयनरवर! तव द्वितीयः अरिः जेयः स्यात्, भूमिः एकातपत्रा तव विधेया भवतु, इति प्रसन्नैः अनेकैः मुनिभिः स्तूयमानः मानवेन्द्रः विमानात् क्षितितलम् अवतीर्णः।

अनुवाद— हे मानव श्रेष्ठ! आपकी जय हो, आप अन्य शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त करें। धरती पर आपका एकच्छत्र अधिकार हो, इस प्रकार अनेक प्रसन्नमन मुनियों द्वारा स्तुति किए जाते हुए आर्य राम पुष्पक विमान से पृथिवी पर उतर रहे हैं।

व्याख्या— त्रिभुवनविजेता रावण का विनाश कर राम सीता और लक्षण के साथ लंका से अयोध्या वापस आ रहे हैं। प्रसन्न अयोध्यावासी पुष्पक विमान से पत्नी तथा भाई के साथ राम का अभिनन्दन कर रहे हैं।

रामः— **समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा**
जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धम्।
वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः।।2।।

अन्वय— समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा जगति गुणसमग्रां विशुद्धां सीतां प्राप्य गुरूणां वचनम् अन्तशः पूरयित्वा भूयः मुनिजनवासं प्राप्तवानस्मि।

अनुवाद— बलिष्ठ तथा पराक्रमी रावण का संहार कर संसार में सर्वगुणसम्पन्न तथा निष्कलंक सीता को प्राप्त कर पिताश्री के वचनों का अन्ततः पालन करके पुनः मुनिजनों के उसी आश्रम में उपस्थित हुआ हूँ।

व्याख्या— चौदह वर्ष के वनवास में रावण सदृश भयंकर शत्रु राक्षस का विनाश करना, वह भी सीमित साधनों से, सचमुच महान् कार्य है। सीता की पुनः प्राप्ति से कुलमर्यादा की रक्षा तथा पिताश्री द्वारा माँ को दिए गए वचनों का पालन—ये दो महानतम कार्य भी राम के महान् व्यक्तित्व से ही सम्पन्न हुए।

रामः— **सखीति सीतेति च जानकीति यथावयः स्निग्धतरं स्नुषेति।**
तपीस्वदारैर्जनकेन्द्रपुत्री सम्भाष्यमाणा समुपैति मन्दम्।।3।।

अन्वय— यथावयः जनकेन्द्र पुत्री तपस्विदारैः स्निग्धतरं सम्भाष्यमाणमन्दं समुपैति।

अनुवाद— आयु के अनुसार सखि, सीता, जानकी, बहू इत्यादि मधुर स्वर में पुकारी जाती हुई वैदेही ऋषिपत्नियों के साथ मधुर स्वर में वार्तालाप करती हुई धीरे—धीरे मेरे समीप आ रही है।

व्याख्या— चौदह वर्ष का वनवास, रावण की पराजय और मृत्यु, राक्षसराज का अन्त, सीता का मिलना, प्रिय बान्धवों के पास अपने घर को लौटना—ये अनेक कारण हैं जिनसे राम और सीता की प्रसन्नता छलकी पड़ रही है।

रामः— **रेणुः समुत्पतति लोध्रसमानगौरः सम्प्रावणेति च दिशः पवनावधूतः।**
शंखध्वनिश्च पटहस्वनधीरनादैः सम्मूर्छितो वनमिदं नगरीकरोति।।4।।

अन्वय— लोध्रसमानगौरः रेणुः समुत्पतति, पवनावधूतः च दिशः सम्प्रावृणेति, पटहस्वनधीरनादैः सम्मूर्छितः शंखध्वनिः वनं नगरी करोति।

अनुवाद— लोध्र के फूलों के समान शुभ्र धूल उड़ रही है, पवन से मिलकर यह सभी दिशाओं में फैल रही है। नगाड़े का घोष, वीरों की गर्जना, शंखों की ध्वनि शान्त तपोवन को भी नगर बना रही है।

व्याख्या— राम, लक्ष्मण सीता प्रमुख वानरों, जाम्बवान् आदि के साथ नगरों के निकट हैं। प्रजा ने स्थान–स्थान पर स्वागत की तैयारियाँ की हैं, प्रजा का हर्षमय कोलाहल वातावरण को उल्लासमय बना रहा है।

लक्ष्मणः— **अयं सैन्येन महता त्वद्दर्शनसमुत्सुकः।**

मातृभिः सह सम्प्राप्तो भरतो भ्रातृवत्सलः।।5।।

अन्वय— अयं भ्रातृवत्सलः भरतः त्वद्दर्शनसमुत्सुकः महता सैन्येन मातृभिः सह सम्प्रायः

अनुवाद— यह भ्रातृ प्रेमी भरत आपके दर्शनों के लिए उत्सुकः हुए विशाल सेना तथा माताओं के साथ आ पहुँचे हैं।

व्याख्या— चौदह वर्ष की कठोर वनवास काल की आपदाओं को सहकर अग्रज भाभी और अनुज घर आ रहे हैं उनके स्वागत हेतु भरत का प्रेमविह्वल होकर दौड़ पड़ना स्वाभाविक है। मात्राएँ भी वात्सल्य के वशीभूत होकर भरत के साथ अगवानी हेतु आ पहुँची है।

भरतः— **तैस्तैः प्रवृद्धविषयैर्विषमर्विमुक्तं मेघैर्विमुक्तममलं शरदीव सोमम्।**

आर्यासहायमहमद्य गुरुं दिदृक्षुः प्राप्तोऽस्मि तुष्टहृदयः स्वजनानुबद्धः।।6।।

अन्वय— अद्य तुष्टहृदयः अहं स्वजनान् अनुबद्धः शरदि मेघैः विमुक्तम् अमलं सोमम् इव तैः तैः प्रवृद्धविषयैः विषमैः विमुक्तम् आर्यासहायं गुरुं दिदृक्षुः प्राप्तः अस्मि।

अनुवाद— आज अतिप्रसन्न हृदय से मैं आत्मीय जनों के साथ शरत्काल में बादलों से निकले हुए निर्मल चन्द्रमा के समान अनेक विषमसंकटों से मुक्त हुए, सीता सहित पूज्य राम को देखने के लिए उपस्थित हुआ हूँ।

व्याख्या— वर्षा विगत शरद् ऋतु आई–कविवर मैथिलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि शरद् ऋतु का आगमन वर्षा ऋतु के पश्चात् होता है। वर्षा का मेघाच्छन्न आकाश शरद् ऋतु में मेघरहित, स्वच्छ होता है, वातावरण निर्मल धौत होने से चन्द्रमा भी शुभ्र होता है। श्रीराम चौदह वर्ष के वनवास में अनेक संकटों का सफलतापूर्वक सामना कर विजयी होकर लौटे हैं, भरत की भाई के लिए प्रशंसा भावना, प्रेमभावना तथा सम्मानभावना प्रशस्य है, स्वाभाविक भी।

रामः— **वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन।**

उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम्।।7।।

अन्वय— कपाटपुटप्रमाणं वक्षः प्रसारय, सुविपुलेन भुजद्वयेन माम् आलिङ्ग, शरदिन्दुकल्पम्, इदम् आननम् उन्नामय, व्यसनदग्धम् इदं शरीरं प्रह्लादय।

अनुवाद— द्वार के समान विशाल वक्षस्थल को फैलाकर दोनों दीर्घ भुजाओं से मेरा आलिंगन करो, शरद् कालीन चन्द्रमा के समान निर्मल मुख को ऊपर उठाकर संकटों से तपे हुए इस शरीर को आह्लादित करो।

व्याख्या— भाई का भाई से दीर्घ अन्तराल के पश्चात् मिलन, ज्येष्ठ भ्राता का कनिष्ठ के प्रति प्रेम का प्रवाह दर्शनीय है, स्वाभाविक भी।

शत्रुघ्नः— विविधैर्व्यसनैः क्लिष्टमक्लिश्टगुणतेजसम्।

द्रष्टुं मे त्वरते बुद्धिः रावणान्तकरं गुरुम्।।8।।

अन्वय— विविधैः व्यसनैः क्लिष्टम् अक्लिष्टगुणतेजसं रावणान्तकरं गुरुं द्रष्ट में बुद्धि त्वरते।

अनुवाद— अनेक प्रकार के संकटों से पीड़ित, (तदपि) प्रदीप्त गुणों से तेजस्वी, रावण का विनाश करने वाले पूज्य राम को देखने के लिए मेरी बुद्धि आकुल हो रही है।

व्याख्या — संकटों से सफलतापूर्वक पार आने वाले व्यक्ति का तेजस्, वर्चस् ओजस् प्रवृद्ध होता ही है। राम का स्वाभाविक प्रभामण्डल रावण सदृश शक्तिशाली शत्रु को पराभूत करने से अधिक प्रवृद्ध हुआ ही है, ऐसे ज्येष्ठ भ्राता राम से मिलने को अनुज शत्रुघ्न का उत्सुक होना स्वाभाविक है।

शत्रुघ्नः — तीर्थोदकेन मुनिभिः स्वयमाहृतेन

नानानदीनदगतेन तव प्रसादात्।

इच्छन्ति ते मुनिगणाः प्रथमाभिषिक्तं

द्रष्टुं मुखं सलिलसिक्तमिवारविन्दम्।।9।।

अन्वय — तव प्रसादात् मुनिभिः नानानदीनदगतेन तीर्थोदकेन स्वयम् आहृतेन, ते मुनिगणाः सलिलसिक्तमिवारविन्दं प्रथमाभिषिक्तं मुखं द्रष्टुम इच्छिन्ति।

अनुवाद — आपकी कृपा से मुनियों के द्वारा अनेक छोटी बड़ी नदियों से स्वयं लाए हुए पवित्र जल से आपका राज्याभिषेक होना है, वे मुनिजन जल से सिंचित कमल के समान प्रथम अभिषिक्त आपके मुखदर्शन की इच्छा करते हैं।

व्याख्या — शत्रुघ्न राम को सूचित कर रहे हैं कि आर्यावर्त की परम्परा के अनुसार परिवार के ज्येष्ठ पुत्र का समग्र देश की पवित्र नदियों के जल से जिस प्रकार अभिषेक होता है, उसी परम्परा का अनुपालन करते हुए आपको भी इस प्रथा का निर्वाह करना है। सम्राट् पद पर अभिषिक्त आपके तेजस्वी प्रभामण्डल के दर्शन की प्रतीक्षा ऋषिमुनियों, प्रजाजनों सभी को है।

रामः — स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं

कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत्।

राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही

धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम्।।10।।

अन्वय— दैन्यं विमुञ्च स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ, त्वया मयि यत् कर्म अभिलषितं, तदेतत्, भुवि सत्कृतभारवाही राजा अस्मि किल, धर्मेण लोकपरिरक्षणम् अभ्युपेतम्।

अनुवाद— दुःख का परित्याग कर स्वर्ग में प्रसन्न होकर रहिए, आप लोगों ने मेरे लिए जिस राज्याभिषेक कर्म की इच्छा की थी, वह पूर्ण हुआ। पृथिवी पर

सम्मानित राजपद स्वीकार कर अब मैं राजा बन गया हूँ, न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा का दायित्व मैंने ले लिया है।

व्याख्या–

भरतः– **अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं**
विकसितकृतमौलि तीर्थतोयाभिषिक्तम्।
गुरुमधिगतलीलं वन्द्यमानं जनौघै।
र्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः।।11।।

अन्वय– अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं विकसितकृतमौलि तीर्थतोयाभिषिक्तं गुरुम् अधिगतलीलं जनौघैः वन्द्यमानं नवशशिनम् इव आर्यं पश्यतो मे न तृप्तिः (जायते)।

अनुवाद– 'राजन्' शब्द से सम्बोध्य, राजछत्र को धारण करने वाले, उन्नत मस्तक वाले, तीर्थों के जलों से राज्याभिषिक्त, विशाल शोभा के स्वामी, प्रजा समूह के द्वारा वन्दना किए जाते हुए नवीन चन्द्रमा के सदृश आह्लाददायी आर्य राम को देखते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

व्याख्या– अयोध्या के विशाल साम्राज्य के अधिपति, सर्वगुण सम्पन्न राम के दर्शन से नेत्र कभी तृप्त नहीं होंगे। सर्वदा उनके दर्शन की इच्छा बनी रहे, यही कवि का अभिप्राय है।

शत्रुघ्नः– **एतदार्याभिषेकेण कुलं मे नष्टकल्मषम्।**
पुनः प्रकाशतां याति सोमस्येवोदये जगत्।।12।।

अन्वय– एतत् आर्याभिषेकेण मे कुलं नष्टकल्मषम्, जगत् सोमस्य एव उदये पुनः प्रकाशतां याति।

अनुवाद– श्रीराम के अभिषेक से मेरे कुल पर लगे कलंक का नाश हो गया, संसार चन्द्रोदय के समान राम के अभ्युदय से पुनः प्रकाशित हो रहा है।

व्याख्या– संसार के प्रकाशन में सूर्य प्रसिद्ध है चन्द्र नहीं, फिर कवि ने यहाँ चन्द्रोदय से क्यों संसार प्रकाशन की उपमा दी है। सम्भवतः इस कारण कि सूर्य के प्रकाश में प्रखरता के कारण आकुलता होती है किन्तु चन्द्रमा के प्रकाश में शान्ति होती है, आहलाद होता है। रामराज्य में भी सर्वत्र ऐसी ही शान्ति, ऐसी ही आह्लादकता होगी, यह सुनिश्चित है।

रामः– **अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्यां सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः।**

लक्ष्मणः– **अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वां चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम्।।13।।**

अन्वय– अद्यैव सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः अयोध्यां पुरीं यास्यामि। अद्यैव नागराः त्वाम् उदयस्थं सनक्षत्रं चन्द्रम् इव पश्यन्तु।

अनुवाद– राम–आज ही सम्बन्धियों और मित्रों से अनुगमित होता हुआ मैं अयोध्या नगरी को जा रहा हूँ। लक्ष्मण–आज ही नगरवासी आपको उदयाचल पर स्थित नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा के समान देखेंगे।

व्याख्या– भरत नन्दिग्राम में राम की चरण पादुकाएँ प्रतिष्ठित कर संन्यस्त्र जीवन बिता रहे थे। राम सर्वप्रथम उन्हीं के पास आए, राज्याभिषेक के पश्चात्

अब वे राजधानी अयोध्या जाने को उद्यत हैं जहाँ प्रजा उनके दर्शन की बाट जोह रही है।

भरतवाक्यम्ः— यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः।

तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः।।14।।

अन्वय— रामः जानक्या च बन्धुभिश्च यथा समागतः, लक्ष्म्याः समायुक्तः नः राजा तथा भूमिं प्रशास्तु।

अनुवाद— राम ने सीता और सम्बन्धियों के साथ जिस प्रकार पृथिवी पर शासन किया, लक्ष्मी से समृद्ध हमारे महाराज उसी प्रकार पृथिवी पर शासन करें।

व्याख्या— दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहिं काहु व्यापा—ऐसा सुशासन था रामराज्य में, आर्यावर्त के प्रत्येक कोने में ऐसा रामराज्य सर्वदा हो, समृद्धि और शान्ति चतुर्दिक स्थापित हो, यही जन—जन की अभिलाषा है।

4.7 बोध प्रश्न

1. तृतीय अंक के दूसरे तथा पांचवे श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
2. तृतीय अंक के सातवें तथा नौवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
3. तृतीय अंक के बारहवें तथा सोलहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
4. चतुर्थ अंक के पहले तथा छठे श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
5. चतुर्थ अंक के आठवें तथा बारहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
6. चतुर्थ अंक के पन्द्रहवें तथा सत्रहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
7. पंचम अंक के दूसरे तथा आठवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
8. पंचम अंक के बारहवें तथा पन्द्रहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
9. षष्ठ अंक के पहले तथा तीसरे श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
10. षष्ठ अंक के दसवें तथा तेरहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

11. सप्तम अंक के दूसरे तथा सातवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

12. सप्तम अंक के नौवें तथा बारहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई-5 पात्रों का चरित्र चित्रण

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 पात्रों का चरित्र-चित्रण

5.2.1 राम

5.2.2 सीता

5.2.3 भरत

5.2.4 सुमन्त्र

5.2.5 महाराज दशरथ

5.2.6 महारानी कौशल्या

5.2.7 लक्ष्मण

5.2.8 केकैयी

5.3 बोध प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

परास्नातक संस्कृत के इस प्रश्नपत्र में संस्कृत के तीन नाटकों का अध्ययन करना है। खण्ड 'क' के अन्तर्गत भास विरचित 'प्रतिमानाटकम्' का अध्ययन किया जाना है। इस खण्ड की पूर्व चार इकाईयों में नाटक के सप्तम अंक तक के सभी श्लोकों का अन्वय अनुवाद तथा व्याख्या का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में पात्रों के चरित्र-चित्रण का अध्ययन करेंगें।

5.1 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन द्वारा शिक्षार्थी प्रतिमानाटक के महत्वपूर्ण पात्रों के चारित्रिक गुणों से परिचित हो पाएँगे।
- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात राम, सीता, भरत सुमन्त्र आदि के दिव्य चरित्र के आदर्शों को जान पाएँगे।
- इस इकाई के अध्ययन के बाद शिक्षार्थी कवि की उदात्त विचारधारा से भी भलीभाँति परिचित हो सकेंगे।

- पात्र विशेष के चरित्र को ग्रहण कर छात्र कवि भास के कर्तृव्य को सरल रूप में ग्रहण कर सकेंगे।

5.2 पात्रों का चरित्र–चित्रण

5.2.1 राम

परिचय

प्रतिमानाटक के नायक श्रीराम महाराजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र हैं। नाटककार ने राम के व्यक्तित्व में धीरोदात्त कोटि के गुणों का समावेश किया है। धीरोदात्त प्रकृति के नायक को महासत्त्ववान्, दृढ़व्रती किन्तु अहंकाररहित, क्षमायुक्त और आत्मप्रशंसा न करने वाला होना चाहिए–

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।

स्थेयान् निगूढमानो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः कथितः।।

महाकवि भास के नायक श्रीराम में उपर्युक्त सभी गुण बहुलता से प्रत्यक्षतः उपलब्ध होते हैं। जीवन के कठोर कर्मक्षेत्र में अवतारित होने वाले नायक राम निष्काम कर्मयोग की साक्षात् मूर्ति हैं। अनासक्तिमय कर्मयोग का प्रथम दर्शन नाटक का प्रथम पृष्ठ उद्घाटित होते ही राम के चरित्र में दृष्टिगत होने लगता है। महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण अयोध्या के राज्यसिंहासन पर उनका प्रथम अधिकार है। युवराज राम के राजोचित प्रभुत्व के परिचायक राज्याभिषेक की सामग्रियाँ तैयार करने का आदेश महाराज दशरथ द्वारा दिया जा चुका है, नगर में यह शुभ समाचार फैल चुका है, मंगलवाद्य बज रहे हैं, शंखध्वनि उठ रही है, स्वर्णकलश सजाए जा रहे हैं, अचानक कोलाहल शान्त हो जाता है। राम अन्तःपुर में सीताकक्ष में आ कर निर्विकार भाव से सीता की जिज्ञासा शान्त कर देते हैं– अभिषेक सम्पन्न हो रहा था, इसी मध्य पिता ने अभिषेक कार्य रोक दिया, मैं पिता की आज्ञापालन हेतु उठकर चला आया–स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो! विस्मयः?

शान्त स्वभाव

सागर का शान्त जल भी पूर्णिमा की रात्रि को तरंगित होता है किन्तु धैर्यसागर राम के शान्त मन में कोई तरंग नहीं, क्योंकर ऐसा हुआ? जान लेने की जिज्ञासा भी नहीं, तदपि सन्तोष यह कि मैं मात्र राम रहा और महाराजा महाराजा ही रहे–दिष्ट्या स एकस्मि रामः, महाराज एवं महाराजः। क्योंकर ऐसा हुआ? शायद इस कारण कि राम को राज्य का रंचमात्र भी लोभ न था, वे राज्यभार स्वीकार करने को प्रस्तुत ही न थे किन्तु पिता के आग्रह–अनुनय और शपथ ने राम को 'हाँ' कहने को विवश किया था, उनका यह विनम्र स्वभाव कोसलेश दशरथ की आँखों में भी आँसू भर देता है।

राम के इस संन्यस्त स्वभाव का परिचय एक बार पुनः प्रगाढ़ होता है चतुर्थ अंक में–ननिहाल से लौटे भरत भाई के वनवास की सूचना पाकर माताओं के साथ चित्रकूट को प्रस्थान करते हैं। वहाँ औपचारिकताओं के पश्चात् भरत राम से अयोध्या लौटकर राज्यभार स्वीकार करने की प्रार्थना करते हैं। विवेकी राम यहाँ भी त्याग का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और भरत को समझाते हैं कि पिता का आदेश तुम्हारे लिए है। अतः मुझे विवश कर पिता

को असत्यवादी मत बनाओ – कर्तुं न युक्तं त्वया। यहाँ राम के एक अन्य गुण का उल्लेख करना भी अनिवार्य है–प्रतिमा के राम को वक्कल वस्त्र पहनने में रंचमात्र भी संकोच या हिचक नहीं, वे सीता के पास रखे वक्कल वस्त्र स्वयं मांग कर, पहन कर वन जाने को निकल पड़ते हैं पितृश्री के लिए चिन्तित होते हुए कि वे हमारे निवासस्थानों को देखकर तो दुःखी होंगे ही, उनका शोक बढ़ेगा ही–

गतेष्वस्मासु राजा नः शिरः स्थानानि पश्यतु।

शुभ्रमना

श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में श्रेष्ठ पुरुष को निर्मम निरंकारी कहा है। प्रतिमानाटक के राम इन लक्षणों पर खरे हैं। राम ने जो वल्कल वस्त्र विनोद में परिहास में पहना, वही वल्कल वस्त्र अमंगल का सूचक बन चौदह वर्ष के लिए उन्हें देश–परिवार निष्कासन की सजा दे देता है परन्तु उन्हें इसका जरा भी मलाल नहीं, जिस निःस्पृह भाव से उन्होंने राजतिलक के वस्त्र पहने थे, उसी निःस्पृहता से वल्कलवस्त्र धारण कर वन के लिए चल पड़े। मन में कोई ईर्ष्या नहीं, कोई द्वेष नहीं, कोई मात्सर्य नहीं, इस गहरी राजनीतिक चाल के पीछे किसकी साजिश, यह जानने की जिज्ञासा भी नहीं। कैकेयी माँ की नियोजित छलपूर्ण योजना जानकर भी माता (अथवा विमाता) के प्रति मन में तनिक भी क्रोध या तिरस्कार की भावना नहीं आती अपितु माँ को बचाने की इच्छा से विश्वास से भर कर कहते हैं कि जिस स्त्री को पति तथा पुत्र से सर्वविध सन्तोष हो वह भला कोई अपकर्म कर ही कैसे सकती है?

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।

फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति।।

राम के चरित की उदात्तता की निस्सीमता तो यह कि वे अभिषेक के सम्पादित न हो पाने में ही अपना, पिता का भाइयों का और प्रजा का कल्याण मानते हैं। अभिषेक रूकने से महाराज वानप्रस्थ नहीं लेंगे, मुझे पिता की छत्रछाया मिलती रहेगी प्रजा को नए राजा का भय नहीं होगा, मेरे भाई राज्य सुख उपभोग से वंचित नहीं होंगे। राज्य भरत के लिए विमाता ने सुरक्षित कर लिया है, यह सूचना पाकर उनकी प्रतिक्रिया होती है कि विवाह शुल्क माँगना नियमतः उचित है, मैं भी तो प्रिय भाइयों को छोड़कर राज्याधिष्ठाता होने जा रहा था, अब इसके बाद कोई मुझसे माँ की निन्दा न करे–अतः पर न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि। लक्ष्मण उनकी सहनशीलता को ललकार कर उन्हें धनुष उठाने को प्रेरित करते हैं परन्तु उनकी दृष्टि में राज्य मुझे मिले या भरत को, एक ही बात है अतः लक्ष्मण का क्रोध व्यर्थ है। क्रोध पराए के लिए तो सार्थक हो सकता है पर आत्मीयजनों पर क्रोध निष्फल ही होता है। राम के क्रोध करने का अर्थ है पिता अथवा माता अथवा भाई भरत का विनाश–किसका विनाश करूँ, सब अपने हैं क्या आत्मीय जन का वध उचित होगा, क्या इस क्षणिक संसार में अल्पकालिक राज्यसुख के लिए किसी आत्मीय के वध के लिए प्रजा उन्हें क्षमा करेगी? क्या रघुवंश की सन्तान के लिए यह निकृष्ट न होगा? क्या इससे राजवंश कलंकित न होगा? क्रोध अनर्थ का मूल है, अतः क्रोध पर संयम रखना ही नैतिकता है–

ताते धनुर्नमयि सत्यमवेक्षमाणे मुञ्चानि मातरिशरं स्वधनं हरन्त्याम्।

दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु।।

पितृभक्त

पुत्र का प्रथम कर्त्तव्य है पिता की आज्ञा का पालन, उसमें राम को कोई आपत्ति नहीं। पिता का आदेश शिरोधार्य करना उनका सौभाग्य है, यह स्वाभाविक है, आश्चर्यप्रद नहीं। पिता का आदेश मान राम ने राजतिलक के लिए स्वीकृति दी, पिता का निषेध सुन सहर्ष अभिषेक से उदासीन हो गए। पिता का माता को दिए वचन के अनुसार वनवास जाने में दुःख का अनुभव नहीं किया, पिता के वचन की रक्षा के लिए भरत का राजतिलक सुन विचलित नहीं हुए। पिता पुत्र के वन गमन का समाचार पाकर मूर्छित हुए, पिता की मूर्छा का समाचार पाकर लक्ष्मण के क्रुद्ध होने पर उन्होंने स्पष्टतः पिता का विरोध करने को मना कर दिया। पूरी सत्य भावना से राम ने वनवास की सुदीर्घ अवधि को स्वीकार किया, न भय से, न अविवेक से, न अभिमान से –

पितुर्नियोगादहमागतो वनं न वत्स! दर्पान्न भयान्न विभ्रमात्।

कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते कथं भवान् नीचपथे प्रवर्तते।।

पिता को दिवंगत हुए एक वर्ष व्यतीत हुआ, पिता की मुक्ति के लिए एक वर्ष पश्चात् श्राद्ध तर्पणादि होना चाहिए, व्याकुल है पितृभक्त श्रीराम, वन में उपलब्ध सामग्री से ही श्राद्ध करना होगा, वे करेंगे। इस निश्चय में भी एक विवशता है पूर्ण वैभव से पिताश्री का श्राद्ध न कर पाने की, रावण उनकी इसी मनोवृत्ति का लाभ उठाकर स्वर्णमृग से श्राद्ध सम्पादन का प्रलोभन देकर उन्हें आश्रम से दूर भेज देता है। पिता की सद्गति हेतु वे विवेक का प्रयोग किए बिना रावण के कथन पर विश्वास कर स्वर्णमृग लाने चले जाते हैं। यहाँ वे रावण के माया जाल में फंस कर सीता को खो देते हैं। इस सारी विपद् में फंसने का मात्र एक कारण है–पितृभक्ति।

भ्रातृप्रेम

अनुज भरत के लिए कोसल प्रदेश के विशाल साम्राज्य का परित्याग कर सुदीर्घ अवधि के लिए वनवास स्वीकार कर लेने वाले राम का हृदय भाइयों के प्रति प्रेम से भरा हुआ है। अयोध्या का राजप्रासाद हो या वनवास का आश्रम, तवैव पुत्र–रामः रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते। सुख के दिन हों या दुःख भरी रातें। प्रिय भाई लक्ष्मण को वे सदा साथ रखते हैं अपनी छाया की भाँति। अवसर पाते ही कनिष्ठ भ्राता शत्रुघ्न की भी कल्याण कामना वे करते हैं–वत्स! आयुष्मान् भव।

भरत तो सत्य ही उनकी छाया है सम्पूर्ण अनुकृति–स्वर, आकृति आकार आदि सब कुछ समान, मानों राम स्वयं दर्पण में प्रतिबिम्बित हो रहे हों–रूपसादृश्यम्। ... निहि रूपमेव स्वरयोगोऽपि स एव। ऐसे प्रिय अनुज को वनवास की अवधि में अपने समीप पाकर उनके हर्ष का पारावार नहीं रहता है। वे मुक्त हृदय से भरत का स्वागत कर सीता से उनकी प्रशंसा करते हैं कि पिता ने अपने इस पुत्र के गुणों को परखे बिना ही मृत्यु को अंगीकार कर लिया, ऐसा गुणी पुत्र विरल पिताओं को ही मिलता है। वे सचिव सुमन्त्र से कहते हैं कि अयोध्या में कुमार भरत की महाराज दशरथ के समान ही देखभाल कीजिएगा– तात! महाराजवत् परिपाल्यतां कुमारः। उनके अनुसार राजत्व के अनुसार जो दायित्व भरत के कन्धों पर अनायास आ गया था, उसका निर्वहन

अतिकठिन था, उनके अनुज को सम्यक् निर्वाह में अवश्य कष्ट होता होगा— कष्टं भोः नृपतेर्धुरं सुमहतीमेकः समुत्कर्षति। रावणवध के पश्चात अयोध्या लौटने पर वे भरत को हृदय से लगाकर संतृप्त होते हैं—

वक्षः प्रसारय कपाटपुटप्रमाणमालङ्ग मां सुविपुलेन भुद्वयेन।

उन्नामयानमिमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रहलादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम्।।

प्रजाप्रम

प्रतिमानाटक के नायक राम सांसारिकता से पलायन करते प्रतीत होते हैं किन्तु कर्त्तव्य पालन के प्रति उनकी अटूट निष्ठा है। जीवन की विकट—विषम परिस्थितियों में भी प्रजा की चिन्ता उन्हें निरन्तर कष्ट देती है। अभिषेक उत्सव मध्य में ही रोक दिए जाने पर वे इसलिए प्रसन्न हैं कि अब प्रजा को नए राजा को परखना नहीं पड़ेगा—नवनृपतिर्विमर्शे नास्ति शंका प्रजानाम्।

राज्य संचालन का दायित्व भरत ही संभालेंगे—वन में यह निर्णय होने पर वे भरत को तुरन्त अयोध्या लौटकर राज्य संभालने का परामर्श देते हैं, उन्हें यह ज्ञात है कि राजाविहीन राज्य अरक्षित होता है अतएव—राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम्। तस्मादद्येव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः।

आकर्षक व्यक्तित्व

मेदिन्यां शशांकम्—धरती पर चन्द्रमा समरूप श्री सम्पन्न राम अपने आकर्षक व्यक्तित्व और प्रभावशाली गुणों से अयोध्या के जन—जन को प्रिय हैं। क्या मित्र, क्या शत्रु, क्या परिवार, क्या समाज सभी उनकी प्रशंसा करते हैं, वे जगतां नयनाभिराम रूप में सबको तृप्त करते हैं। वूनवास की चर्चा सुन तारतर स्वर से रोकर सभी अयोध्या वासियों (मनुष्य, पशु, पक्षी) ने आहार का परित्याग करके दुःख को स्पष्ट किया है— ह्रेषाशून्यमुखाः सवृद्ववनिताबालाश्च पौरा जनाः—त्यक्ताहारकथाः सुदीनवदनाः क्रु दन्त उच्चैर्दिशा। उनके वन चले जाने से अयोध्या उदास और सूनी है। उनका आत्मविश्वास, उनका शालीन सौम्य व्यक्तित्व देखकर ईर्ष्या से भरा रावण भी उनकी प्रशंसा कर ही देता है—

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो वचः च।

राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत्।।

दुर्बलताएँ

उदयाचल पर नक्षत्रमण्डल के साथ स्थित चन्द्रमण्डल के समान—चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम्—राम स्वयं में ही पूर्ण चन्द्र हैं तथापि वे धरा पर सम्प्रति मानव हैं अतः कवि की लेखनी ने उन्हें सामान्य मानवीय व्यवहार से यदा—कदा सम्पृक्त किया है, मानो कवि चन्द्रमा के कलंक को पोंछना भूल गया हो। यथा वनगमन के समय वे पिता से मिलने को उद्यत नहीं होते हैं। पिता के लिए उनके हृदय में प्रेम सुरक्षित है तभी तो वन में सचिव सुमन्त्र से पिता की मृत्यु का समाचार सुन वे आँसू बहाते हैं। अतिथि सत्कार के प्रति उनमें श्रद्धा है परन्तु अतिथि सचमुच अतिथि है या अतिथि के वेश में कोई राक्षस, यह बिना सोचे वे अतिथि पर विश्वास कर सीता को अपरिचित के साथ छोड़ जाते हैं, यहाँ दुर्घटना घटती है राम के अति उत्साह के कारण। इसी एक त्रुटि का कठोर दण्ड उन्हें अगले अनेक वर्षों तक चुकाना पड़ता है, इस त्रुटि का

प्रतिकार चुकाते–चुकाते उनका अपना पारिवारिक जीवन चुक जाता है। परिवार का सुख, पत्नी–पुत्र का सहवास अल्पकालिक रह प्रजा के सुखों के लिए, प्रजा के संतोष के लिए समर्पित हो जाते हैं तब वे परिवार के सीमित 'राम' न रहकर प्रजा के, युग–युगान्तर की प्रजा के, आप्रलयान्त विद्यमान प्रजा के हृदयों पर राज करने वाले निस्सीम राम बन जाते हैं–रामश्च––––राजा भूमिं प्रशास्तु नः।

5.2.2 सीता

इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोद्धराद्धलात्।

जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम्।।

परिचय

यह वही दीप्तिपूर्ण नारीरूप तेज है जो खेत जोतते समय पृथिवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, यह महाराज जनक के तप का ज्वलन्त उदाहरण है। यह है मिथिला के अधिपति की पुत्री, रघुवंश के कुलदीपक राजा दशरथ की पुत्रवधू तथा मर्यादा पुरुषोत्तम आर्य राम की पत्नी सीता का संक्षिप्त परिचय। वे धरती से जन्मी और जनक के द्वारा पालित प्रिय कन्या हैं। बाह्य सौन्दर्य हो अथवा अन्तःसौन्दर्य वे दोनों की अधिष्ठातृ हैं यही तो राम कहते हैं–ओस से भरे कमल की पांखुरियों के समान नेत्रों वाली, नेत्रों से स्वतः प्रेमाश्रुओं की वर्षा करने वाली मेरी सीता–तुषारपूर्णोत्पलनेत्रा हर्षास्त्रमासारमिवोत्सृजन्ती। सौन्दर्य ऐसा कि शत्रु को भी मोहित कर ले और शत्रु उस सौन्दर्य को चुराने के लिए समुद्र पार से आ उपस्थित हो जाए, उनके रूप का दर्शन कर उन्हें मानवी श्रेष्ठतमा घोषित करे–इयमेका पृथिव्यां हि मानुषीणामरुन्धती। पुष्पक विमान पर छटपटाती सीता को देखकर जटायु ने उन्हें तपोवन की सिद्धि कहा, कारण वे मन से भी अति पवित्र थीं। यह पवित्रता ही उन्हें पति की, परिवार की, समाज की प्रिय बनाए था, इतनी प्रिय कि उनके श्रृंगार के लिए युवराज राम स्वयं दर्पण हाथ में लेकर खड़े होने को उद्यत रहते थे– तेन हि अलंक्रियताम्। अहमादर्शं धारयिष्ये।

पतिपरायण

पति राम की सहिष्णुता, उदारता, धैर्य उन्हें शिरोधार्य है। पति का अभिषेक उत्सव रोक दिए जाने से वे भी सम्राज्ञी बनते–बनते रह गईं परन्तु पति ने उचित ही किया होगा। सोचकर वे उस ओर ध्यान भी नहीं देती हैं अपितु वल्कल धारण कर पति को मनोरञ्जित करने का प्रयास करती हैं, इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ कि यही वल्कल आगत भविष्य में उनकी विपदाओं का करण बनने वाला है।

गृहिणी

सीता पति की अर्द्धांगिनी है, सहधर्मचारिणी हैं– ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्। पति को चौदह वर्ष का वनवास मिले, वन–वन घूमें और वे सुख से शय्या पर सोएँ, नहीं, उन्हें पति के साथ जाना होगा, पति के सान्निध्य में वनवास भी राजमहल होगा, पति के बिना जीवन व्यर्थ है–भर्तृनाथा हि नार्यः। वन में वे पति के आदेश से रावण की सेवा करने को उद्यत होती हैं। यहाँ उनके पति अपने हृदय की निर्मलता से धोखा खाते हैं। इस धोखे का दण्ड अपहरण के रूप में उन्हें दीर्घ काल तक भोगना पड़ता है परन्तु इसका दोष वे

स्वीप्न में भी कमी पति को नहीं देती हैं, यह है उनका पातिव्रत्य। रावण उन्हें अपने देश लाकर स्पर्श भी नहीं कर पाता है–यह है उनके सतीत्व का प्रताप।

पति का परिवार उनका अपना परिवार है। प्रतिदान में उन्हें भी पुत्रवधू और भाभी का सम्पूर्ण स्नेह और सम्मान पति के परिवार से मिलता है। पूज्य श्वसुर तो उन्हें पुत्री ही मानते हैं– क्व दुहिता विदेहानां भर्तुर्निरतिशयभक्तिर्गुरुजने। महाराज दशरथ चिन्तित हैं वन में कमलकोमल पुत्री की कष्टों से रक्षा के लिए–अरण्यानि स्वाधीनानि विचरन्ती वैदेही न परिखिद्यते। ऐसे स्नेही पितृसम श्वसुर के वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करने का प्रस्ताव सुन वे उनके लिए चिन्तित हो उठती हैं– अभिषेकजल को आंसूजल न बनाइए–यद्येव न तदभिषेकोदकं, मुखोदकं नाम।

एक अघटनीय घटा और विशाल कोसल साम्राज्य का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उत्सव महाशून्य में बदल गया, यह महाशून्य उन्हें तो निगल ही गया, (वे राजमहल से वनपथ पर आ गईं, उससे भी महादुर्भाग्य, रावण अपहृत कर सुदूर देश लंका ले गया) पर अपार संयम की स्वामिनी वे प्रसन्न हैं क्योंकि इससे पिता का राजत्व सुरक्षित रहा और पति का सहजत्व–प्रियं में, महाराज एव महाराजः आर्यपुत्र एवार्यपुत्रः। पति की माताओं को वे सश्रद्ध प्रणाम करती हैं। पति के प्रिय अनुजों की मंगलकामना उनके हृदय की विशालता को अभिव्यक्त करती है–स्वस्ति! आयुष्मान् भव। उनका यह शील, यह मृदु व्यवहार पति को आकृष्ट करता है, उनका सौभाग्य कि उनके प्रेम में विह्वल भावी अवधनरेश उनके शृंगार के लिए स्वयं हाथ में दर्पण पकड़ते हैं– तेन हि अलंक्रियताम्। अहमादर्शं धारयिष्ये।

स्त्रियोचित स्वभाव

सीता दो विख्यात राजकुलों से बहू–बेटी के रूप में सम्पृक्त हैं पर दर्प के परिणामस्वरूप स्वभाव में आने वाली उद्दण्डता ने उन्हें छुआ भी नहीं है। वे तो धरती पुत्री है। धरती के सारे गुण–सहनशीलता, उदारता, विनम्रता उनमें नख–शिख व्याप्त है। भीरुता, उत्सुकता शंका भी उनके व्यवहार में दृष्टिगत होती है, परन्तु मर्यादित रूप में। सखि अवदातिका नाट्यशाला से परिहास में वल्कल उठा लाई है तथापि यह कार्य सीता को नहीं रुचता, वे उसे बरजती हैं– उन्मत्तिके! एवं दोषो वर्धते। गच्छ, निर्यातय निर्यातय।

परिवार में दास–दासियाँ, सेवक–सेविकाएँ परिवारजनों के सहारे पालित होते हैं, यह उन्हें विदित है। पति राम के अभिषेक के आयोजन की सूचना देने वाली दासी को वे आभूषण उतारकर पारितोषिक में दे देती हैं और कालिदास की लखेनी से विदाबेला में महर्षि कण्व द्वारा शकुन्तला को दिए गए उपदेश 'भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने' को सार्थक करती हैं।

राजपरिवार की वधू होकर भी उन्होंने वन में अहं भाव से दूर रहकर ऋषिपत्नियों से मधुर सम्बन्ध बनाए हैं।

कर्मठ

राजनीति ने ऐसा क्या मोड़ लिया जो अभिषेक रोक दिया गया, यह जानने की उत्सुकलता उन्हें है साथ ही शंकित मन से यह चिन्ता भी कि पति का अमंगल न होने पाए। यहाँ भवितव्यता बलवती है अनर्थ घटता है पर वे पति के कठिन क्षणों की सहोपयोगी बन वन्यजीवन को सहज स्वीकार करती हैं। यहीं उनका गृहिणीत्व भी सार्थक होता है– वे पौधे सींचती हैं, जल भरती

हैं, पूजन करती हैं, सामान्य स्त्री की भाँति पति की प्रतीक्षा करती हैं। वनवास ने नारी सुलभ कौमार्य को कठोरता में परिणत कर दिया है अन्यथा दर्पण उठाने में थक जाने वाला हाथ अब घड़ा उठाने में भी नहीं थकता है–

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि सः नैति खेदं कलशं वहन्त्याः।

कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति।।

दुर्दैव सीता को रावण के कपटजाल में फंसा देता है। अपहरण के दुःसह्य क्षणों में वे पति और देवर को असहाय सी पुकारती हैं, नागिन की तरह छटपटाती हैं, फूलों की सुकोमल लता सी कांपती हैं पर यहाँ भी भवितव्यता बलवती सिद्ध होती है वे समुद्र द्वीप लंका को पहुँचा दी जाती हैं। प्राणीप्रिय राम से वियुक्त तपोवन की पवित्रता रूप सीता का हरण, क्या यही विडम्बना थी उनके भाग्य की–

विचेष्टमानेव भुजंङ्गमांङ्गना विधूयमानेव च पुष्पिता लता।

प्रसह्य पापेन दशाननेन सा तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते।।

सत्यपरामर्शदात्री

सीता पति की सचिव हैं। पिता दशरथ का वैभवपूर्ण श्राद्ध न कर पाने से क्षुब्ध पति को वे परामर्श देती हैं–पिता का श्राद्ध हम वन में सुलभ सामग्री से अपनी सामर्थ्यानुसार श्रद्धापूर्वक करेंगे, हमारे पूर्वज हमारी परिस्थिति और विवशता को जानते हैं, अतः हमारे द्वारा दी गई सामग्री को वे सहर्ष स्वीकार करेंगे, इस हेतु आप दुःखी न हों– अवस्थानुरूपं फलोदकेनाप्यार्यपुत्र। एतत् तातस्य बहुमततरं भविष्यति।

विशिष्ट जीवनशैली

सामान्यतः स्त्रियाँ शृंगारप्रिया होती हैं। वे प्रसाधन, वस्त्र, अलंकरण में विशिष्ट रुचि प्रदर्शित करती हैं परन्तु सीता रागरञ्जन के पूर्वाग्रह से नितान्त उदासीन हैं। सम्पूर्ण नाटक में कहीं भी उनके शृंगारप्रिय होने की एक भी झलक नहीं मिलती है अपितु वे तो राजसी वस्त्र–अलंकरण उतार कर वल्कल वस्त्र धारण करने में रुचि दिखाती हैं। अवदातिका उनके रूप की प्रशंसा करती हुई कहती है–महारानी सुन्दर रूप पर सभी चीज़ें सजती हैं, आप धारण तो कीजिए–सर्वशोभनीयं सुरूपाणाम्। अलंकरोतु भट्टिनी।

सीता के रूप को वल्कल द्विगुणित करता ही है जैसे शकुन्तला की रूपसम्पदा को वल्कल द्विगुणित कर ही रहा था–किमिव हि मधुराणा मण्डनं नाकृतीनाम्।

महाकवि भास ने अपनी तूलिका से सीता के चरित्र में जो शान्त और उज्ज्वल रंग भरे हैं वे भारतीय नारी की शाश्वत परिकल्पना को सजीव करते हैं। कवि ने अपने हृदय की सारी कोमलता, मृदुता, मधुरता संचित कर आह्लदमयी किन्तु मर्यादित नारीमूर्ति की रचना कर दी है। यही नारीमूर्ति सीता के अभिधान को प्राप्त कर मर्यादा पुरुषोत्तम राम की आप्रलयान्त ख्याति की सत्प्रेरणा बनी है, यही नारीमूर्ति सीता सतीत्व का प्रतिमान बन युग–युग तक नारी जाति के आदर्श को उद्घोषित करती रहेगी।

5.2.3 भरत

परिचय

रघुवंश के परिवार में महाराज दशरथ के तृतीय पुत्र, राम के सहोदर भ्राता, आकृति में राम के समान, स्वर में गम्भीर, विनम्रता में पारिवारिक सदस्यों के समान चरित्र में उदात्त, मन में कालिमारहित, त्याग में राम से अधिक किन्तु कैकेयी के पुत्र का कलंक वहन करने वाले युवराज भरत नाटक के सहयोगी नायक हैं। नाटककार भास ने माँ के अपराध से जोड़कर पश्चात्ताप ग्लानि और अन्तर्वेदना की आँच में तपाकर उन्हें खरा कुन्दन बना दिया है तब आलोचकों की दृष्टि में वे राम की अपेक्षाकृत चरित में उच्च और श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। श्रेष्ठतम सुपात्र ही नाटक का नायक होता है अतएव विद्वानों की यह मान्यता सत्य होती प्रतीत होती है कि प्रतिमानाटक के नायक भरत हैं राम नहीं। स्वयं राम इस तथ्य को निस्संकोच स्वीकार करते हैं कि जिस यश को मैंने चिरकाल में संचित किया था, भरत ने अपनी त्यागमयी मनोवृत्ति से उसे अल्पकाल में अर्जित कर लिया–

सुचिरेणापि कालेन यशः किञ्चिन्मयार्जितम्

अचिरेणैव कालेन भरतेनाद्य सञ्चितम्।।

पृष्ठभूमि

प्रतिमानाटक के तृतीय अंक में भरत का प्रवेश होता है। तृतीय अंक के पूर्व अयोध्या के राजपरिवार में अनेक दुर्घटनाएँ घट चुकी थीं, विमाता के द्वारा स्वपुत्र को राज्य दिलाने के लिए और राज्यप्राप्ति के मार्ग में आई बाधा को दूर करने के लिए ज्येष्ठ पुत्र का राज्य से निष्कासन की गहरी राजनीतिक चाल चली जा चुकी थी। परिवार के द्वितीय पुत्र और ज्येष्ठा पुत्रवधू भी गृहत्याग कर दीर्घावधि के लिए जा चुके थे, परिणामस्वरूप पिता की मृत्यु हो चुकी थी। आश्चर्य यह कि जिस व्यक्ति को केन्द्र में रखकर परिधि में यह अघटित घट रहे थे वह ही इन सबसे अनभिज्ञ थे। वह तो मातुलगृह में प्रवासकाल में शान्तिपूर्वक दिन व्यतीत कर रहे थे। ननिहाल से अयोध्या लौटते समय मार्ग में विश्राम करने के लिए देव मन्दिर में इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रियों–कोसलनृपतियों की प्रतिमाओं–(दिलीप, रघु, अज) के प्रणामक्रम में दशरथ की प्रतिमा देखकर पिता के स्वर्गगमन और राम के साथ सीता और लक्ष्मण के वनगमन का समाचार सुन वे मूर्छित हो जाते हैं। उनका अयोध्या जाकर परिवार से मिलने का समग्र उत्साह फ़ीका हो जाता है। पिता नहीं, भाई नहीं, भाभी नहीं, क्या कुलटा माँ से मिलने जाएँ। अब तो अयोध्या जाना ऐसा है जैसे कोई प्यासा व्यक्ति सूखी नदी की ओर दौड़ता जा रहा हो–

अयोध्यामटवीभूतां पित्राभ्रात्रा च वर्जिताम्।

पासार्तोऽनुजानामि क्षीणतोया नदीमिव।।

उनकी अपनी माँ ने उनके लिए यह पासा फेंका, यह जानते ही वे अग्नि परीक्षा देकर स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का संकल्प कर लेते हैं–अथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः।।

सौम्य व्यक्तित्व

संकल्पपूर्णता के लिए कटिबद्ध भरत के तपःपूत व्यक्तित्व में ऐसे व्यक्ति का चरित्र उभरता है जो अपने ऊपर लगे कलंक को धोने के लिए प्रत्येक क्षण पश्चात्ताप की अग्नि में दग्ध होता रहता है। उपद्रव के मूल में स्वयं को मानकर विनयपूर्वक, विनम्रतापूर्वक सम्पूर्ण समर्पण के प्रति जागरूक रहते हैं। राज्यसिंहासन पर ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार होता है, वनवास से ज्येष्ठ पुत्र वापस आएँ और राज्यभार स्वीकार करें, इस प्रत्याशा के साथ वह वन में राम से मिलकर उनसे यही निवेदन करते हैं। राम के अधिकार से उनकी विनम्रता, उनका त्याग सारी सीमाओं को लाँघ, राम की कल्पना सीमा को भी लाँघ जाता है। सम्भवतः राम के मन में कभी यह विचार भी न आया होगा कि जिसके सामने कोसलविशाल साम्राज्य पड़ा हो वह उसे ठुकरा कर मेरी चरणपादुकाएँ माँग रहा है, क्यों पिता ने अपने पुत्ररत्न के अन्तर्मन को नहीं समझा और मृत्यु को अंगीकार कर लिया–

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके धिग् भो विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु।।

सुदर्शन

प्रिय और प्रियरूप–कठोपनिषद् के एक मन्त्र के अनुसार संसार में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। अपना सम्बन्धी प्रियरूप न होने पर भी प्रियरूप होता है, पराया व्यक्ति तभी प्रिय होता है जब वह प्रियरूप हो। भरत में ये दोनों विशिष्टताएँ समरूप में विद्यमान हैं, वे प्रिय भी हैं और प्रियरूप भी–सुदर्शन भव्याकृति उन्हें प्रियरूप बनाती है, उनका शील, त्याग, तपोमय आचरण उन्हें सर्वप्रिय बनाता है अथवा यों कहें कि आन्तरिक और बाह्य दोनों दृष्टियों से वे अनुपम हैं, लोकप्रिय हैं, श्रद्धेय हैं और रहेंगे। चित्रकूट में भरत का स्नेहिल स्वर राम–लक्ष्मण को आकृष्ट करता है। लक्ष्मण तो राम की प्रतिकृति रूप पुरुष को समक्ष खड़ा देख, उस पुरुष के सौन्दर्य से प्रभावित हो, उसकी तेजस्विता की तुलना इन्द्र अथवा विष्णु से करते हैं–

मुखमनुपमं त्वार्यस्याभ शशांकमनोहरं मम पितृसमं पीनं वक्षः सुरारिशरक्षतम्।
द्युतिपरिवृतस्तेजो राशिर्जगत्प्रियदर्शनो नरपतिरयंदेवेन्द्रो वा मधुसूदनः।।

पश्चात्तपदग्ध

भाग्य की विडम्बना यह कि जिस प्रतिमागृह में वे विश्रान्ति पाने गए थे, वहीं अमृतमय शुभाशाओं पर, बाल्यकाल की स्मृतियों से जुड़ी परिकल्पनाओं पर प्रबल आघात हुआ, उस आघात ने पिता–माता–भाइयों के आश्रय में विकसित कैशोर्य मन की सुलभ चपलताओं को क्षण भर में ही चूर–चूर कर उन्हें धीर–गम्भीर युवक के रूप में कायाकल्पित कर दिया। उनका यह कायाकल्प क्षणिक भावावेश वशात् लिया गया निर्णय नहीं था, यह था रघुवंश की सुदृढ़ संकल्प की आधारभित्ति पर आधारित। उनके इस निर्णयात्मक संकल्प से उनका अपना पाप धुलना था और माँ कैकेयी को भी निष्पाप–पवित्र होना था, कलंक का बोझ ढोना सरल तो नहीं होता है। माँ ने उनका नाम लेकर जिस अतुल ऐश्वर्य की कामना की थी, उसी विशेषाधिकार से स्वयं को बहुत दूर रखकर, अन्तर्व्यथा के गंगाजल से स्वयं को पवित्र करना था और माँ की भूल का भी

परिमार्जन करना था। खिन्नता की इस स्थिति में भी स्वयं पर नियन्त्रण रख वे कौशल्या और सुमित्रा माँओं को सश्रद्ध प्रणाम करते हैं किन्तु कैकेयी को देख उनका धैर्य चुक जाता है, रोषपूर्ण शब्दों में वे उसकी भर्त्सना करते हैं। गंगा–यमुना के मध्य यह गंदे जल की नदी कैसी–

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे।

गंगायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता।।

आज उनकी दृष्टि में माता कुमाता है, उसने पति से द्रोह किया है, उन्हें मातृत्व के अधिकार से वंचित करना होगा–भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता। कुलनाशिनी लोभी स्त्री से स्वार्थसिद्धि के अतिरिक्त और अपेक्षा भी क्या हो सकती है। आज उसी के कारण अयोध्या राम से सूनी हो गई– नायोध्या तं विनायोध्या यत्र राघवः। ऐसी कुलकलंकिनी माँ के कारण उनके श्रेष्ठतम रघुवंश को कितनी कुख्याति सहनी पड़ रही है। उनकी माँ के कारण राम वन गए, राम की पत्नी सीता राक्षस द्वारा हरी गईं। क्या मुझे माध्यम बनाकर माँ अपना यही मनोरथ पूरा करना चाहती थीं–

यः स्वराज्यं परित्यज्य त्वन्नियोगाद वनं गतः।

तस्य भार्या हृता सीता पर्याप्तस्ते मनोरथः।।

क्षमाप्रार्थी

राजनीति की योजनाओं में प्रायः रहस्य अन्तर्गोपित होता है, यह रहस्य उत्कृष्टता के लिए है अथवा निकृष्टता के लिए, यह आयोजक की भावना पर निर्भर करता है। कैकेयी रचित षड़यन्त्र के मूल में भी कल्याण भावना थी राजा के लिए, राज्य के लिए। सुमन्त्र से यह जानकर भरत के मन की माँ के प्रति अपर घृणा एक क्षण में ही ममता और वात्सल्य का रूप ले लेती है। वे माँ के हृदय की निर्दुष्टता जान माँ के चरणों में प्रणाम कर क्षमा प्रार्थना करते हैं–

हन्त त्रैलोक्यसाक्षिणः खल्वेते। दिष्टयानपराद्धात्रभवी। अम्ब! यद् भ्रातृस्नेहात समुत्पन्नमन्युना मया दूषितात्रभवती, तत् सर्वं मर्षयितव्यम्। अम्ब अभिवादये।

आज पुनः उनकी धुँधली दृष्टि स्पष्ट हो गई है, कुमाता माता नहीं, उसने तो स्वयं को कलंक का भागी बन पिता को शापविमुक्त किया है। आज उन्हें यह रहस्य ज्ञात है, इस रहस्योद्घाटन ने माँ के प्रति भरत के मन के कालुष्य को धोकर निर्मल कर दिया। इसी कलंक की आँच में तपे भरत निर्लोभी–निर्मोही महापुरुषों की पंक्ति में सर्वप्रथम प्रतिष्ठित हुए। जल में कमल की तरह राज्यलोभ से तनिक भी विचलित न होने वाले भरत सामान्य रघुवंशी राजकुमार न रहकर समग्र आर्यावर्त की जनता के सम्मान के, श्रद्धा के प्रतीक बन गए।

काल की गति सदा एक सी नहीं रहती है। कविश्रेष्ठ कालिदास के शब्दों में सुख–दुःख रथ के पहिए के समान ऊपर–नीचे आते–जाते रहते हैं। रघुवंश पर जो आपत्ति आई थी, भरत के निश्छल प्रयत्नों से वह समाधानित हुई। राम ने रावण पर विजय पाई, वनवास की अवधि पूरी कर राम सीता व लक्षण के साथ अयोध्या लौटे। भरत ने समग्र जीवन राम को समर्पित कर, विचारसरणि को राममय बनाकर, सांस–सांस में राम को बसाकर जो संकल्प साधा था, उसकी पूर्णाहुति हुई। राम राजा बने, भरत ने प्रसन्नमन से जयघोष किया–

अधिगतनृपशब्दं धार्यमाणातपत्रं
विकसितकृतमौलिं तीर्थतोयाभिषिक्तम्।
गुरुमधिगतलोलं वन्द्यमानं जनौघे–
र्नवशशिनमिवार्यं पश्यतो मे न तृप्तिः।।

5.2.4 सुमन्त्र

सचिव का दायित्व है–राजा को उचित परामर्श देकर राज्य की समुचित देखभाल, इस लक्ष्य को दृष्टिगत कर सचिव रात्रिन्दिवं राज्य के कल्याण कार्यों में सम्पृक्त रहता है। सुमन्त्र अयोध्या जैसे विशाल साम्राज्य के अधिपति की राज्यसभा के मन्त्री हैं, अपने पद की महत्ता को वे जानते हैं, पद की गरिमा का स्लखन भी वे कहीं होने नहीं देते हैं–नाटक के आरम्भ से अन्त तक। महाराजा दशरथ की प्रत्येक मन्त्रणा में वे सम्मिलित होते हैं, अपने विवेक से सम्यक् परामर्श देकर मन्त्रित्व को निरन्तर सार्थक करते हैं। शान्त भाव से निरन्तर दायित्वों का निर्वहन–यह है उनकी कार्यशैली।

राजपरिवार के सदस्य

राजपरिवारों में राजनीतिक चालें चली जाती हैं, पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष पारिवारिक सदस्यों के मध्य षडयन्त्रों का बीजारोपण करता रहता है। घात–प्रतिघात की इस निकृष्ट राजनीति की गन्ध रघुकुल से भी उठ रही है–राज्य कौशल्या पुत्र राम को ही क्यों मिले, मेरे पुत्र भरत को क्यों नहीं? कैकेयी का यह लोभ निकट भविष्य में परिवार की शान्ति को नष्ट–भ्रष्ट करने वाला है। यही हुआ–राम को भरत के राजमार्ग की बाधा समझकर वन भेज दिया गया, लक्ष्मण और सीता साथ गए। महाराज दशरथ के आदेश से रथ लेकर वन में तीनों को छोड़कर आने का दारुण दायित्व दिया गया सुमन्त्र को। सुमन्त्र वन से खाली रथ लेकर लौटे हैं–यह दुःखद सूचना सुमन्त्र ने ही दशरथ को सुनाई। महाराज दशरथ सुनते ही मूर्छित होकर दिवंगत हुए।

भरत ननिहाल से लौटे। सुमन्त्र राजाविहीन राज्य की सुरक्षा के लिए चिन्तित थे। अवसर पाकर उन्होंने भरत को समझाया–सभी ज्येष्ठ आपका राज्याभिषेक करने को उत्सुक हैं। जिस प्रकार गोप के बिना गाएँ अरक्षित होती हैं उसी प्रकार राजा के अभाव में प्रजा विनष्ट होती हैं–

गोपहीनता यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः।।

व्यथितहृदय

भरत अभिषेक ठुकरा कर राम को लौटा लाने वन को गए, सुमन्त्र साथ में गए, अब तक सम्भवतः वे परिवार की दुर्दशा से व्यथित होकर अन्तर्मन से टूट चुके थे। राम को उनसे सहानुभूति है, राम जानते हैं कि पिता के राज्य में उन्हें स्वर्ग में भी सम्मान मिलता था, अब तात सुमन्त्र को न वह आदर सत्कार मिलता होगा न तज्जन्य प्रसन्नता। पुत्र राम का करुण स्पर्श पाकर सुमन्त्र के हृदय की करुणा विगलित हो शब्दों में बह जाती है। जीवनकाल में महाराज नहीं रहे, राम वनवास में गए, भरत ने गृहत्याग किया, वंश निराश्रित हुआ, ऐसी लम्बी आयु भला किस कम की–

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य।

बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे।।

सुमन्त्र के हृदय का यह अन्तर्जनित दाह एक बार फिर अभिव्यक्त होता है जब भरत उन्हें चित्रकूट भेजते हैं राम की कुशलता का समाचार लाने, वे लाते हैं अकुशलता भरे अनेक समाचार– राम चित्रकूट में नहीं है, रावण ने सीता का अपहरण कर लिया है, सचमुच मेरी दीर्घायु ने मुझे सुख के स्थान पर दुःख अधिक दिए हैं। सुमन्त्र को यह विश्वास है कि राम गहन वन में चले भी गए होंगे तो राम के सद्व्यवहार से प्रभावित पशु–पक्षी उन्हें कष्ट न देकर उनका उपकार ही मानेंगे।

वयोवृद्ध

परिवार की दृष्टि में, समाज की दृष्टि में कैकेयी ने अनर्थ किया है, कुल वधू की गरिमा को कलंकित किया है किन्तु सुमन्त्र जानते हैं कि यह षडयन्त्र नहीं, इसमें कोई गूढ़ रहस्य नहीं, महाराजा दशरथ की शापविमुक्ति के लिए कैकेयी द्वारा किया गया एक सामान्य प्रयास था, जिह्वास्खलन के कारण जिसका रूप विकृत हो गया। परिणामतः एक के बाद एक अनर्थकारी घटनाएँ घटती चली गईं–बाह्यतः भरत जिसे माँ का राजनीतिक छल मानकर माँ से रुष्ट और क्रुद्ध थे, उसकी यथार्थता जानकर, अपने ऊपर सारा कलंक लेकर पिता को शापविमुक्त करने वाली माँ के प्रति समस्त विद्वेष धुलकर भरत का हृदय निर्मल हो गया। माँ–पुत्र के इस शाश्वत मिलन का श्रेय है–वयोवृद्ध अनुभवी सुमन्त्र को, जो रहस्य का उद्घाटन कर भरत के अशान्त मन को शान्त कर देते हैं।

सुमन्त्र नाटक में आदि से अन्त तक अनेकविध दायित्वों का निर्वाह करते हैं। परिवार के अन्य किसी सदस्य को वह महत्त्व नहीं प्राप्त है जो भास ने प्रतिमानाटक में मंत्री सुमन्त्र को दिया है। वह परिवार के साधारण सदस्य नहीं, सदस्य से भी अधिक हैं। परिवार के प्रत्येक सदस्य का उन पर अगाध विश्वास है। राजवंश में घटने वाली अनेक घटनाओं के वे अन्तःसाक्षी हैं। उन्हें यह महत्ता दी है महाराज दशरथ ने, वे सुमन्त्र को मन्त्री मात्र नहीं, भाई मानकर व्यवहार करते हैं–भ्रातः! सुमन्त्र! क्व मे ज्येष्ठो रामः।

5.2.5 महाराज दशरथ

वीर पुरुष

देवासुर संग्राम में दैत्यों को पराजित करने वाले राम महाराज अज के पुत्र हैं– देवासुरसंग्रामेष्वप्रतिरथमहारथः दशरथः ...। ... अत्र भवानजः। पिता तातस्य। राजवंश से सम्बन्धित होने के कारण उनके तीन विवाह हुए थे, वे तीनों रानियाँ क्रमशः थीं– कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। चार पुत्रों से वे पुत्रवान् और सौभाग्यशाली थे– राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न। अयोध्या के विशाल साम्राज्य के एकच्छत्र स्वामी महाराज दशरथ को राक्षसों के साथ युद्ध होने पर देवता विजय कामना से स्वपक्ष से आमन्त्रित किया करते थे। राम भी पिताश्री की देवताओं की ओर से दानवों पर विजय का स्मरण करते हैं– विख्यातो यो विमर्दे स स इति बहुशः सासुराणां सुराणाम्।

भारतीय संस्कृति के पोषक

महाराज दशरथ आर्यावर्त के जिस श्रेष्ठ रघुवंश से सम्बद्ध हैं वह परिवार भारतीय संस्कृति के पोषण और उन्नयन के लिए सदा प्रसिद्ध रहा है, उसी परम्परा का अनुपालन करते हुए महाराज दशरथ ने यथासमय आश्रमव्यवस्था में रुचि प्रदर्शित करते हुए गृहस्थाश्रम का सम्यक् पालन कर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश का संकल्प लिया, इस हेतु ज्येष्ठ सुयोग्य पुत्र राम को राज्यसिंहासन पर आरुढ़ करने का विचार किया। उनका विश्वास था कि उनके संरक्षण, निर्देशन और आश्रम में पालित वर्द्धित श्री राम प्रजा के साथ भी न्याय करेंगे और भाइयों के साथ भी। सन्तुष्ट राजा दशरथ स्वयं वन के लिए प्रस्थान करेंगे, पर विधाता को तो यह स्वीकार्य ही न था–

राज्ये त्वामभिषिच्य सन्नरपतेर्लाभात् कृतार्थाः प्रजाः–

कृत्वा, त्वत्सहजान् समानविभागान् कुर्वात्मनः सन्ततम्।

इत्यादिश्य च ते, तपोवनमभितो गन्तव्यमित्येतया–

कैकेय्या हि तदन्यथा कृतमहो निःशेषमेकक्षणे।।

स्नेही पिता

गृहस्थाश्रम के उत्तरार्ध में अग्निदेव की कृपा से महाराजा दशरथ को तीनों रानियों से चार सुयोग्य सन्तानें प्राप्त हुई थी– राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न। सभी गुण, शीलनिधान, मेधावी और विनम्र थे। पिता को चारों ही प्राणाधिक प्रिय थे, उनमें भी राम तो उनके श्वासों की गति थे, उनके जीवन का सम्बल थे, प्राणों के आधार थे। अपार स्नेह था उन्हें राम से, उन्हीं राम से चौदह वर्ष का वियोग और वह भी उनके प्राणप्रिय राम को देशनिष्कासन रूप दण्ड के कारण, क्या दोष है राम का? क्या त्रुटि है उनकी सहगामिनी सीता की? कहाँ प्रमाद हुआ बेचारे लक्ष्मण से उनकी कमल सुकोमल सन्तानें उनकी कुन्दकली सी पुत्रवधू कैसे सहेंगे वन का कष्ट। दशरथ का यह सन्ततिप्रेम विस्मृति और मूर्छा में समाहित हुआ। राजप्रासाद छोड़ते समय वे आकुल–व्याकुल से राम–लक्ष्मण–सीता के लिए वृद्ध गजराज की तरह डगमगाती चाल से मिलन हेतु दौड़ पड़ते हैं–

श्रुत्वा वे वनगमनं वधूसहायं

सौभ्रात्रव्यसितलक्ष्मणानुयात्रम्।

उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः

कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः।।

पुत्र वियोगाकुल

महाराजा दशरथ की सन्तानें चौदह वर्ष के लिए उनकी ही भूल से वन को चली गई। उनके पत्नीप्रेम का दण्ड उनकी सन्तानों को भोगना पड़ा! कैसे सहें वे इस दुःख को, कैसे संभालें अपने–आपको, जिस पुत्रवियोग की उन्होंने कभी कल्पना नहीं की थी, वह अचानक दबे पाँव आकर उनके चतुर्दिक फैल गया। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा कि सचमुच ऐसा अनभीष्ट घटित हुआ है–

हा वत्स! राम! जगतां नयनाभिराम!

हा वत्स! लक्ष्मण! सलक्षणसर्वगात्र!

हा साध्वि! मैथिलि! पतिस्थितचित्तवृत्ते!

हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः।।

विकराल मुख खोल पुत्रवियोग उनके समक्ष खड़ा है वे उसमें समाते जा रहे हैं दुःख सागर में डूबे उनका अपलाप–प्रलाप निरन्तर चल रहा है। दुःख से संत्रस्त्र वे निरन्तर तीनों सन्तानों का नाम ले लेकर छटपटा रहे हैं– लक्ष्मण ने भ्रातृप्रेम के समक्ष पितृ–प्रेम को नगण्य कर दिया, वधू वैदेहि मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं देती है, मेरे राम ने वृद्ध पिता की चिन्ता छोड़कर असत्य धर्म को महत्त्व दिया। मेरी सन्तानें घर त्याग कर चली गईं, मैं तो अपयश का भागी हुआ, लोक सदा मेरी निन्दा करेगा, धिक्कार है मुझे। राजा के अंग–अंग में दुःख पैठा हुआ है, उन्हें स्मरण है–सूर्य अस्त होता है, दिवस का अवसान होता है, दिवस की समप्ति पर छाया भी लुप्त हो जाती है, ऐसे ही मेरे राम लक्ष्मण सीता मेरी दृष्टि से अदृश्य हो गए–

सूर्य इव गतो रामः, सूर्य दिवस इस लक्ष्मणोऽनुगतः।

सूर्य दिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता।।

दयनीय दशा

दशरथ की दशा शोचनीय है, दयनीय है। रोष, क्रोध, दुःख, कष्ट आकुलता, छटपटाहट, अधीरता, असहिष्णुता मानो सब उनमें घुल–मिलकर एकाकार हो गए हैं, बुद्धि काम नहीं कर रही है, इन्द्रियाँ शून्य हो गई हैं, आग मानो शरीर को जलाए डाल रही है। विधाता! तुमने ये क्या किया, इससे तो मैं निस्सन्तान रहता तो यह दयनीय दशा तो न होती और यदि सन्तान दी तो इस कैकेयी को मानुषी क्यों बनाया, हिंस्र पशु बनाना चाहिए था–

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः।

वने व्याघ्री च कैकेयी त्वयां किं न कृतं त्रयम्।।

आत्मानुलोचन

महाराजा का यह अनुभव है कि सन्तान के सम्बन्ध में ईश्वर ने उन्हें सौभाग्यशाली नहीं बनाया, विधाता उनके साथ क्रूर हो गए। उनसे अधिक सौभाग्यशाली तो वन की हवा है जो वनवासी राम के शरीर का स्पर्श कर धन्य हो रही होगी। उनसे अधिक सौभाग्यशाली तो राम की माँ कौशल्या हैं जिनके गर्भ में राम नौ मास तक रहे–कौशले! सारवती खल्वसि। त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः। उनसे अधिक सौभाग्यशाली तो सुमित्रा हैं जिनके पुत्र लक्ष्मण रातदिन रघुकुलतिलक राम के साथ रहते हैं–

तवैव पुत्रः सत्पुत्रो येन नक्तन्दिवं वने।

रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते।।

आशान्वित

अयोध्या नगरी वैभव से परिपूर्ण है, चतुर्दिक सुख–सम्पन्नता बिखरी पड़ी है, लौकिक सम्पदाएँ अपने चरमोत्कर्श पर हैं। महाराज के लिए ये सम्पत्तियाँ व्यर्थ हैं, सुखों का कोई महत्त्व नहीं है, वे तो मृतसदृश हैं, मरणासन्न हैं। काश

एकबार राम उन्हें मिल जाते, उनका आलिंगन कर लेते तो वे जी उठते जैसे कोई अमृत पीकर जी उठे–

सकृत् स्पृशामि वा रामं, सकृत पश्यामि वा पुनः।

गतायुरमृतेनेव जीवामीति मतिमर्म।।

आशा की एक किरण अभी अवशिष्ट है, एक रेखा अभी शेष है। संभव है सुमन्त्र के आग्रह करने से वे तीनों लौट आएँ। सुमन्त्र लौट आए, राम–लक्ष्मण–सीता; नहीं, नहीं राम सीता लक्ष्मण–यह क्रम ठीक रहेगा, इसी प्रकार उन्हें जंगलों में जाना चाहिए, मेरी पुत्र वधू मेरी कुललक्ष्मी। राम–लक्ष्मण के मध्य में वन की भयावहताओं से सुरक्षित रहेगी। सुमन्त्र! तुम इसी क्रम से उनका समाचार कहो–

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये तिष्ठत्वपि मैथिली।

बहुदोषाण्यरण्यानि सनाथैषा भविष्यति।।

सुमन्त्र से न लौटने की सूचना पाकर आशा रूपी एकमात्र सम्बल भी टूट गया, राजा मूर्छित हो गए मानो यमराज ने उन्हें ही लेने को शून्य रथ भेज दिया हो– नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः। उनकी सारी सुखद कल्पनाएँ निश्चेष्ट हो गई, सारे सपने चूर–चूर हो गए, सारी योजनाएँ धरी की धरी रह गईं। शायद यही विधि का विधान था, जो विधिरनतिक्रमणीय है जिसके समक्ष दशरथ जैसे महापुरुष भी विवश हो जाते हैं, जड़वत् हो जाते हैं, इन्द्रियशून्य हो जाते हैं। यही व्यक्ति की अन्तिम दशा है, यहीं आकर व्यक्ति दुःखों से परे होकर परम शान्ति को प्राप्त होता है। अन्ततः दशरथ उसी सद्गति को प्राप्त हुए, माटी का चोला माटी में मिल गया। अब कैकेयी तृप्त हो, वे तो अपनी जीवनयात्रा पूर्णकर चले पितृगणों के सान्निध्य में–

राम! वैदेहि! लक्ष्मण! अहमितः पितृणां सकाशं गच्छामि।

5.2.6 महारानी कौशल्या

परिचय

महारानी कौशल्या कोशलेश महाराज दशरथ की पत्नी, रघुवंश की कुलीन कुलवधू तथा रघुकुल श्रीशोभा राम की पूज्या माँ हैं। उनके तीन अन्य पुत्र हैं–लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न। उनकी दो अन्य सपत्नियाँ हैं–कैकेयी तथा सुमित्रा। प्रतिमा नाटक में कौशल्या के पदार्पण से पूर्व चारों सुयोग्य पुत्रों के मिथिला की चार गुणी कन्याओं से विवाह हो चुके हैं। समग्र परिवार में सुख–शान्ति है, रञ्चमात्र भी ईर्ष्या–द्वेष नहीं, एक का दुखः सबका दुःख है। इसी प्रकार सुख भी व्यक्तिगत नहीं, सबका सुख है, सब उसका आनन्द उठाते हैं। परिवार को इस प्रकार बाँधे रखने का दायित्व होता है गृहिणी का। महारानी कौशल्या रघुवंश की प्रधान महिषी हैं उनके अनुशासन से परिवार नियन्त्रण में हैं, स्वार्थसिद्धि के लिए नहीं, परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से प्रेम व्यवहार तथा हित साधन के सूत्र से सम्बद्ध हैं यथा– भरत ननहिाल से लौटकर प्रथम बड़ी माँ कौशल्य को प्रणाम करते हैं। उन्हें ज्ञात है कि भरत निरपराध हैं, जो कुछ भी विगत दिवसों में घटा है उसमें भरत का कोई दोष नहीं है अतएव वे प्रणाम स्वीकार कर उन्हें हृदय से आशीष दे कहती हैं– भरत! पुत्र! तुम व्यथित हृदय मत होना–जात! निःसन्तापो भव। राम के समान

ही माँ को भरत भी प्रिय हैं, माँ अपने प्रिय पुत्र को दुःखी देख ही नहीं सकती है।

शिष्टाचार प्रिय

समाज में यथायोग्य शिष्ट आचरण अनिवार्य है, उसका प्रदर्शन होना ही चाहिए, न करना अशिष्टता है, अभद्रता है। विशेष रूप से युवजनों को ज्येष्ठों का सम्मान करना ही होगा। कौशल्या की यह विचारधारा अभिव्यक्त होती है उस स्थल पर जब ननिहाल से लौटे भरत उन्हें व सुमित्रा माँ को प्रणाम करते हैं किन्तु अपनी कैकेयी माँ को देखते ही क्रोधित हो खरी–खोटी सुनाते हैं, उनकी भर्त्सना करते हैं। कौशल्या उन्हें रोक कर कैकेयी माँ को प्रणाम करने का आदेश देती हैं– सब प्रकार के शिष्ट व्यवहार जानते हुए भी भरत तुमने अपनी माता को प्रणाम क्यों नहीं किया – जात! सर्वसमुदाचारमध्यस्थः किं न वन्दसे मातरम्। भरत उत्तर देते हैं–मेरी माँ ये स्त्री नहीं, तुम हो, तुम्हें पुनः प्रणाम। तुम गंगा के समान हो, सुमित्रा माँ यमुना के समान, ये मध्य में गंदी नदी जैसी कैकेयी क्यों खड़ी हैं–

गंगायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता

धैर्यशालिनी

कैकेयी को महाराज दशरथ द्वारा दिये गये दो वचनों– 'भरत को राजगद्दी तथा राम को वनवास' की क्षति सबसे अधिक कौशल्या को सहनी पड़ी है। उनके ही पुत्र का राजसिंहासन छिना, उनके ही पुत्र को वनवास मिला, पुत्र के साथ पुत्रवधू भी वन में भटकने को चली गई। दुःखसन्तप्त हृदय से वे स्वयं तो आँसू बहा रही हैं साथ ही अधीर आकुल महाराज को धैर्य बंधा रही हैं, सान्त्वना दे रही हैं– महाराज! अधिक रोकर अपना स्वास्थ्य न खराब करें, वनवास समाप्त होने पर राम, लक्ष्मण, सीता को आप पुनः देखेंगे ही, धन्य है ऐसी धैर्यशालिनी, साहसी माँ – (सरुदितम्) अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्तुम्। ननु सा ता कुमारी महाराजस्य समयावसाने प्रेक्षितव्या भविष्यन्ति।

शान्तस्वभाव

कैकेयी ने कौशल्या के साथ निस्संकोच सपत्नी का व्यवहार किया, उनके हँसते–खेलते परिवार को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। पुत्रद्वय वधू के साथ सुदीर्घकाल के लिए वन को गए, महाराज सन्तापित होकर मृत्यु को प्राप्त हुए, कौशल्या विधवा हुईं, उनका प्रधान महाराज्ञी पद समाप्त हुआ। उन्होंने मूक रहकर सभी दुःख सहे, एक शब्द भी कैकेयी के विरोध में नहीं कहा। मनसा, वाचा, कर्मणा–एक बार भी कैकेयी के साथ दुव्यवहार नहीं किया। क्या उन्हें पुत्र से प्रेम नहीं था या पुत्र को उनसे प्रेम नहीं था– अस्निग्धपुत्रप्रसविनी खल्वहम्। महाराज! सैव मन्दभागिनी खल्वहम्। महाराज! मैं कितनी हतभागिनी हूँ, पुत्र मेरा स्नेह ठुकरा कर वन को चला गया। पति उनके गुणों का हृदय से सम्मान करते थे। मूर्च्छा की तन्द्रा में भी पति को यह स्मरण है कि वे आदर्श पत्नी ही नहीं, उच्चकोअि की गृहिणी हैं, पुत्रवत्सला माँ है। उनकी दूसरी पत्नी कुचक्र का कटु परिणाम भोगने वाली बेचारी यह नारी अपने हृदय की व्यथा न कहकर मुझे ही समाश्वस्त करने में लगी हैं, तब वे कहते हैं–तुम तो अति सौभाग्यशालिनी हो। कौशल्ये! तुमने नौ माह तक राम को अपने गर्भ में धारण किया है। तुम तो संसार को सुख देने वाले, नेत्रों को अच्छे लगने वाले राम की

माँ हो– सर्वजनहृदयनयनाभिरामस्य रामस्य जननी त्वमसि कौशल्या। कौशल्ये! सारवती खल्वसि। त्वया हि खलु रामो गर्भे धृतः।

राम की जन्मदात्री माँ कौशल्या में ममता, त्याग, निस्स्वार्थ सेवा, करुणा, कर्त्तव्य, क्षमा आदि नारीहृदय की सभी वृत्तियाँ पर्याप्त रूप में विद्यमान हैं। वे नारी–जाति में रत्नस्वरूपा हैं, ऐसी श्रेष्ठ नारियाँ युगों में कभी एक बार धरती पर जन्म लेती हैं जो परिवार, समाज और राष्ट्र को स्निग्ध वातावरण का एक मौन सन्देश दे जाती हैं, जिनके स्पर्श से मरणासन्न व्यक्ति का भी सन्ताप शान्त हो जाता है। तभी तो महाराज कहते हैं–

अङ्गं मे स्पृश कौशल्ये! न त्वां पश्यामि चक्षुषा।

रामं प्रति गता बुद्धिरद्यापि न निवर्तते।।

5.2.7 लक्ष्मण

परिचय

महाराजा दशरथ और तृतीय कनिष्ठ महारानी सुमित्रा के पुत्र, राम के अनुज चंचलता और सहज, युवराज लक्ष्मण को नाटक में विस्तार की दृष्टि से अधिक पात्रता नहीं दी गई है किन्तु उनकी पात्रता विस्तृत न होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। वे राम के अनुज, राम के सेवक, राम के प्रिय, राम के सहचर, राम के मित्र, राम के अनुचर, राम के सहयोगी, राम के आज्ञापालक अथवा एक शब्द में कहें तो 'राममय' थे। राम ही उनके सर्वस्व थे, राम पर उनका पूर्ण अधिकार था। इस अधिकार को मान कर राम लक्ष्मण को अपने सम्पूर्ण स्नेह का पात्र स्वीकार कर सर्वदा उनका ध्यान रखते थे। अकेले वन जाने को उद्यत राम को लक्ष्मण यही स्मरण कराते हैं कि आपकी प्रत्येक वस्तु पर मेरा स्वभावतः अधिकार–अर्द्धभाग तो बनता ही है, फिर वल्कल में सहभागी बनाते में लोभ क्यों? उसमें भी मुझे अर्द्धभाग चाहिए ही–

निर्योगाद् भूषणान्माल्यात् सर्वेभ्योऽर्ध प्रदाय मे।

चिरमेकाकिना बद्धं चीरे खल्वसि मत्सरी।।

कृपापात्र

महाकवि भास ने प्रतिमानाटक के पात्र लक्ष्मण के चरित को परस्पर विरोधी गुणों से सम्पृक्त किया है। एक ओर तो लक्ष्मण त्याग, भ्रातृप्रेम, सम्मान आदि रघुकुल के योग्य गुणों से सम्पन्न राजकुमार हैं, दूसरी ओर अन्याय, अधिकार हनन आदि कारण विद्यमान होते ही उनका रोष, क्रोध, वीरता, उत्साह आदि गुण अभिव्यक्त होने लगते हैं। प्रायः उनका आचरण शिष्ट और आत्मविश्वास से भरा होता है तथापि राम पर आँच आने का आभास होते ही यह आचरण उग्र और उद्धत हो जाता है। कारण एकमात्र है–राम के प्रति अपार भक्ति, भक्ति की यह शक्ति उन्हें मुखर बनाती है, वे स्पष्ट वार्ता करते हैं–आर्ये! आप अग्रज की अकेले ही वनवास काल में सेवा करने का श्रेय लेना चाहती हैं। ठीक, दाएँ चरण की सेवा आप करिएगा और बाँए चरण की सेवा मैं करूँगा किन्तु वल्कल पहनने का अवसर मुझसे न छीनिए। अन्ततः सीता राम से कहती हैं– इन्हें वल्कल पहनने का अवसर दे दीजिए अन्यथा इन्हें अपार दुःख होगा–

लक्ष्मण– आये! गुरोर्मे पादशुश्रूषां त्वमेकां कर्तुमिच्छसि?

तवैव दक्षिणः पादो मम सव्यो भविष्यति।।

सीता– दीयतां खल्वार्यपुत्रः। संतप्ये सौमित्रिः।

सहजक्रोधी

लक्ष्मण के शान्त जल जैसे स्वभाव में आपत्ति का एक लघु कंकड़ भी रोष की लहरें उठाने को पर्याप्त है। कैकेयी के दो वचन–राम का वनवास तथा भरत को राज्यसिंहासन, पिता की विवशता, राम की गम्भीर–धीर शान्ति उन्हें उत्तेजित कर आक्रोश प्रकट करने को बाध्य कर देती है। उनकी क्रुद्ध वाणी–क्रुद्ध आकृति रामको भी आश्चर्य चकित करती है। इस समुद्र की तरह गम्भीर लक्ष्मण को क्यों इतना क्रोध आ गया–अक्षोभ्यः क्षोभितः केन लक्ष्मणो धैर्यसागरः। राम शान्त रहे परन्तु धैर्यसागर लक्ष्मण का धैर्य कैकेयी के दोनों वचनों के गर्भ में छिपी राजनीति की ईर्ष्या भावना को जान चुका है। यह दया दिखाने का नहीं, धनुष उठाने का अवसर है। यथासमय क्रोध न करने वाला सर्वत्र तिरस्कृत होता है। स्त्रीजाति सर्वथा–सर्वदा कुटिल है, धरती पर उसे रहने का अधिकार नहीं। मैं धरती को स्त्रीशून्य करने का प्रण लेता हूँ क्योंकि आज तक स्त्री ने ही हमारे कुल को नष्ट किया है–

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनु स्पृश मा दया

स्वजननिभृतः सर्वोप्येवं मृदुः परिभूयते।

अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो

युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम्।।

आत्माभिमानी लक्ष्मण का क्रोध उचित था, परम्परागत ज्येष्ठ पुत्र को राज्य से वंचित कर दिया गया, पिता मरणसन्न हैं, यह क्षमा का समय नहीं है, विवाहशुल्क क्या इस रूप में अनुचित प्रयुक्त होता है, कैसे शान्त हों लक्ष्मण। मानों अपने क्रोध से वे तीनों लोकों को जलाकर भस्म कर देंगे–

त्रैलोक्यं दग्धुकामेव ललाटपुटसंस्थिता।

भृकुटिर्लक्ष्मणस्यैषा नियतीव संस्थिता।।

दर्शक/पाठक कह सकते हैं कि लक्ष्मण वीर हैं किन्तु उनकी वीरता अमर्यादित है, असन्तुलित है। यह आक्षेप लक्ष्मण पर सिद्ध होने के पूर्व ही राम का आदेश, सीता का परामर्श उनके विवेक को जागृत कर देता है। सीता कहती हैं– भाई! यह दुःख का, परिस्थितियों का चिन्तन कर समाधान खोजने का समय है, अभी धनुष उठाने की चर्चा मत कीजिए। राम समझाते हैं– भाई! राज्य भरत को मिले या मुझे, तुम्हारे भाई हम दोनों ही है। यदि तुम्हारे कहने से धनुष उठा लूँ तो पिता–माता–भरत तीनों में से किसको मारने का पास करूँ। राम और सीता लक्ष्मण के आराध्य हैं, उनका परामर्श लक्ष्मण के सिर–माथे पर, एक क्षण में लक्ष्मण की समग्र उग्रता मर्यादित हो जाती है। वे शान्त स्वर में कहते हैं–राज्य का लोभ किसे है, मैं तो भाई के चौदह वर्ष के वनवास का विरोधी हूँ–

यत्कृते महति क्लेशे राज्ये मे न मनोरथः।

वर्षाणि किल वस्तव्यं चतुर्दश वने त्वया।।

पितृप्रिय

महाराज दशरथ भी लक्ष्मण के राम प्रेम से परिचित हैं। परम दुःख की दशा में होने पर भी उन्हें यह आभास है कि सर्वगण सम्पन्न लक्ष्मण ने भ्रातृप्रेम के समक्ष पितृप्रेम को तिरस्कृत कर दिया, मुझे रोता छोड़कर वन को चला गया। पुत्र वियोग में आँसू बहाते राजा दशरथ प्रिय रानी सुमित्रा को पहचानने में असमर्थ हैं किन्तु उन्हें यह स्मरण है कि तुम्हारा ही सुपुत्र वन में रात–दिन रघुकुलतिलक राम का साथ दे रहा है–

तवैव पुत्र सत्पुत्रों येन नक्तन्दिवं वने।

रामो रघुकुलश्रेष्ठश्छाययेवानुगम्यते।।

लक्ष्मण को भी पिता की दयनीय दशा ज्ञात है। वल्कलवस्त्रों में अपनी सन्तानों को देखकर पिता का दुःख बढ़ेगा ही, यह सोचकर वे गमन प्रणाम के लिए भी पिता के समक्ष जाने को प्रस्तुत नहीं होते हैं– चरीमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम्। पिता के वचन की रक्षा के लिए, पिता के प्रिय राम अकेले नहीं हैं– यह सिद्ध करने के लिए राम रूपी सूर्य से रहित दिवस के समान चौदह वर्ष के लिए वन चले जाते हैं–

सूर्य दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।

मधुरभाषी

महाकवि भास ने लक्ष्मण के चरित्र में सामयिक गुणों का सम्मिश्रण किया है। अवसर उपस्थित होने पर वे क्रोध करते हैं, अवसर उपस्थित होने पर स्नेह से भी सराबोर हो जाते हैं। विमाता कैकेयी के प्रति उनके मन में रोष है परन्तु भरत तो निर्दोष हैं उससे ईर्ष्या कैसी? सचमुच भरत लक्ष्मण के प्रेमपात्र हैं। वनगमन के समय भरत मातुलगृह गये थे अतः भेंट न हो सकी, मिले हुए वर्श बीत गए। भरत मिलने के लिए चित्रकूट वन आये तो लक्ष्मण उन्हें सहसा पहचान न सके किन्तु बारम्बार उनके मन में यह विचार आया कि स्वर से, आकृति से भाई के समान यह कौन आया है? स्वर ऐसा सरस, मधुर, गम्भीर, स्पष्ट, शुद्ध, ग्राह्य और सुखद है कि भाई होने का विश्वास दिलाता है। आकृति ऐसी चाँद के समान आकर्षक, वक्षस्थल ऐसा पिता के समान विशाल, व्यक्तित्व ऐसा तेजस्वी और द्युतिमान् है कि इन्द्र अथवा विष्णु होने का भ्रम उत्पन्न करता है– नरपतिरयं देवेन्द्रो वा स्वयं मधुसूदनः।

परिचय प्राप्त होते ही वे भरत को अपने आशीर्वाद से सिंचित कर ज्येष्ठ भ्रातृत्व को सिद्ध करते हैं–वस्त! स्वस्ति, आयुष्मान् भव। ... भव जगति गुणानां भाजनं भ्रातिजानाम्। समयानुकूल मधुर भाषण में भास के लक्ष्मण पर्याप्त दक्ष हैं वन जाने के लिए राम से सीता का पक्ष लेना लक्ष्मण का ही साहस है। इस पक्ष लेने के क्रम में वे अनेक उद्धरण देते हुए यह सिद्ध कर देते हैं कि पत्नी का एकमात्र जीवनाधार पति होता है, अतः सीता को भी राम के साथ जाना ही चाहिए, यही स्त्रीधर्म है–व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः।

राम लक्ष्मण के हृदय मन्दिर में प्रतिष्ठित हैं। लक्ष्मण का समग्र जीवन राममय है, लक्ष्मण की दिनचर्या राम के लिए है, लक्ष्मण के क्रियाकलाप राम के लिए है। उनकी एक–एक साँस में राम बसे हैं। उनका सपना था–राम को अयोध्या के राजा रूप में देखना, आर्यावर्त को एक सुयोग्य राजा मिले–यही उनकी परम अभिलाषा थी और जीवन का उद्देश्य भी। वह इच्छा आज पूरी हुई, जीवन सफल हुआ, आज आर्यावर्त के राजा रूप में प्रजा राम को

सिंहासनारूढ़ देखेगी, आज राम अयोध्या की राजसभा में उसी प्रकार द्युतिमान् होंगे जैसे आकश में नक्षत्रमण्डल के साथ चन्द्रमा–

अद्येव पश्यन्तु च नागरास्त्वां चन्द्र सनक्षत्रमिवोदयस्थम्।

5.2.8 कैकेयी

परिचय

संसार की सबसे हतभागिनी माँ, आर्यावर्त की सर्वाधिक कलंकिनी स्त्री कैकेयी इतिहास में युग–युग तक कुख्यात रहेगी। आर्यावर्त के सैद्धान्तिक वातावरण में, शिष्ट–शान्त, श्रेष्ठ रघुवंश में कैकेयी के कुकृत्यों से जो उथल–पुथल मची, उससे भारत की संस्कृति सदा प्रभावित रहेगी, काल उसे कभी विस्मृत नहीं कर पाएगा। सत्य है जिस देश में नारी जाति अपने त्याग, ममता, वात्सल्य, आध्यात्मिकता, निस्स्वार्थ सेवा भावना आदि गुणों के लिए पूजी जाती हो, जिस देश में नारी जाति अपने आदर्शों से विश्व के लिए प्रतिमान बनती हो; उसी भारत देश में कैकेयी राज्यलिप्सा से अत्यन्त स्वार्थी होकर अपनी कुटिल मनोवृत्ति का परिचय दे, कौन प्रशंसा करेगा ऐसी ऐश्वर्यलोभी नारी की। यह भी सत्य है कि प्रातः स्मरणीय सीता, सावित्री जैसी महान् महिलाओं के देश में कैकेयी नाम की स्त्री, कैकेयराज की पुत्री, अयोध्या नरेश महाराजा दशरथ की प्रियतमा रानी के रूप में सर्वसाधारण के मध्य जानी जाती है। महाराजा दशरथ की तीन रानियों से उत्पन्न पुत्र–राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न उनके अपने ही पुत्र थे। भरत की माँ होने पर भी राम के प्रति उनकी ममता सर्वाधिक थी। पराक्रमी पति की पत्नी और रघुकुलतिलक राम की माँ के रूप में वे सब प्रकार से सन्तुष्ट थीं–

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति।।

पृष्ठभूमि

प्रतिमानाटक की कैकेयी के लिए अकार्य करने का कोई कारण नहीं था तथापि उसने अकार्य किया क्योंकि संभवतः उसका दुर्भाग्य प्रबल था, संभवतः उसे आप्रलयान्त अपयश की भागी होना था। कैकेयी ने 'विनाशकाले विपरीबुद्धिः' से (राम के राज्याभिषेक सम्पन्न करने का समाचार सुन) विवाहशुल्क में प्रतिज्ञात दो वरदान राजा से माँग लिए। प्रथम से भरत का राजतिलक, द्वितीय से राम का चौदह वर्ष का वनवास। राजा को विवश परिस्थिति में दोनों इच्छाएँ पूर्ण करने की स्वीकृति देनी पड़ी। राम वन को लक्ष्मण और सीता के साथ चले गए। राजा यह दुःख न सह परलोकगामी हुए। भरत को ननिहाल से राज्यभार सौंपने के लिए बुलाया गया। अयोध्या पहुँचने से पूर्व भरत को दोनों हृदयविदारक सूचनाएँ मिल गईं। माँ के कृत्य से लज्जित वे अयोध्या आए, माँ को माँ मानने से मना कर दिया। उन्हें ज्ञात हो गया था कि माँ ने रघुवंश को अपयश की गठरी से कलंकित कर दिया, आर्य रामको वल्कलधारी बना दिया, महाराज को मरने के लिए विवश किया, सारी अयोध्या को रूलाया, लक्ष्मण को मृग का सहवासी बनाया, पुत्रप्रणायिनी माताओं को शोकसागर में डुबोया, पुत्रवधू सीता को जंगल में भटकने को बाध्य किया औरा अपने को भी धिक्कार का पात्र बनाया। यह स्त्री मेरी माँ नहीं है, में इसे तो प्रणाम भी नहीं कर सकता। इसने दुष्ट परिजनों के बहकावे में आकर शील,

स्नेह का परित्याग कर पुत्रों के लिए अहितकर कार्य किए। माँ से क्रुद्ध भरत ने एक समुचित उद्घोषणा की—जो स्त्री अपने स्वामी से द्रोह करे, वह पुत्रवती होने पर भी माँ कहलाने की अधिकारिणी नहीं है—

लोकेऽपूर्वं स्थापयाम्येव धर्मं भर्तृद्रोहादस्तु माताऽप्यमाता।

कलंक ऐसा कि पुत्र ने शाप देकर ममत्व से वंचित कर दिया, उस पुत्र ने जिसके लिए उसने विशेष ममत्व का प्रदर्शन कर स्वयं को कलंकित कर लिया था। एक माँ का हृदय क्या सचमुच इतना कठोर हो सकता है कि सन्तानों को वल्कल वस्त्र पहने देखकर भी द्रवित न हो—अहो धात्रा सृष्टं भवति! हृदयं वज्रकठिनम्। ऐसी निर्दयी राज्यलोभी माँ का राजतिलक होना चाहिए, पुत्र भरत का नहीं। भरत को माँ का राम से छलपूर्वक छीना गया राज्याधिकार 'पुत्रको मे राजा भवत्विति' नहीं चाहिए। भरत ने राज्याभिषेक का परित्याग कर दिया। कैकेयी की 'राजमाता' बनने की योजना असफल हो गई।

चरित्रोकर्ष

प्रतिमानाटक की कैकेयी अपनी एक त्रुटि के कारण निरन्तर मिलने वाले अपमान और तिरस्कार से आहत थी। कवि भास ने यहाँ अवसर पाकर कैकेयी के चरित्र का उत्कर्ष किया। क्या रहस्य था कैकेयी की कुटिल, अकरूण योजना का? पुत्र सुनो, महाराज शापित थे, पुत्र वियोग उनके भाग्य में था। प्रियराम के वनगमन से ही पुत्रशोक के कारण शाप से मुक्ति सम्भव थी। राम का वनवास केवल चौदह दिवस का नियोजित था किन्तु मानसिक असन्तुलन के कारण 'दिवस' के स्थान पर 'वर्ष' शब्द मुख से निकल गया। इस समग्र कथाचक्र को सम्मानित ऋषिगण भी जानते हैं— जात! त्वं जानासि महाराजस्य शापम्। एतन्निमित्तमपराधे मां निक्षिप्य पुत्रको रामो वनं प्रेषितः, न खलु राज्यलोभेन। अपरिहरणीयो महर्षिशापः पुत्रविप्रवासं विना न भवति। चतुर्दशादिवसा इति वक्तुकामया पर्याकुलहृदयया चतुर्दशवर्षाणीत्युक्तम्।

माँ—पुत्र का पारस्परिक मनोमालिन्य दूर हुआ, पुत्र ने तीनों लोकों को साक्षी कर माँ को निर्दोष घोषित कर क्षमा माँगी, माँ ने ममत्वभरे हृदय से पुत्र को क्षमा किया, लोक ने भी निरपराधिनी कैकेयी को सम्मान की दृष्टि से देखा।

समय का चक्र निरन्तर गति से चलता ही रहा, राम लंका विजय कर सीता को साथ लेकर, चौदह वर्षावधि पूर्ण कर अयोध्या को लौटे। अपराधबोध से ग्रस्त कैकेयी ने स्वयं राम के राज्याभिषेक का आयोजन किया, अयोध्या के राजसिंहासन पर राम आरूढ़ हुए। कैकेयी हृदय से अकूत आनन्द अनुभूत कर पुत्र की विजयघोषणा से आह्लादित हुई— अम्महे! पुत्रस्य में विजयघोषणा वर्तते।

एक यथप्रश्न लोक के मन को आज भी व्यथित करता है— कैकेयी ने अपना सुखी संसार अपने हाथों नष्ट—भ्रष्ट किया, पति की हन्ता बन स्वयं वैधव्य को आमन्त्रित किया, पुत्र की उपेक्षा का पात्र हुई, कुलनाशक कलंकिनी की प्रताड़नाओं से क्षुब्ध की गई। विमाता ने कैकेयी के प्रारब्ध में ही क्यों इस घटनाक्रम का माध्यम बनना लिखा? यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता। यदि महाकवि भास ने महाराज दशरथ के शाप विमोचन का प्रसंग लाकर महारानी कैकेयी के ऊपर लगे आरोपों को निर्मूल न सिद्ध किया होता। बात यहीं समाप्त नहीं होती, ज़रा सा आर्यावर्त के इतिहास में झांकना अनिवार्य प्रतीत होता है। यह वह समय था जब राक्षस संस्कृति आर्य संस्कृति को निगल रही थी, देवगण राक्षसों से पराजित हो चुके थे। अब धरती पर साम्राज्य स्थापित करना

राक्षसजाति का एकमात्र उद्देश्य था। इस निकृष्ट संस्कृति के विनाश और आर्य संस्कृति की स्थापना के लिए ही राम ने धरा पर अवतार लिया था। इस महत्त्वपूर्ण, जनहितकारी कार्य की सिद्धि में किसी का तो बलिदान होना ही था। कैकेयी में ही इतना साहस था कि सारा अपमान, सारे लांछन सहकर राम को विजययात्रा पर भेजकर अपरोक्ष रूप से आर्य संस्कृति की रक्षा का माध्यम बनीं। आज आर्यावर्त को कैकेयी के अपराध में छिपी राष्ट्र कल्याण की भावना को समक्ष रखकर उसका ऋणी होना ही होगा, उसे धन्यवाद देना ही होगा।

5.3 बोध प्रश्न

1. प्रतिमानाटक में वर्णित राम के चरित्र का चित्रण कीजिए।
2. प्रतिमानाटक में वर्णित सीता के चरित्र का चित्रण कीजिए।
3. प्रतिमानाटक में वर्णित भरत के चरित्र का चित्रण कीजिए।
4. प्रतिमानाटक में वर्णित लक्ष्मण के चरित्र का चित्रण कीजिए।
5. प्रतिमानाटक में वर्णित कैकेयी के चरित्र का चित्रण कीजिए।

संस्कृत नाटक
MAST-107

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड – 'ख'

वेणीसंहार (महाकवि भट्‌टनारायण विरचित)

इकाई – 1 109
नाटककार महाकवि भट्‌टनारायण एवं नाटक का परिचय

इकाई – 2 121
प्रथम अङ्क के आरम्भिक दस श्लोकों का संस्कृत अनुवाद

इकाई – 3 127
प्रथम एवं द्वितीय अङ्क के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या, अन्वय तथा अनुवाद

इकाई – 4 151
तृतोय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ अङ्क के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या, अन्वय तथा अनुवाद

इकाई – 5 213
प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

TESLA-013

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो0 के0एन0 सिंह	कुलपति, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो. विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र	आचार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. सोमनाथ नेने	आचार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ. राजेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर	आचार्य विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
डॉ. अच्छे लाल	सहायक आचार्य उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. स्मिता अग्रवाल	शैक्षणिक परामर्शदाता, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो. के.जे. नसरीन	आचार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ. स्मिता अग्रवाल	शैक्षिणक परामर्शदाता उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज

लेखक

डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव	प्राचार्या आर्य कन्या पी0जी0 कॉलेज, प्रयागराज
डॉ. आनन्द कुमार श्रीवास्तव	प्राचार्य सी0एम0पी0पी0जी0 कालेज, प्रयागराज

समन्वयक

सितम्बर, 2023 (मुद्रित)

ISBN- 978-93-83328-33-8

प्रस्तुत पाठ्यसामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के द्वारा स्वयं उपलब्ध करायी गयी है विश्वविद्यालय इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक - कुलसचिव विनय कुमार, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज-2023

मुद्रक - के0 सी0 प्रिन्टिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा - 281003.

TESLA-013

MAST-107/108

इकाई-1

नाटककार महाकवि भट्टनारायण एवं नाटक का परिचय

इकाई की रुपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 नाटककार भट्टनारायण का परिचय

1.2.1 भट्टनारायण का जीवन परिचय

1.2.1.1 वैयक्तिक परिचय

1.2.1.2 भट्टनारायण का समय

1.3 वेणीसंहार नाटक : एक परिचय

1.3.1 नाटक का नामकरण

1.3.2 कथावस्तु का मूलाधार

1.3.3 वेणीसंहार का नायक एवं प्रतिनायक

1.3.4 नायिका

1.3.5 रस

1.3.6 काव्य सौन्दर्य एवं समीक्षा

1.4 पात्र-परिचय

1.5 बोध प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

परास्नातक संस्कृत (MAST) के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत महाकवि आदि का अध्ययन करना है। इस नाटक के अध्ययन के उपरांत नाटक तथा नाटककार से सम्बन्धित समस्त ज्ञान अर्जित कर पाएँगे।

परास्नातक संस्कृत (MAST) पाठ्यक्रम के अन्तर्गत स्व-अध्ययन सामग्री में आपको महाकवि नारायण भट्ट रचित वेणीसंहार नामक नाटक का अध्ययन करना है। नाटक का अध्ययन करने से पूर्व आप नाटककार के जीवनवृत्त, रचना, भाषाशैली, नाटकीय विशेषताओं तथा नाटक के स्रोत का परिचय पाना चाहेंगे। आपकी यह भी जिज्ञासा होगी कि जो नाटक आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं उसमें कितने पुरुष पात्र

TESLA-013

तथा कितने स्त्रीपात्र हैं? उसका 'वेणीसंहार' कवि ने यही शीर्षक क्यों दिया है? उसके कतिपय आरम्भिक श्लोकों का **अनुवाद** संस्कृतभाषा में किस प्रकार होगा? उसके सम्पूर्ण कथानक को निबद्ध करने वाले षडङ्कों में श्लोकों का हिन्दी **अनुवाद** तथा **व्याख्या** का प्रारूप क्या होगा? अन्वय की सहायता से अर्थ का अधिगम तथा **व्याख्या** की सहायता से कवि के भाव का निहित विचार क्या होगा? नाटक के पात्रों का नाट्य कथावस्तु में, कथा संवर्धन में क्या योगदान है? पात्रों के चरित्र की विशिष्टताओं से नाटक की प्रतिबद्धता किस सीमा तक सफल होती है? आदि अगणित जिज्ञासाएँ आपके मस्तिष्क को उद्वेलित करेंगी।

आपके जिज्ञास मन को शान्त करने के लिए आपकी शंकाओं के समाधान के लिए, आपके प्रश्नों के उत्तर देने के लिए एक से पाँच इकाई तक ग्रन्थ को सरल कलेवर में प्रस्तुत किया जा रहा है। विश्वास है ग्रन्थ का कथानक आपके इस पुस्तक के माध्यम से सरलतया ग्राह्य होगा। प्रत्येक इकाई के अन्त में आपके अध्ययन को परिपक्व करने के लिए अभ्यासार्थ प्रश्न दिए जा रहे हैं। आपसे अपेक्षा है कि समस्त इकाईयों का परिश्रमपूर्वक स्वाध्याय करें तथा अधिकतम अंक अर्जित कर परीक्षा उत्तीर्ण करें।

1.1 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् वेणीसंहार नाटक का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- नाटक का परिचय प्राप्त करेंगे।
- नाटककार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- नाटक के कथानक एवं पात्रों के चरित्र को जान पाएँगे।

1.2 नाटककार भट्टनारायण का परिचय

1.2.1 भट्टनारायण का जीवन परिचय

किसी भी कवि या रचनाकार के विषय में जानने के मात्र दो ही विकल्प हैं– पहला अन्तःसाक्ष्य एवं दूसरा बहिः साक्ष्य।

अन्तः साक्ष्य का तात्पर्य कवि द्वारा अपने विषय में सम्पूर्ण जानकारी देना। बहिःसाक्ष्य से तात्पर्य है कि दूसरों के दिये गये साक्ष्यों के आधार पर किसी भी कवि या लेखक के विषय में जानना। भट्टनारायण ने अपने नाटक वेणीसंहार में अपने विषय में सूत्रधार से मात्र इतना ही कहलवाया है ''यदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं वेणीसंहार नाम नाटकम्।'' इसके अतिरिक्त कहीं भी अपने लिये उन्होंने नहीं लिखा है।

संस्कृत कवियों में यद्यपि अपने विषय में लिखने की परिपाटी चली आ रही है किन्तु भट्टनारायण के विषय में उनके द्वारा लिखित सम्यक् साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। इस स्थिति में बाह्य साक्ष्यों का सहारा लेना ही एकमात्र विकल्प बचता है। बहिः साक्ष्य में कवि विषयक निम्नाङ्कित तथ्य प्राप्त होते हैं–

1.2.1.1 वैयक्तिक परिचय

भट्टनारायण कन्नौज के रहने वाले शाण्डिल्य गोत्रीय ब्राह्मण थे। श्री लाल मोहन विद्यानिधि द्वारा लिखित बँगला भाषा की पुस्तक में कहा गया है कि शाण्डिल्य गोत्रीय भट्टनारायण के सोलह पुत्र थे। इन सोलहों के निवास ग्रामानुसार उपाधिबन्ध कुसुमादि थी किंवदन्ती है कि बंगाल के सेनवंश के प्रवर्तक आदि शूर के द्वारा कन्नौज से, वैदिक धर्म के प्रचारार्थ बुलाए गये पाँच ब्राह्मणों में से एक भट्टनारायण थे। ठाकुर (या टैगोर) वंशावलि में भट्टनारायण को इस वंश का आदिपुरुष बताया गया है।

वेणीसंहार की प्रस्तावना में की गयी विष्णु, शिव और कृष्ण की स्तुति तथा पहले अङ्क के 23वें और 25वें श्लोक भट्टनारायण के वैष्णव होने के साथ-साथ शिवभक्त होने का भी प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर रचित बंगला पुस्तक 'बहु विवाह' के अनुसार वंग (गौड) देशीय आदि शूर ने पुत्रेष्टि यज्ञ-सम्पादनार्थ अधिकारी ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया, किन्तु इस देश के ब्राह्मणों को वेद विहित कर्मों के अनुष्ठान में असमर्थ जानकर शक सम्वत् 999 में कान्यकुब्ज के राजा से 5 आचारपूत ब्राह्मणों को भेजने के लिये प्रार्थना की। राजा ने (1) शाण्डिल्यगोत्रीय भट्टनारायण (2) काश्यप गोत्रीय दक्ष (3) वात्स्य गोत्रीय छान्दड (4) भारद्वाज गोत्रीय श्रीहर्ष एवं (5) सावर्णगोत्रीय वेदगर्भ–इन सभी को भेजा। ये सभी सस्त्रीक, सभृत्य और अश्वारोही होकर गौड़ देश में आये। इस बात की पुष्टि में विद्यासागर जी ने ''कृष्णचन्द्रं चरित'' ग्रन्थ का उदाहरण दिया–

भट्टनारायणो दक्षो वेदगर्भोऽथ छान्दडः।
अथ श्री हर्षनामा च कान्यकुब्जात्समागताः।

राजा के अत्यन्त आग्रह पर ये पाँचों ब्राह्मण गौड़ देश में ही (राजा द्वारा दिये गये) पञ्चकोटि, कामकोटि, हरि कोटि, कङ्कग्राम और वटग्राम नामक ग्रामों में रहने लगे। राजा ने इन्हें अपना सभा पण्डित बना लिया था। शनैःशनैः सम्पत्ति बढ़ जाने पर आगे चलकर भट्टनारायण स्वयं बंगाल में राजवंश के प्रवर्तक बन गये।

वेणीसंहार के टीकाकार जगन्मोहन तर्कालङ्कार के अनुसार भट्टनारायण के पिता का नाम भट्ट रामेश्वर था जो पाञ्चाल जनपद में रहते थे।

'क्षितीशवंशावलीचरित', 'रागावली', 'वंगराजघटक' इन सभी के अनुसार गौड़ देशीय राजा आदिशूर ने शाण्डिल्य गोत्रीय कान्यकुब्जी भट्टनारायण को अन्य चार ब्राह्मणों सहित एक विशेष वैदिक अनुष्ठान के लिये कन्नौज से गौड़ देश के लिये आमन्त्रित किया था।

हरिमोहन प्रामाणिक के अनुसार आदिशूर के समक्ष उपस्थित होने पर भट्टनारायण ने एक श्लोक में आशीर्वाद के साथ अपना परिचय भी दिया था। इस श्लोक के अनुसार गौड देश में आने के पूर्व ही इनका 'वेणीसंहार' ग्रन्थ प्रसिद्ध हो चुका था। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से यह प्रमाणित होता है कि भट्टनारायण एक नैष्ठिक तथा विविध शास्त्रों में निष्णात ब्राह्मण थे। वह दर्शन, नीति, नाट्य, धर्मशास्त्र, व्याकरण, काव्य, वेद आदि शास्त्रों में पारङ्गत थे।

TESLA-013

'क्षितीश वंशावली चरितम्' तथा 'वंगराज घटक' में जिस भट्टनारायण का वर्णन मिलता है वह और वेणीसंहार के रचयिता भट्टनारायण क्या दोनों एक ही व्यक्ति थे?

यह एक जटिल और अनसुलझा प्रश्न है क्योंकि भट्टनारायण ने वेणीसंहार में अपने आश्रयदाता के विषय में कुछ भी नहीं लिखा और कोई भी व्यक्ति सरलता से अपना जन्मस्थान नहीं छोड़ता। इस प्रश्न का उत्तर हमें डॉ. गजेन्द्र गडकर के मत को स्वीकार करने पर मिल जाता है–

सम्भवतः उस समय बौद्ध धर्म का प्रभाव अधिक होने के कारण वैदिक धर्मानुयायी ब्राह्मण धार्मिक उत्पीड़न से परेशान होकर कन्नौज देश का त्याग कर के बंग देश में जाकर बस गये। उन्हीं में से एक भट्टनारायण भी थे। कवि के द्वारा नाटक की प्रस्तावना में 'कवेर्मृगराजलक्ष्मणः' लिखने से लोग भट्टनारायण को क्षत्रिय जाति का होने का सन्देह करते हैं परन्तु इसका कविसिंहोपाधिकारी अर्थ करने से यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो जाती है। अतः भट्टनारायण की 'कवि मृगराज' उपाधि का सम्बन्ध जाति से न मानकर गुण से मानना अधिक तर्कसङ्गत होगा। दूसरी बात 'क्षितीशवंशावली चरितम्' ग्रन्थ में सर्वप्रथम भट्टनारायण का वर्णन होने के कारण इन्हें क्षत्रिय नहीं माना जा सकता। इसी ग्रन्थ में क्षितीश को भट्टनारायण का पिता कहा गया है। यहीं अनेक बार भट्टनारायण को ब्राह्मण ही कहा गया है। 'भट्ट' शब्द से कवि का जन्म ब्राह्मण जाति में हुआ मानना चाहिए। 'वेणीसंहार' नाटक में कवि ने अपने ब्राह्मणत्व की मर्यादा सुरक्षित रखी है। कर्ण तथा अश्वत्थामा विवाद में भी अश्वत्थामा नामक ब्राह्मण का ही समर्थन किया है। इसी नाटक के तृतीय अङ्क में अनेक क्षत्रियों का रक्त पान करने वाले रुधिरप्रिय राक्षस ने द्रोणाचार्य के रक्त को ब्राह्मण-रुधिर होने के कारण अपेय बताया है।

जब राक्षसी द्रोणाचार्य के रक्त को पीने का प्रस्ताव राक्षस के समक्ष रखती है तो वह, ब्राह्मण-रुधिर को 'कण्ठदाहक' कहकर उस प्रस्ताव की उपेक्षा करता है। यह प्रकरण भी ब्राह्मणजाति की महत्ता के साथ-साथ कवि के ब्राह्मण होने का भी सङ्केतक है। इसके अतिरिक्त कवि ने (ब्राह्मण) अश्वत्थामा से कहीं भी शस्त्र ग्रहण का उल्लेख नहीं किया है। अश्वत्थामा से शस्त्र त्याग कराने में सम्भवतः कवि का लक्ष्य कौरवों के पराभव के साथ-साथ शस्त्रधारण करते हुए अश्वत्थामा का युद्ध में पराजित होना ब्राह्मण जाति की अप्रतिष्ठा होती।

अतः शस्त्र त्याग कराकर नाटककार ने दोनों पक्षों का निर्वाह किया है। त्यागे हुए शस्त्र के पुनः ग्रहण का निषेध कवि ने आकाशवाणी के द्वारा करवाया है। पञ्चम अङ्क में पुनः मञ्च पर अश्वत्थामा का प्रवेश दिखाया गया है, किन्तु न ही शस्त्र ग्रहण किया है और न ही युद्ध किया।

1.2.1.2 भट्टनारायण का समय

कवि के समय निर्धारण के लिये भी बाह्य साक्ष्यों का सहारा लेना पड़ता है।

आचार्य मम्मट (1100 ई. के आसपास) ने अपने ग्रन्थ काव्य प्रकाश में 'वेणीसंहार' के कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं।

धनञ्जय ने 'दशरूपक' में रसों, सन्ध्यंगों' के उदाहरण के रूप में वेणीसंहार के उदाहरण दिये हैं।

आनन्दवर्धन (840 से 870 ई. के मध्य) ने 'ध्वन्यालोक' में रौद्ररस के उदाहरण में वेणीसंहार के (1/21 और 3/32) श्लोक उद्धृत किये हैं।

आचार्य वामन (8वीं या नौंवी शताब्दी के मध्य) ने ''काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति'' ग्रन्थ में सहोक्ति अलङ्कार का स्वरूप लिखकर वेणीसंहार 5वें अङ्क का श्लोक उद्धृत किया है। दूसरी ओर सातवीं शताब्दी के पूर्व के भामह, बाण, सुबन्धु आदि किसी भी काव्यकार ने भट्टनारायण का नामोल्लेख या रचना का उल्लेख अपने ग्रन्थों में नहीं किया है।

एम. कृष्णमाचार्य ने वेणीसंहार कर्ता भट्टनारायण का समय 8वीं तथा 9वीं शताब्दी के मध्य स्वीकार किया है। अबूफ़ज़ल द्वारा दी गयी बंगाल के राजाओं की सूची के अनुसार आदिशूर बल्लाल सेन (13वीं शताब्दी) के, पूर्वजों में 22वाँ था। इस सूची के आधार पर कुछ विद्वानों ने 22 पूर्वजों के लिये अनुमानतः 300 वर्षों का समय देकर आदि शूर को 8वीं–9वीं शताब्दी में माना है।

लाजपतराय द्वारा लिखित ''भारतवर्ष का इतिहास'' में 700 ई. के लगभग कन्नौज से 5 ब्राह्मणों तथा 5 कायस्थों को बुलाये जाने का वर्णन किया है। यद्यपि इन्होंने आदि शूर के द्वारा आमन्त्रित किये गये ब्राह्मणों का नामोल्लेख नहीं किया है, किन्तु अन्य विद्वानों के द्वारा किये गये साक्ष्यों के अनुसार कान्यकुब्ज से आने वाले उन 5 ब्राह्मणों में भट्टनारायण का नाम है। इसका अर्थ यही हुआ कि यदि 5 ब्राह्मणों में भट्टनारायण भी थे तो निश्चित ही इनका समय 7वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं 8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बीच में ही माना जाना चाहिए।

ए. बी. कीथ ने स्वरचित ''संस्कृत ड्रामा'' में वामन तथा आनन्दवर्धन के ग्रन्थों में वेणीसंहार नाटक के उदाहरणों से निष्कर्ष निकाला है कि भट्टनारायण का समय 800 ईस्वी से पूर्व था। बंग देश में जिस राजा आदिशूर के यहाँ भट्टनारायण थे उनका समय भी कीथ ने 671 ईस्वी स्वीकार किया है। यदि यह साक्ष्य माना जाय तो भट्टनारायण का समय 671 ई. के आसपास अर्थात् 7वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाना चाहिए।

इसके विपरीत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 'बहुविवाह' नामक अपनी पुस्तक ''कृष्ण चरितम्'' में आदिशूर (शकाब्द 999) के द्वारा आमन्त्रित ब्राह्मणों में भट्टनारायण का समय विक्रमाब्द 1134 (1077 ई.) के आस पास माना है जो कि तर्कसङ्गत नहीं है। 950 ई. के लगभग होने वाले धनञ्जय ने, 870 ई. में होने वाले आनन्दवर्धन ने तथा 8वीं एवं 9वीं शताब्दी के मध्य होने वाले वामन ने अपने-अपने ग्रन्थों में भट्टनारायण कृत 'वेणीसंहार' नाटक के श्लोकों को उद्धृत किया है। इससे यह तो निश्चित है कि भट्टनारायण का समय इन सभी से पूर्व का है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य लेखक जैसे ए. मैक्डोनल–840 ई., लाजपत राय–700 ई., ए. बी. कीथ–800 ई. से पूर्व, एम.आर.काले–700 ई. का उत्तरार्द्ध एवं 800 ई. का पूर्वार्द्ध, एच.एन.दास गुप्ता 800ई. के लगभग, गोविन्द केशव भट्ट–7वीं एवं 8वीं शताब्दी के मध्य श्रीमती अक्षय कुमारी 732 ई. से 742 ई. के मध्य मानते हैं।

इस प्रकार भट्ट नारायण के काल के सम्बन्ध में यद्यपि 7वीं शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक के विभिन्न विचार देखे गये हैं किन्तु वामन (8वीं. शती के मध्य) के काव्यों में 'वेणीसंहार' के श्लोक उद्धृत होने के कारण भट्टनारायण का समय इसके बाद का नहीं माना जाना चाहिए। इसी तरह 7वीं शताब्दी के पूर्व किसी भी साहित्य में इनका वर्णन न मिलने के कारण (7वीं शताब्दी) से पूर्व भी भट्टनारायण का स्थिति काल नहीं माना जाना चाहिए।

TESLA-013

1.3 नाटक वेणीसंहार : एक परिचय

(1) नाटक का नामकरण (2) कथावस्तु का मूलाधार (3) नायक एवं प्रतिनायक (4) नायिका (5) प्रधान रस (6) काव्य सौन्दर्य एवं समीक्षा।

1.3.1 नाटक का नामकरण

वेण्याः संहारः वेणीसंहारः, वेणीसंहार शब्द का अर्थ है वेणी अर्थात् खुली चोटी या बाल को बाँधना। इस नाटक का बीज है भीम द्वारा दुर्योधन की जंघाएँ तोड़कर उसके रक्त से द्रौपदी के केश संवारने की प्रतिज्ञा। भीमसेन ने इस नाटक के आरम्भ में दुःशासन द्वारा खींची जाने वाली द्रौपदी की खुली चोटी को ''उत्तंसयिष्यतिकचांस्वत देवि भीमः'' कह कर संवारने की प्रतिज्ञा करते हैं, जिसका प्रमाण हमें नाटक के अन्त में युधिष्ठिर के द्वारा (किमपरमवशिष्टम्) अब और क्या बचा है? पूछे जाने पर भीमसेन के उत्तर ''संयच्छामि तावदनेन सुयोधनशोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं केशहस्तम् '' से मिलता है। अतः इस नाटक का नामकरण वेणीसंहार ही समीचीन है।

1.3.2 कथावस्तु का मूलाधार

इस नाटक की कथावस्तु वस्तुतः महाभारत से ली गयी है किन्तु भट्टनारायण ने महाभारत युद्ध कथा के कुछ अंशों को त्यागकर, कुछ अंशों को मिलाकर और कुछ को परिवर्तित करके इसका कथानक तैयार किया है। मञ्च पर प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने जिन-जिन प्रभावशाली घटनाओं का चयन किया है तथा उन्हें छह अङ्कों में बाँध दिया है वह अति प्रशंसनीय तथा उनकी वाक्य संयोजन की निपुणता का परिचायक है। कुछ घटनाएँ जिन्हें वे विस्तार के भय से रंगमञ्च पर प्रस्तुत नहीं कर सके उन घटनाओं को उन्होंने पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से दर्शाया है। कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों में ये हैं–

महाभारत	वेणीसंहार
1. सन्धि प्रस्ताव लेकर पाञ्चाल नरेश का पुरोहित जाता है उसके विफल होने पर श्रीकृष्ण सन्धि करने का प्रयास करते हैं।	**1.** श्री कृष्ण स्वयं ही पञ्चग्राम की शर्त पर सन्धि का प्रस्ताव लेकर जाते हैं।
2. कर्ण और कृपाचार्य में झगड़ा होता है। अश्वत्थामा कृपाचार्य का पक्ष लेकर गदा उठाते हैं यह घटना द्रोणाचार्य के वध से पूर्व की है।	**2.** कर्ण सीधे अश्वत्थामा से झगड़ता है कृपाचार्य उन दोनों में बीच बचाव कराते हैं। यह झगड़ा द्रोणाचार्य के वध के बाद उन्हीं की निन्दा के कारण होता है।
3. सरोवर में छिपे दुर्योधन का पता चलते ही सभी भाइयों सहित युधिष्ठिर वहाँ पहुँचकर दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारते हैं और पाँचों में से किसी के साथ भी युद्ध के लिये कहते हैं।	**3.** जिस समय भीम दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारता है और किसी के साथ भी युद्ध के लिये कहता है तब वहाँ युधिष्ठिर नहीं रहते।

TESLA-013

4. चार्वाक युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के उपरान्त राजसभा में उनकी निन्दा करने के लिये जाता है।	**4.** यहाँ घटनाक्रम को नवीनता देने के लिये चार्वाक को युधिष्ठिर से पहले ही मिला दिया जाता है क्योंकि उसका उद्देश्य युधिष्ठिर का विनाश करना है।
5. भीम दुर्योधन के ऊरुभंग की ही प्रतिज्ञा करता है।	**5.** भीम द्वारा दुर्योधन के रक्त से द्रौपदी के केशों को सँवारने की प्रतिज्ञा है।

महाभारत की मूलकथा तथा नाटक की कथा के इस अन्तर के अतिरिक्त भट्टनारायण ने चरित्रों और घटनाओं का परिवर्धन भी किया है।

कुछ बड़े चरित्र जैसे–

भानुमती को प्रथम अङ्क में, राक्षस दम्पती को तृतीय अङ्क में प्रवेशक में, सुन्दरक को चतुर्थ अङ्क में, पाञ्चालक को षष्ठ अङ्क में बढ़ाया गया है।

कुछ सूक्ष्म चरित्र जैसे कञ्चुकी चेटी और सखी भी बढ़ाये गये हैं।

कुछ घटनाओं तथा दृश्यों में भी परिवर्धन किया गया है जैसे भानुमती द्वारा द्रौपदी से अपमान जनक ढ़ंग से प्रश्न पूछा जाना, भानुमती का स्वप्न देखना, सम्पूर्ण द्वितीय अङ्क विशेषकर वात्याचक्र और दुर्योधन तथा भानुमती के मध्य शृङ्गारिक दृश्य, पञ्चम अङ्क विशेषरूप से धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ दुर्योधन का बहस करना, कर्ण की मृत्यु का समाचार मिलना, षष्ठ अङ्क में चार्वाक द्वारा युधिष्ठिर से झूठ बोलना, द्रौपदी और युधिष्ठिर का चितारोहण का प्रयास तथा विलाप। इन सभी घटनाओं का महाभारत में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। हाँ यदि ध्यान दिया जाय तो इस नाटक में भट्टनारायण द्वारा घटनाओं में किया गया परिवर्तन नाटक के सौन्दर्य सौष्ठव को द्विगुणित कर देता है। जैसे–भानुमती के द्वारा द्रौपदी से अपमानजनक ढंग से प्रश्न पूछा जाना भीम के क्रोध को भड़का देता है।

भानुमती के स्वप्नदर्शन तथा वात्याचक्र द्वारा रथ ध्वज का टूटना दिखाने से भावी घटनाओं की सूचना मिलती है। दुर्योधन को अपने माता पिता के साथ किये गये वार्तालाप से दुर्योधन का स्वाभिमानी होना और उसके माता-पिता का पुत्र के प्रति अगाध वात्सल्य छलकता है। पञ्चम अङ्क से यह भासित होता है कि दुर्योधन कर्ण की सहायता के लिये युद्ध क्षेत्र में जाना चाहता है तभी उसके माता-पिता आ जाते हैं जिससे उसे जाने में बाधा पहुँचती है और वह कर्ण की मृत्यु का मार्ग भी बना डालता है। छठें अङ्क में युधिष्ठिर तथा द्रौपदी का चितारोहण के लिये तत्परता दिखाना तथा विलाप करना यह प्रदर्शित करता है कि उसे अपने भाइयों से कितना लगाव है।

1.3.3 वेणीसंहार का नायक एवं प्रतिनायक

1.3.3.1 नायक

किसी भी नाटक का नायक उस नाटक में मुख्य भूमिका का निर्वाह करने वाला होता है। इस नाटक में यद्यपि युधिष्ठिरादि पाण्डव तथा दुर्योधनादि कौरव कुल मिलाकर कई पात्र

TESLA-013

हैं। इन सभी चरित्रों में अकेले दुर्योधन ने ही भट्टनारायण का ध्यान आकर्षित किया है। दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें अङ्क में उसे उपस्थित दिखाया गया है तथा छठे अङ्क में भी उसका उल्लेख बार-बार हुआ है। किन्तु उदात्त व्यक्तित्व न होने के कारण दुर्योधन को प्रधान नायक के रूप में भट्टनारायण ने स्थान नहीं दिया क्योंकि भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार मुख्य नायक का वध नहीं दिखाना चाहिए और दुर्योधन का वध नाटक के अन्त में होता है। इसलिये वह प्रधान नायक बनने के योग्य नहीं है। धीरोदात्त नायक के गुण ये हैं–महासत्त्व, अतिगम्भीर, क्षमावान्, डींग न हाँकने वाला, स्थिर, अपने अहंकार को छिपाने वाला तथा दृढ़ी होना चाहिए किन्तु नाटक का नायक होने का श्रेय भीमसेन को ही मिलता है। भीम ने ही द्रौपदी के खुले बालों की वेणी बाँधने की प्रतिज्ञा की थी जिसके कारण ही नाटक का नामकरण वेणीसंहार पड़ा था। भीमसेन ही ऐसा पात्र है जो अन्त तक अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने में लगा रहता है और वेणीसंहार रूप कार्य भीम के द्वारा ही सम्पन्न कराया गया है। पहले, पाँचवें तथा छठें अङ्क में वह रङ्गमञ्च पर आता है। तृतीय अङ्क में नेपथ्य से ही उसकी गर्वोक्ति सुनायी पड़ती है तथा चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक ने उसका नाम लिया। भीम क्रूर प्रतिशोध लेने वाला तथा महान् बलशाली के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इन दोनों गुणों के अतिरिक्त धीरोदात्त नायक के अन्य कोई गुण भीम में नहीं हैं जिसके कारण उसे नाटक का 'धीरोदात्त' नायक माना जाय। इसीलिये उसे धीरोदात्त की जगह धीरोद्धत प्रकार का नायक माना गया है।

तीसरे मुख्य पात्र युधिष्ठिर हैं। किन्तु उन्हें भी प्रधान नायक नहीं माना जा सकता क्योंकि नाटक में उनको बहुत कम स्थान प्राप्त हैं जैसे–पहले एवं पाँचवें अङ्क में उनका उल्लेख जरूर हुआ है पर प्रवेश केवल छठें अङ्क में हुआ है। यह प्रश्न विचारणीय है कि प्रस्तुत नाटक का मुख्य नायक किसे स्वीकार किया जाय? इसके लिए नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि नाटक का प्रधान नायक वही होना चाहिए जो अन्तिम फल या परिणाम को प्राप्त करे। यहाँ अन्तिम फल किसे प्राप्त हुआ यह देखना है।

संस्कृत नाटकों में सन्धि के दो अङ्ग होते हैं–(1) काव्यसंहार (2) प्रशस्ति।

प्रथम प्रकार में प्रश्न पूछा जाता है और दूसरे में उस प्रश्न का उत्तर रहता है। काव्य संहार में जिस व्यक्ति को सम्बोधित किया जाता है और जो प्रशस्ति में उस प्रश्न का उत्तर देता है वही वस्तुतः नाटक का फल प्राप्त करने वाला होता है। इस दृष्टि से तो युधिष्ठिर ही इस नाटक का मुख्य नायक माना जाना चाहिए क्योंकि युद्ध की समाप्ति पर शत्रुवध रूप कार्य का मुख्य फल (राज्य) की प्राप्ति युधिष्ठिर को ही होती है। नाटक के मुख्य व्यापार उसी की इच्छा और आदेश के ही अधीन हैं। धीरोदात्त नायक का लक्षण भी युधिष्ठिर पर ही घटित होता है किन्तु नाटक में स्वल्प स्थान होने के कारण ही मुख्य नायक का स्थान उनको नहीं मिल पाया।

अतः भीम ही इस नाटक का नायक है किन्तु वह धीरोदात्त नायक न होकर धीरोद्धत प्रकार का नायक है।

1.3.3.2 प्रतिनायक

नाटक में नायक की प्रतिद्वन्द्विता एवं प्रतिस्पर्धा करने वाला तथा उपकार करने वाला पात्र प्रतिनायक कहलाता है। अन्त में यही पात्र नायक द्वारा पराजित भी होता है। इस नाटक

में जहाँ समस्त घटनाएँ भीम के नायकत्व का उद्‌घोष करती हैं वहीं दुर्योधन को प्रतिनायक का प्रतिपादन करती हैं। दुर्योधन एक अभिमानी, घमण्डी, विलासी, अविचारी एवं गर्वोन्मत्त पात्र के रूप में चित्रित हैं। वह किसी भी शर्त पर शत्रुओं से सन्धि करने के लिये तैयार नहीं है। उससे जहाँ तक बन पड़ता है वह शत्रुओं का प्रत्यक्ष में अहित करना चाहता है। सामान्य सी घटना में वह अत्यधिक उत्तेजित हो जाता है। भानुमती के स्वप्न की अधूरी बात को सुनकर ही वह उसे मारने के लिये उद्यत हो जाता है।

1.3.4 नायिका

इस नाटक की नायिका द्रौपदी है जो पाँचों पाण्डवों की पत्नी है फिर भी उसका स्पृहणीय सम्बन्ध केवल भीमसेन के साथ ही रहता है। वह उसको ही अपना पति मानती है और 'नाथ' तथा 'आर्यपुत्र' आदि नामों से सम्बोधित करती है। इसका कारण सम्भवतः यही रहा होगा कि वह अपना अपमान होने के कारण प्रतिशोध की भावना से भरी हुई है और अन्य पतियों के बारे में उपेक्षा से बोलती है।

नाटकारम्भ में द्रौपदी की वेणी सँवारने का सङ्कल्प लेकर, अन्त में वेणी सँवारने तक भीमसेन का सम्बन्ध द्रौपदी से ही रहता है। इसीलिये वह भीम के प्रतिक्रियात्मक विचार से सहमत रहती है। भानुमती के द्वारा किये गये अपमान का प्रतिशोध भी भीम के माध्यम से ही लेना चाहती है। इसलिये वेणीसंहार की नायिका स्वीया मुग्धा द्रौपदी ही है।

1.3.5 रस

वेणीसंहार 'वीर रस' प्रधान नाटक है। अन्य रसों का गौण रूप में समावेश हुआ है। दूसरे अङ्क में संयोग शृङ्गार, तीसरे अङ्क में वीभत्स, करुण और रौद्र रस, चौथे अङ्क में भयानक, पञ्चम अङ्क में करुण, छठे अङ्क में अद्‌भुत रस का समावेश है।

इस प्रकार से इस नाटक में 'निर्वाण वैर दहनाः' तथा 'मथ्नामि कौरवशतम्' इत्यादि से लेकर अन्ततक वीर रस की ही प्रधानता है। साहित्यदर्पण में कहा गया है कि नाटक की सफलता के लिये वीर अथवा शृङ्गार में से एक, रस प्रधान होना चाहिए।

1.3.6 वेणीसंहार में काव्य सौन्दर्य एवं समीक्षा

इस नाटक में रसों का सुन्दर समावेश हुआ है साथ ही साथ पात्रों में विविधता भी दर्शायी गयी है जैसे भीम की भयङ्करता, कर्ण का अभिमानी होना, दुर्योधन का अभिमानी होने के साथ-साथ स्वार्थ परायण भी होना, अश्वत्थामा की क्रोध एवं दया पूर्ण चित्तवृत्ति आदि।

नाटक के अन्त में दुर्योधन के रक्त से नहाये हुए भीमसेन को देखकर द्रौपदी उसे दुर्योधन समझ कर आतङ्कित होती है। यहाँ यह दिखाया गया है कि मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ प्रतिशोध और हिंसा के भावों को तीव्र कर देती हैं। भट्टनारायण मुख्यतः गौड़ी रीति के कवि हैं। प्रसाद गुण से युक्त वैदर्भी रीति में भी वे सिद्धहस्त हैं। सभी अलङ्कारों का योजनाबद्ध तरीके से उन्होंने प्रयोग किया है।

वेणीसंहार के द्वितीय अङ्क में दुर्योधन और भानुमती का मिलना एवं पञ्चम अङ्क

में धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुर्योधन का मिलन होता है। अन्त में धृतराष्ट्र और गान्धारी का शोक दिखाया गया है।

1.4 पात्र-परिचय

1.4.1 पुरुषपात्र

भीम	–	नायक (कुन्ती के पुत्र)
युधिष्ठिर	–	ज्येष्ठ पाण्डव (कुन्ती के पुत्र)
अर्जुन	–	युधिष्ठिर के छोटे भाई (कुन्ती के पुत्र)
नकुल	–	(माद्री के पुत्र)
सहदेव	–	(माद्री के पुत्र)
कृष्ण	–	अर्जुन के मित्र तथा सारथी
दुर्योधन	–	प्रतिनायक
धृतराष्ट्र	–	कौरवों के पिता
कर्ण	–	सूर्य (कुन्ती) के पुत्र, अङ्गराज
कृपाचार्य	–	दुर्योधनादि के गुरु
अश्वत्थामा	–	द्रोणाचार्य के पुत्र तथा दुर्योधन के सहयोगी
सञ्जय	–	धृतराष्ट्र के सारथी
सुन्दरक	–	कर्ण का सेवक
जयन्धर	–	युधिष्ठिर का कञ्चुकी सेवक (अन्तःपुर)
विनयन्धर	–	दुर्योधन का कञ्चुकी सेवक (अन्तःपुर)
चार्वाक	–	दुर्योधन मित्र,
अश्वसेन	–	सारथी (द्रोणाचार्य)
रुधिरप्रिय	–	पाण्डव पक्षपाती
सूत	–	सारथी दुर्योधन का
बुधक, पाञ्चालक	–	युधिष्ठिर का सन्देश वाहक

इसके अतिरिक्त कतिपय ऐसे पात्र भी हैं जो प्रत्यक्ष रूप से मञ्च पर उपस्थित न होकर सङ्केतित रूप से रहते हैं। जैसे–भीष्म, द्रोणाचार्य, अभिमन्यु, बलराम, धृष्टद्युम्न, विदुर, दुःशासन, जयद्रथ और शल्य।

1.4.2 स्त्रीपात्र

द्रौपदी	–	नायिका
भानुमती	–	दुर्योधन की पत्नी
गान्धारी	–	दुर्योधन की माता
दुःशला	–	दुर्योधन की बहन
माता	–	जयद्रथ की माता
बुद्धिमतिका	–	द्रौपदी की सखि
चेटी	–	द्रौपदी की सेविका
सुवदना	–	भानुमती की सखि
तरलिका	–	भानुमती की सखि
विहङ्गिका	–	कौरवों की दासी
वसागन्धा	–	राक्षसी (राक्षस की पत्नी)

1.5 बोधप्रश्न

1. महाकवि नारायणभट्ट का जीवन परिचय देते हुए काल निर्धारण कीजिए।
2. नारायणभट्ट रचित नाटक की कथावस्तु का मूलाधार क्या है, विवेचना कीजिए।
3. वेणीसंहार के नायक, प्रतिनायक एवं नायिका के योगदान की विवेचना कीजिए।
4. वेणीसंहार नाटक के काव्यसौन्दर्य की समीक्षा कीजिए।
5. वेणीसंहार नाटक की कथावस्तु संक्षेप में लिखिए।

TESLA-013

]

TESLA-013

इकाई-2

वेणीसंहार के आरम्भिक दस श्लोकों का संस्कृत अनुवाद

इकाई की रुपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रथम अङ्क के आरम्भिक दस श्लोक

अन्वय

संस्कृत में अनुवाद

2.3 बोध प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत वेणीसंहार नाटक के प्रथम अंक के प्रारम्भिक दस श्लोकों का संस्कृत अनुवाद पाठ्यक्रम में निर्धारित है।

2.1 उद्देश्य

- इकाई के अध्ययन के पश्चात वेणीसंहार नाटक के प्रारम्भिक दस श्लोकों का संस्कृत में अनुवाद कर पाएँगे।
- संस्कृत अनुवाद के साथ-साथ मुख्य टिप्पणियों की जानकारी भी प्राप्त कर पाएँगे।
- कथावस्तु को जान पाएँगे।

2.2 वेणीसंहार के प्रथम अंक के आरम्भिक दस श्लोकों का संस्कृत अनुवाद

प्रथमोऽङ्कः

निषिद्धैरप्येभिर्लुलितमकरन्दो मधुकरैः

करैरिन्दोरन्तश्छुरित इव सम्भिन्नमुकुलैः।

विधत्तां सिद्धिं नो नयनसुभगामस्य सदसः

प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरणयोरञ्जलिरयम् ।। 1 ।।

संस्कृत अनुवाद– 'ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरेत्' इति शिष्टनियमात् महाकविभट्टनारायणोऽत्र श्लोकत्रयेणेश्वरस्तुतिरूपां नान्दीं निर्दिशति। सः प्रस्तौति- निवारितैः अपि दृश्यमानैः एतैः भ्रमरैः सञ्चालितः पुष्परसः युक्तः तादृशः विकसितं कुड्मलं यस्य तादृशः अतएव चन्द्रस्य किरणैः अभ्यन्तरे व्याप्त इव पुरोवर्ती कृष्णस्य पादयोः विस्तीर्णः कुसुमानां हस्तसम्पुटः (अञ्जलिस्थपुष्पाणामिति) उपस्थितस्य एतस्य सभाजनस्येति नेत्राह्लादकरीसफलताम् अस्माकं सम्पादयतु।

टिप्पणी– लुलितमकरन्दः–लुलितः मकरन्दः। हरिचरणयोः–हरेः चरणयोः। नयन सुभगाम् –नयनयोः सुभगाम् । निषिद्धैः –नि + सिध-क्त कर्मणि तैः। प्रकीर्णः–प्र + कृ + क्त कर्मणि।

अस्मिन् श्लोके शिखरिणी छन्दः, तल्लक्षणम् –रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रासं

गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।

तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते–

रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः ।। 2 ।।

संस्कृत अनुवादः– यमुनायाः जलमुक्ततटेषु क्रीडायां क्रुद्धां रासनाम्ना प्रसिद्धे नृत्यविशेषे अनुरागं त्यक्त्वा व्रजन्ती नेत्राम्बुभिः मलिनां रुदतीमित्यर्थः राधामनुसरतः तस्याः राधिकायाः चरणयोः पद्धतौ दत्ते पदे तादृशस्य प्रसादं कृतवत्या प्रियतमया विलोकितस्य कृष्णस्य अखण्डितः प्रार्थना युष्मान् पुष्टान् करोतु।

टिप्पणी– केलिकुपिताम् –केल्यात कुपिता ताम् । अश्रुकलुषाम् –अश्रुभिः –कलुषाम् । उद्भूतरोमोद्गतेः–उद्गता रोमोद्गतिः यस्य तादृशस्य। प्रसन्नदयितादृष्टस्य–प्रसन्नाया दयिता तया दृष्टस्य।

उत्सृज्य–उत् + सृज् + ल्यप् । कंसद्विषः–कंस + द्विष् + क्विप् कर्तरि। अक्षुण्णः–न क्षुण्णः। अनुनयः–अनु + नी + अच् भावे।

अत्रानुप्रासोऽलङ्कारः, तल्लक्षणम् – 'अनुप्रासः वर्णसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्'। शार्दूलविक्रीडितः छन्दः, तल्लक्षणम् सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

प्रियतमया विलोकितस्य कृष्णस्य अखण्डिता प्रार्थना युष्मान् पुष्टान् करोतु।

दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्सम्भ्रमाच्चासुरीभिः

शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन।

आकृष्यास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसम्भ्रमैर्दैत्यवीरैः

सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ।। 3 ।।

संस्कृत अनुवादः– मयनामकदानवेन निर्मितं नगरं (त्रिपुरासुरनगरमिति यावत्) तस्य दाहे पार्वत्या सानुरागं दृष्टः किम् इदम् इति दैत्यस्त्रीभिः त्रासात् उद्वेगात् (दृष्टः) उपशमवत् यत् अन्तःकरणं ब्रह्म एव वेद्यत्वेन प्रधानं वा येषां तादृशैः मुनिभिः सदयं दृष्टः हरिणा मन्दहास्यसहितेन शान्तीकृतः स्त्रीणामुद्वेगः दर्पयुक्तैः असुरशरैः आयुधम् उद्यम्य देवैः सहर्षः अवलोकितः महादेवः सभ्यजनान् रक्षतु।

टिप्पणी– मयपुरदहने–मयस्य पुरं तस्य दहनम् तस्मिन् । शान्तान्तस्तत्त्वसारैः–शान्तं यत् अन्तः तेन तत्त्वं सारो येषामन्तैः इति। उपशमितवधूसंभ्रमैः–उपशमितः वधूनां सम्भ्रमः यैः। दैत्यवीरैः–दैत्यानां वीराः तैः।

आकृष्य–आ + कृष् + ल्यप् । पातु-पा + लोट् लकार।

अत्र रसवदलङ्कारः, स्रग्धरा छन्दः, तल्लक्षणम् –'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रियुनियति युता।'

श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः।

तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे ।। 4 ।।

अनुवाद– यः कृष्णद्वैपायनः कर्णं रूपी हस्तसम्पुटेन द्रव्यमथ च पातव्यं महाभारतनामकं पीयूषं ग्रन्थं कृतवान् लोकप्रसिद्धं रागरहितं निष्कलुषं तं व्यासं (अहं) सूत्रधारः प्रणामं करोमि।

टिप्पणी– अरागम् –नास्ति रागः यस्य तम् । अकृष्णम् – न कृष्णः कृष्णद्वैपायनम् – कृष्णश्च द्वैपायनश्च तम् ।

अत्र रूपकालङ्कारः, लक्षणम् –'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।'

आर्या छन्दः– 'यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या' ।।

कुसुमाञ्जलिरपर इव प्रकीर्यते काव्यबन्ध एषोऽत्र।

मधुलिह इव मधुबिन्दून्विरलानपि भजत गुणलेशान् ।। 5 ।।

अनुवादः– अयं वेणीसंहारनामकः कविरचितप्रबन्धः द्वितीयः पुष्पाञ्जलिवत् अत्र विस्तार्यते। भ्रमराः मधुपृषतान् इव अत्यल्पानपि गुणलवान् गृह्णीत।

टिप्पणी– कुसुमाञ्जलिः –कुसुमानाम् अञ्जलिः। काव्यबन्धः–काव्यमेव बन्धः। मधुबिन्दून् –मधुनः बिन्दून् । गुणलेशान् –गुणस्य लेशान् । प्रकीर्यते –प्र + कृ + यक् + लट्। संसृष्टिरलङ्कारोऽत्र, आर्या छन्दः।

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः।

निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ।। 6 ।।

अनुवादः– उत्तमपक्षयुक्ताः मधुरवाणीयुक्ताः भूषिताः दिशः हर्षेण उत्कटाः व्यवसायाः कृष्णचञ्चुचरणाः हंसविशेषाः शरदृतोः वशात् पृथिव्याः तले अवतरन्ति। (दुर्योधनादिपक्षे) उत्तमसैन्यवन्तः श्रेष्ठसहाययुक्ताः वा मृदुवाणीयुक्ताः प्रकर्षेणपूरिताः कामनाः यैः दुर्योधनादि धार्तराष्ट्राः (ते) अहङ्कारेण अतिशयोद्दण्डतायुक्ताः दैववशात् भूतले विनिपातः प्राप्नुवन्ति, मृत्योः वा प्राप्नुवन्ति।

टिप्पणी– मधुरगिरः–मधुरा गिर येषां ते। प्रसाधिताशाः–प्रसाधिताः आशाः यैः। मदोद्धतारम्भाः–मदेन उद्धताः आरम्भाः येषां ते। कालवशात् –कालस्य वशात् । निपतन्ति–नि + पत् + लट लकार।

TESLA-013

आर्या छन्दः।

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां

नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन

रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च।

स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ।। 7 ।।

अनुवादः– शत्रूणां विनाशात् शान्तं वैरं अग्निरिव तादृशाः पाण्डुपुत्राः युधिष्ठिरादयः श्रीकृष्णेन सार्धं सुखिनो भवन्तु। अनुरागेण प्रदत्ता पृथिवी यैः तादृशाः (पक्षे) शोणितेन अलङ्कृतेन भूः यैः तादृशाः नष्टः कलहः तादृशाः (पक्षे) जातव्रणाः शरीराणि येषां तादृशाः दुर्योधनप्रभृतयश्च सदासाः सुस्थिताः (पक्षे) स्वर्गस्थाः मृताः इति सन्त।

टिप्पणी– निर्वाणवैरदहनाः–निर्वाणो वैरमेव दहनः येषां ते। रक्तप्रसाधितभुवः–रक्तेभ्यः प्रसाधिताः भुवः यैः ते।

अत्रोपमालङ्कारः, तल्लक्षणम् –'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः'। वसन्ततिलका छन्दः, लक्षणम् –'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः'।

आः दुरात्मन् वृथामङ्गलपाठक शैलूषापसद,

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशै

प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य।

आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान्

स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ।। 8 ।।

अनुवादः– लाक्षारसस्यनिर्मिते गृहे अनलः विषमिश्रितलड्डुकमिति भोजनं वा, समितौ प्रवेशश्च, अस्मान् असुषु धनसमूहेषु च निहत्य द्रौपद्याः वस्त्रं कचांश्च हृत्वा दुर्योधनादयः भीमे जीवनधृते सति सकुशलाः भविष्यन्ति? किम् ? नैवैतदित्यर्थः।)

टिप्पणी– लाक्षागृहानलम् –लाक्षा निर्मितं गृहं तस्मिन् योऽनलः। पाण्डववधूपरिधानकेशान् –पाण्डवानां वधूः तस्याः यत् परिधानं च केशाञ्च । भवन्ति– भू + लट्।

धृतराष्ट्रस्य तनयान् कृतवैरान् पदे पदे।

राजा न चेन्निषेद्धा स्यात् कः क्षमेत तवानुजः ।। 9 ।।

अनुवादः– यदि नृपः युधिष्ठिरः निवारकः न भवेत् तर्हि प्रतिस्थानं विहितं विद्वेषं यैः तादृशान् कुरुराजस्य दुर्योधनादिपुत्रान् ते को नु लघुभ्राता सहेत ? न कोऽपि सहेत इत्यर्थः।

टिप्पणी– कृतवैरान् –कृतं वैरं यैः ते तान् । क्षमेत –क्षम् + लिङ् ।

अत्र काव्यालिङ्गालङ्कारः।

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि–
र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ।
जरासन्धयोरः स्थलमिव विरुद्धं पुनरपि
क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत ।। 10 ।।

अनुवादः– बाल्यात् एव भीमसेनस्य दुर्योधनादिभिः सह यत् खलु विरोधः आसीत् तत् अधिकं बभूव । तद् विषये ज्येष्ठः युधिष्ठिरः कारणं न जायते, अर्जुनः अपि कारणं न भवति, नकुलसहदेवावपि नैव हेतू भवतः। जरासन्धस्य नामकस्य मगधाधिपतेः वक्षःस्थलमिव भूयः भिन्नं सन्धानं वृकोदरः क्रोधेन वियोजति, भवन्तः योजयत।

टिप्पणी– प्रवृद्धम् –प्र + वृध् + क्त। विरूढम् –वि + रूह् + क्त विघटयति–वि + घट् + णिच् + लट् । घटयत –घट + लोट् ।

अत्रोपमालङ्कारः शिखरिणी छन्दः–'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।'

2.3 बोधप्रश्न

1. प्रथम अंक के पहले, दूसरे श्लोकों का संस्कृत में **अनुवाद** कीजिए।
2. प्रथम अंक के तीसरे, चौथे श्लोकों का संस्कृत में **अनुवाद** कीजिए।
3. प्रथम अंक के पाँचवें, छठे श्लोकों का संस्कृत में **अनुवाद** कीजिए।
4. प्रथम अंक के सातवें, आठवें श्लोकों का संस्कृत में **अनुवाद** कीजिए।
5. प्रथम अंक के नवें, दसवें श्लोकों का संस्कृत में **अनुवाद** कीजिए।

TESLA-013

इकाई-3

प्रथम एवं द्वितीय अङ्क के श्लोकों का अन्वय, हिन्दी अनुवाद एवं हिन्दी व्याख्या

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रथम अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

3.3 द्वितीय अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

3.4 बोध प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत वेणीसंहार नाटक के प्रथम एवं द्वितीय अङ्कों के श्लोकों का हिन्दी में अनुवाद, व्याख्या, अन्वय आदि का ज्ञान हो पाएँगे।

3.1 उद्देश्य

- इन इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् श्लोकों की हिन्दी, व्याख्या अनुवाद करने में सक्षम हो सकेंगे।
- प्रथम अङ्क की प्रारम्भिक कथावस्तु का ज्ञान कर पाएँगे।
- संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे।

3.3 प्रथम अङ्क के श्लोक, अन्वय, अनुवाद, व्याख्या

प्रथमोऽङ्क :

निषिद्धैरप्येभिर्लुलितमकरन्दो मधुकरैः

करैरिन्दोरन्तश्छुरित इव सम्भिन्नमुकुलैः।

विधत्तां सिद्धिं नो नयनसुभगामस्य सदसः

प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरणयोरञ्जलिरयम् ।। 1 ।।

अन्वयः– निषिद्धैः अपि एभिः मधुकरैः लुलितमकरन्दः इन्दोः करैः अन्तश्छुरितः इव सम्भिन्नमुकुलः हरिचरणयोः प्रकीर्णः अयं पुष्पाणाम् अञ्जलिः अस्य सदसः नयन-सुभगाम् सिद्धिम् नः विधत्ताम् ।

अनुवादः– हटाए गए भी इन भौरों द्वारा बिखेरी गई, चन्द्रमा की किरणों द्वारा मानों मध्यभाग में व्याप्त (अतः) खिली हुई कलियों वाली विष्णु के चरणों में समर्पित यह पुष्पों की अञ्जलि इस सभा की आँखों को आनन्द देने वाली सफलता हमें प्रदान करे।

व्याख्याः– यहाँ वेणीसंहार नाटक के रचनाकार श्रीभट्टनारायण नान्दीपाठ के माध्यम से नाटक की निर्विघ्न समाप्ति हेतु अपने इष्टदेव भगवान् विष्णु से नाटक की सफलता की कामना कर रहे हैं। इस हेतु वे विष्णु के चरणों में एक अंजलि रसपूर्ण पुष्प समर्पित कर रहे हैं।

श्लोक का भाव यह भी है कि ज्येष्ठ जनों के परामर्श की अवहेलना कर दुर्योधन आदि युद्ध में प्रवृत्त हो गए, परिणामस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हुए और दूर हटा दिए गए भौरों की भाँति फल का आस्वादन न कर सके।

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रासं

गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।

तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते–

रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः ।। 2 ।।

अन्वयः– कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितां रासे रसम् उत्सृज्य गच्छन्तीम् , अश्रुकलुषां राधिकाम् अनुगच्छतः तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्य उद्भूतरोमोद्गतेः प्रसन्नदयितादृष्टस्य कंसद्विषः अक्षुण्णः अनुनयः वः पुष्णातु।

अनुवादः– यमुना के बालुकामय तट पर (किसी कारण से) क्रीडा में कुपित हुई (अतएव) रासलीला के आनन्द को छोड़ कर जाती हुई, आँसुओं से मलिन राधा के पीछे-पीछे चलते हुए, उनके चरणचिह्नों पर पैर रखते हुए अतएव रोमांच उत्पन्न हुए और प्रसन्न प्रियतमा द्वारा देखे गए, कंस के शत्रु श्रीकृष्ण सफल प्रार्थना (वाले) आप सभी (सामाजिकों) की पुष्टि करें।

व्याख्याः– कवि ने श्री कृष्ण की अभ्यर्चना के माध्यम से द्रौपदी का क्रोध, रोदन, शत्रु विनाश से आनन्दप्राप्ति तथा भीम के अखंडित अनुनय का वर्णन किया है।

TESLA-013

दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्सम्भ्रमाच्चासुरीभिः

शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन।

आकृष्यास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसम्भ्रमैर्दैत्यवीरैः

सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ।। 3 ।।

अन्वयः– मयपुरदहने देव्या सप्रेम किम् इदम् इति आसुरीभिः भयात् सम्भ्रमात् च शान्ताऽन्तस्तत्त्वसारैः ऋषिभिः सकरुणं विष्णुना सस्मितेन उपशमितवधूसम्भ्रमैः सगर्वैः दैत्यवीरैः अस्त्रम् आकृष्य देवताभिः सानन्दं (दृष्टः) धूर्जटिः युष्मान् पातु।

अनुवाद– मय दानव द्वारा निर्मित (त्रिपुरासुर के) नगर को भस्म करते समय पार्वती द्वारा प्रेमपूर्वक यह क्या है–इस प्रकार असुर स्त्रियों द्वारा भय और घबराहट के साथ, शान्त हृदय में परमात्मसार को ग्रहण करने वाले ऋषियों के द्वारा करुणा सहित, भगवान् विष्णु के द्वारा मन्दहास के साथ, गर्वयुक्त दैत्यवीरों द्वारा अस्त्र खींच कर (युद्धोद्यत दृष्टि से) तथा देवताओं के द्वारा आनन्द सहित देखे गए धूर्जटि शंकर आप सभी की रक्षा करें।

व्याख्या– प्रसिद्ध है कि मय दानव कुशल कारीगर था। उसकी महत्त्वपूर्ण रचना थी– त्रिपुर नगर, त्रिपुर नगर सोने, चाँदी और लोहे की एक-एक नगरी थी जिसकी विलक्षणता थी–आकाश में असुरों सहित उड़ने की क्षमता। केवल शिव के बाणप्रहार से यह त्रिनगरसमूह ध्वस्त हो सकता था वह भी तब जब तीनों नगर एक सीधी पंक्ति में हों। शिव को इस नगरी के विनाश के लिए एक हजार वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी थी।

प्रस्तुत अभ्यर्थना के माध्यम से कवि ने महाभारत के युद्ध के प्रति महाभारत के विभिन्न पात्रों यथा द्रौपदी, दुर्योधन की आसुरी पत्नी भानुमती, व्यास ऋषि, दैत्यघटोत्कच कृष्ण तथा इन्द्र आदि देवों के दृष्टिकोणों का वर्णन किया है।

श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः।

तमहमरागमकृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे ।। 4 ।।

अन्वयः– यः श्रवणाञ्जलिपुटपेयं भारताख्यम् अमृतं विरचितवान् तम् अरागं अकृष्णं कृष्णद्वैपायनम् अहं वन्दे।

अनुवाद– जिन कृष्णद्वैपायन व्यास ने कर्णछिद्ररूपी अंजलि पुट द्वारा पीने योग्य महाभारत नामक अमृत (ग्रन्थ) की रचना की, उन वीतरागी, निष्कलुष वेदव्यास ऋषि को मैं प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या– ऋषि व्यास कृष्णवर्णी होने से कृष्ण, जन्म के पश्चात् एक द्वीप पर परित्यक्त होने से द्वैपायन तथा वेदसामग्री का विभाजन व्यवस्था करने के कारण व्यास कहलाए। ऐसे महान् पुरुष को वेणीसंहार नाटक के रचयिता श्री नारायण भट्ट नमस्कार करते हैं।

कुसुमाञ्जलिरपर इव प्रकीर्यते काव्यबन्ध एषोऽत्र।

मधुलिह इव मधुबिन्दून्विरलानपि भजत गुणलेशान् ।। 5 ।।

TESLA-013

अन्वयः– अपरः कुसुमाञ्जलिः इव एव काव्यबन्धः अत्र प्रकीर्यते। मधुलिहः मधुबिन्दून् इव (यूयं) विरलान् अपि गुणलेशान् भजत ।

अनुवाद– दूसरी पुष्पाञ्जलि के समान यह वेणीसंहार नामक काव्यरचना बिखेरी जा रही है। जिस प्रकार भौंरे मधुबिन्दुओं का आस्वादन करते हैं उसी प्रकार इसके लेशमात्र भी गुणों का आप सब सेवन करें।

व्याख्या– दूसरी प्रणामाञ्जलि के समान कवि सभ्यसामाजिकों के मध्य स्वरचित नाटक को प्रस्तुत करते हुए उनसे इसके रसास्वादन की प्रार्थना कर रहा है।

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भाः।

निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे ।। 6 ।।

अन्वयः– सत्पक्षाः मधुरगिरः प्रसाधिताशाः मदोद्धतारम्भाः धार्तराष्ट्राः कालवशात् मेदिनीपृष्ठे निपतन्ति।

अनुवाद– सुन्दर पंखो वाले, मधुर कलरव करने वाले, दिशाओं को शोभित करने वाले, मद के कारण उद्दाम क्रीडा करने वाले सौराष्ट्र देश में जन्म लेने वाले (कृष्णवर्णी चोंच और कृष्णवर्णी पञ्जों वाले विशेष जाति के) हंस शरद्ऋतु के प्रभाव से धरती तल पर उतर रहे हैं।

दूसरा संकेतित अर्थ–उत्तम सहयोगियों वाले, मधुरभाषी, दिशाओं पर अधिकार कर लेने वाले, अहंकारवशात् उद्दण्ड आचरण करने वाले धृतराष्ट्र के पुत्र मृत्यु के प्रभाव से धरती पर गिर रहे हैं।

व्याख्या– प्रस्तुत श्लोक के दो अर्थ हैं–हंसपक्ष में तथा दुर्योधन आदि के पक्ष में। शरद्ऋतु में शीत के आधिक्य से हंसपक्षी दूर तक उड़ कर उष्ण स्थान पर चले जाते हैं यथा सुराष्ट्र में उत्पन्न होने वाले विशेष जाति के हंस। उसी प्रकार दुर्योधन आदि कौरव भ्राता अपने उत्तम सहयोगियों के साथ युद्धस्थल में मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं।

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां

नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन

रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च।

स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ।। 7 ।।

अन्वयः– अरीणां प्रशमात् निर्वाणवैरदहनाः पाण्डुतनयाः माधवेन सह नन्दन्तु रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाः च सभृत्याः कुरुराजसुताः स्वस्थाः भवन्तु।

अनुवाद– शत्रुओं के समूल नष्ट हो जाने के कारण जिनकी वैर रूपी अग्नि शान्त हो गई है ऐसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर आदि श्रीकृष्ण के साथ प्रसन्न रहें। अनुरागपूर्वक (पाण्डवों के लिए) भूमि को देने वाले तथा जिनका युद्ध समाप्त हो चुका है ऐसे कुरुपुत्र दुर्योधन आदि भृत्यों सहित स्वस्थ रहें।

दूसरा संकेतित अर्थ–शत्रुओं का नाश हो जाने के कारण जिनकी वैर रूपी अग्नि बुझ गई है ऐसे पाण्डव आनन्द प्राप्त करें। जिन्होंने रक्त से पृथिवी को अलंकृत किया है और जिनके शरीर क्षत-विक्षत हैं ऐसे कौरव भृत्यों सहित स्वर्गस्थ होवें।

व्याख्या– भारतीय संस्कृति सबके कल्याण की कामना करती है। उसकी दृष्टि में मित्र तो श्रेष्ठ हैं ही शत्रु भी क्षम्य है परन्तु शत्रु के कारण दर-दर ठोकरें खाने वाले व्यक्ति कैसे इस कटु स्थिति को सहन करें? यही तो विडम्बना है।

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशै

प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य।

आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान्

स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्तराष्ट्राः ।। 8 ।।

अन्वयः–लाक्षागृहान्नसभाप्रवेशैः नः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च प्रहृत्य पाण्डववधूपरिधानकेशान् आकृष्य धार्तराष्ट्राः मयि जीवति स्वस्थाः भवन्ति।

अनुवाद– लाक्षागृह में आग, विष मिले हुए अन्न तथा (द्यूत खेलने के लिए) सभा में प्रवेश आदि द्वारा हमारे प्राणों एवं धनकोष पर प्रहार करके तथा द्रौपदी के वस्त्र एवं केशों को खींच कर धृतराष्ट्र के पुत्र मेरे जीवित रहते स्वस्थ रहें?

व्याख्या– लाख निर्मित गृह में पाण्डवों का वास करा कर आग लगा कर मार डालने की योजना, भीम को विषाक्त मिष्ठान्न खिला कर सर्पों से भरे जल में फेंक कर हत्या का प्रयास करना, द्यूतक्रीडा के बहाने हमारा सारा धन-सम्पत्ति ले लेना, पत्नी को भी हार जाने पर उसके परिधान व बाल खींच कर अपमानित करना–ये सारे दुष्कृत्य सह कर भी कौरव जीवित रहें, स्वस्थ रहें–मेरे लिए यह असंभव है।

धृतराष्ट्रस्य तनयान् कृतवैरान् पदे पदे।

राजा न चेन्निषेद्धा स्यात् कः क्षमेत तवानुजः ।। 9 ।।

अन्वयः– चेत् राजा निषेद्धा न स्यात् (तर्हि) कः तव अनुजः पदे-पदे कृतवैरान् धृतराष्ट्रस्य तनयान् क्षमेत?

अनुवाद– यदि महाराज युधिष्ठिर रोकने वाले न हों तो आपका कौन छोटा भाई पग-पग पर शत्रुता करने वाले धृतराष्ट्र के पुत्रों को सहन करे?

व्याख्या– शान्तवृत्ति युधिष्ठिर कलह आदि नहीं करते अतः दुर्योधन के अति कष्टदायी कुकृत्यों को भी स्वयं भी सहन करते हैं और छोटे भाइयों को भी विरोध नहीं करने देते हैं।

प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि–

र्न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ।

जरासन्धयोरः स्थलमिव विरुद्धं पुनरपि

क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत् ।। 10 ।।

अन्वयः– यत् खलु मम शिशोः एव कुरुभिः वैरं प्रवृद्धम्, तत्र आर्यो हेतुः न भवति, न किरीटी, न च युवाम् । जरासन्ध्योरःस्थलम् इव पुनः अपि विरूढं सन्धिं भीमः क्रुधा विघटयति, यूयं घटयत।

TESLA-013

अनुवाद– कौरवों के साथ बचपन से ही जो मेरी शत्रुता बढ़ती रही, उसमें न तो आर्य युधिष्ठिर कारण हैं न अर्जुन और न तुम लोग। जरासन्ध की छाती की भांति पुनः जोड़ी गई सन्धि को भीम क्रोध से तोड़ रहा है, तुम लोग जोड़ दो।

व्याख्या– बृहद्रथ के जन्म से दो भागों में विभक्त पुत्र को जरा नामक राक्षसी ने जोड़ कर एक अर्थात् सम्पूर्ण कर दिया था अतः उसका नाम हुआ-जरासन्ध। मल्लयुद्ध में भीम ने जरासन्ध को पुनः दो भागों में विभक्त कर दिया परिणामतः उसकी मृत्यु हो गई। उसी भाँति भीम राज्यसन्धि तोड़ने की चर्चा कर रहे हैं, किसकी सामर्थ्य है कि भीम को रोक सके।

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां

वने व्याधैः सार्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः।

विराटस्यावासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं

गुरुः खेदं खिन्नै मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ।। 11 ।।

अन्वयः– नृपसदसि तथाभूताम् पाञ्चालतनयां दृष्ट्वा वल्कलधरैः व्याधैः सार्धं वने सुचिरम् उषितम् । विराटस्य आवासे अनुचितारम्भनिभृतं स्थितम् । गुरुः खिन्ने मयि अद्य अपि खेदं न भजति।

अनुवाद– राजसभा में उस दशा (दुर्गति) को प्राप्त द्रौपदी को देख कर, वल्कलधारी हम लोगों के द्वारा वनवासियों के साथ वन में दीर्घकाल तक निवास, राजा विराट के भवन में अनुचित कार्य करते हुए गुप्तवेश में रहना–बड़े भाई मेरे प्रति खिन्न हो कर भी उस दुर्योधन के प्रति खिन्न नहीं होते।

व्याख्या– रजस्वला अवस्था में द्रौपदी के वस्त्र खींचना, राजा विराट के महल में युधिष्ठिर का कंक नामक ब्राह्मण, भीमसेन का पाचक (रसोइया), अर्जुन का महिला वेश धारण करना, नकुल का अश्वरक्षक और सहदेव का गोपालक बन कर रहना–ये सब युधिष्ठिर कैसे सहन कर लेते हैं, दुर्योधन पर रंचमात्र भी क्रुद्ध नहीं होते हैं।

युष्मच्छासनलंघनांहसि मया मग्नेन नाम स्थितं

प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि।

क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्योच्छिन्दतः कौरवा–

नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नाहं विधेयस्तव ।। 12 ।।

अन्वयः– युष्मच्छासनलंघनांहसि मया मग्नेन स्थितं नाम, स्थितिमताम् अनुजानाम् अपि मध्ये बिगर्हणा प्राप्ता नाम। क्रोधोल्लासितशोणितारुणगदस्य कौरवान् उच्छिन्दतः मम अद्य एकं दिवसं त्वं गुरुः न असि, अहं तव विधेयः न (अस्मि)।

अनुवाद– मैं आपकी आज्ञा उल्लंघन के पाप में डूब गया, मर्यादापालक छोटे भाइयों के मध्य भी निन्दा प्राप्त की। क्रोध से उठाई गई रुधिर से लाल वर्ण वाली गदा वाले मेरे आज एक दिन के लिए आप बड़े भाई नहीं हैं और मैं भी आपका आज्ञापालक नहीं हूँ।

व्याख्या– युधिष्ठिर सदृश शान्तवृत्ति भाई की आज्ञा शिरोधार्य न करने से समाज व परिवार में निन्दा स्वाभाविक है परन्तु एक दिन की अनुमति भीम को मिले कि वे गदा के प्रहार से दुर्योधन को समाप्त कर दें।

यत्तदूर्जितमत्युग्रं क्षात्रं तेजोऽस्य भूपतेः।

दीव्यताक्षैस्तदानेन नूनं तदपि हारितम् ।। 13 ।।

अन्वयः– यत् तत् अस्य भूपतेः ऊर्जितम् अत्युग्रं क्षात्रं तेजः (आसीत्) तदपि अनेन तदा अक्षैः दीव्यतां नूनं हारितम् ।

अनुवाद– इन महाराज युधिष्ठिर का जो वह प्रचण्ड क्षात्र तेज प्रवृद्ध था, वह भी पांसों से जुआँ खेलते समय इन्होंने गवाँ दिया।

व्याख्या– दुर्योधन कृत अन्याय और अपमान सह कर भी युधिष्ठिर को क्रोध क्यों नहीं आता है? सम्भवतः पांसों से जुआँ जैसा निन्दित खेल खेलते समय सर्वस्व हार जाने के साथ वह प्रचण्ड जगत्प्रसिद्ध क्षत्रिय तेजस्विता भी पराजित हो गई।

यद्वैद्युतमिव ज्योतिरार्ये क्रुद्धेऽद्य सम्भृतम् ।

तत्प्रावृडिव कृष्णेयं नूनं सम्वर्द्धयिष्यति ।। 14 ।।

अन्वयः– अद्य आर्ये क्रुद्धे वैद्युतम् इव ज्योतिः सम्भृतम्, तत् इयं कृष्णा प्रावृट् इव नूनं सम्वर्द्धयिष्यति।

अनुवाद– आज आर्य के क्रुद्ध होने पर बिजली के समान जो तेज संचित हुआ है उसे यह कृष्णा (द्रौपदी) वर्षा ऋतु के समान अवश्य बढ़ा देगी।

व्याख्या– द्रौपदी क्षत्राणी है, वह कायर नहीं जो दुर्योधन द्वारा कृत अपमान को शान्ति से सह ले। जैसे वर्षा ऋतु आकाशीय विद्युत के प्रकाश को उत्तेजित कर देती है उसी प्रकार यह द्रौपदी भीम के क्रोध को उत्तेजित कर देगी।

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्

दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।

संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू

सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ।। 15 ।।

अन्वयः– समरे कोपात् कौरवशतं न मथ्नामि? दुःशासनस्य उरस्थः रुधिरं न पिबामि? सुयोधनोरू गदया न चूर्णयामि? भवतां नृपतिः पणेन सन्धिं करोतु।

अनुवाद– क्या मैं संग्राम में क्रोध में भर कर सौ कौरवों का विनाश नहीं कर दूंगा? क्या मैं दुःशासन के वक्षस्थल से रक्तपान नहीं कर सकूँगा? क्या सुयोधन की दोनों जंघाएँ गदा के प्रहार से चूर-चूर नहीं कर पाऊँगा? आपके राजा शर्तों पर सन्धि करें।

व्याख्या– खिन्नमन से भीम पाँच गाँवों के आधिपत्य की बात सुन कर कहते हैं कि महाराज युधिष्ठिर क्यों सन्धि प्रस्ताव स्वीकार कर रहे हैं। जब मेरे सदृश बलशाली-समर्थ भ्राता उनके साथ है। वे सन्धि करें, मैं इस सन्धि को नहीं मानता हूँ।

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वाराणावतम् ।

प्रयच्छ चतुरो ग्रामान्कञ्चिदेकं च पञ्चमम् ।। 16 ।।

अन्वयः– इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणावतम् इति चतुरः ग्रामान् कञ्चित् एकं पञ्चमं च (नः) प्रयच्छ।

अनुवाद– इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणावत–ये चार ग्राम तथा स्वेच्छया एक कोई अन्य ग्राम (अर्थात् पाँच ग्राम) हमें दे दो।

TESLA-013

व्याख्या– इन्द्रप्रस्थ ग्राम में युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों ने हस्तिनापुर से निकाले जाने पर निवास किया था, वृकप्रस्थ ग्राम में दुर्योधन ने भीम को विष दिलाया था, जयन्त ग्राम में जुएँ के खेल में हरा कर राज्य आदि छीन लिया था, वारणावत ग्राम में लाक्षागृह में आग लगवा कर पाण्डवों को मारने का उपक्रम किया था–इन ग्रामों के उल्लेख से युधिष्ठिर ने दुर्योधन को उसके अपकारों का स्मरण करवाया है।

युष्मान् ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः।

न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ।। 17 ।।

अन्वयः– क्रोधात् शत्रुकुलक्षयः युष्मान् लोके ह्रेपयति, सभायां दाराणां केशकर्षणं न लज्जयति।

अनुवाद– क्रोध से शत्रु वंश का नाश तुम लोगों को लज्जित करता है, सभा में पत्नी के बालों को खींचा जाना लज्जित नहीं करता है।

व्याख्या– द्रौपदी का केशकर्षण पाण्डवों के लिए यही सबसे बड़ा अपमान है। पाँच पतियों के मध्य पत्नी को परपुरुष लांछित अपमानित कर लें, पति रक्षा करने में असमर्थ हों, यह लज्जा का विषय है अतः शत्रु का विनाश सर्वथा उचित है।

जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु दूरमप्रोषितेषु च।

पाञ्चालराजतनया वहते यदिमां दशाम् ।। 18 ।।

अन्वयः– पाण्डुपुत्रेषु जीवत्सु, दूरम् अप्रोषितेषु च पाञ्चालराजतनया इमां दशां यत् वहते।

अनुवाद– पाण्डवों के जीवित रहते हुए और दूर परदेश में भी न होते हुए पांचाल नरेश की पुत्री द्रौपदी जो इस दशा को प्राप्त हो गई है। (उसे क्या कहें?)

व्याख्या– राजपुत्री (सामान्य कन्या नहीं) पञ्चपतियों से युक्त (प्रोषितभर्तृका नहीं) तथापि उस विशिष्ट स्त्री के साथ कितना अधिक लज्जाजनक व्यवहार हुआ है।

कौरव्यवंशदावेऽस्मिन् क एष शलभायते।

मुक्तवेणीं स्पृशन्नेनां कृष्णां धूमशिखामिव ।। 19 ।।

अन्वयः– कौरव्यवंशदावे अस्मिन् मुक्तवेणीं धूमशिखाम् इव एनां कृष्णां स्पृशन् कः एषः शलभायते।

अनुवाद– कौरवों के वंश रूपी बांस के लिए इस दावानल में खुले केशों वाली कृष्णा द्रौपदी को धूमशिखा के समान छू कर पतंगे के समान आचरण कर रहा है।

व्याख्या– बांसों के वन को दावानल जला कर राख कर देता है। कौरववंश के लिए भी कृष्णा की काली केशशिखाएँ वनाग्नि का कार्य करेंगी। यथा धूमशिखा को छूने वाला पतंगा जल कर स्वयं को नष्ट कर लेता है।

स्त्रीणां हि साहचर्याद् भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि।

मधुरापि हि मूर्च्छयते विषविटपसमाश्रिता वल्ली ।। 20 ।।

अन्वयः– स्त्रीणां हि चेतांसि (भर्तुः) साहचर्याद् भर्तृसदृशानि भवन्ति। हि मधुरा अपि वल्ली विषविटपसमाश्रिता (सती) मूर्च्छयते।

अनुवाद– स्त्रियों के चित्त पतियों के साहचर्य से पतियों के समान ही हो जाते हैं। क्योंकि लता मधुर होने पर भी विषवृक्ष का आश्रय लेने पर मूर्च्छादायक होती है।

व्याख्या– पत्नी सदा पति की अनुगामिनी होती है। वह पति की आंखों से संसार को देखती है अतः दुर्योधन की स्त्री भानुमती द्वारा द्रौपदी का विरोध स्वाभाविक है। जैसे मीठे फल वाली लता विषवृक्ष के सम्पर्क से विषाक्त हो जाती है, भानुमती की वही स्थिति है।

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिषात–

संचूणितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।

स्त्यानावद्धघनशोणितशोणपाणि–

रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ।। 21 ।।

अन्वयः– हे देवि! चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिधातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणिः भीमः तव कचान् उत्तंसयिष्यति।

अनुवाद– हे देवि! चंचल भुजाओं द्वारा घुमाई गई प्रचंड गदा के प्रहार से चूर-चूर हुई दोनों जांघों वाले दुर्योधन के चिकने, चिपके और गाढ़े रुधिर से लाल रंग के हाथों वाला भीम तुम्हारे केशों को संवारेगा।

व्याख्या– भीम क्रुद्ध हो कर द्रौपदी को सान्त्वना देते हैं कि मैं अपनी गदा के प्रहार से दुर्योधन की जंघाओं को तोड़ कर उसके रुधिर से तुम्हारे बालों को संवार कर तुम्हारी प्रतिज्ञा को पूर्ण करूँगा।

मन्थायास्तार्णवाम्भः प्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः

कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः।

कृष्णाकोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः

केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताड्यतेऽयम् ।। 22 ।।

अन्वयः– मन्थायास्तार्णवाम्भः प्लुतकुहरचलन्मन्दरध्वानधीरः, कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातिवातः अस्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखः अयं दुन्दुभिः केन ताड्येत।

अनुवाद– मन्थन के समय क्षुब्ध समुद्र के जल से व्याप्त गड्ढे वाले घूमते हुए मन्दराचल के शब्द के समान गम्भीर कोणाघातों (भयंकर प्रहारों) में गर्जना करते हुए प्रलयकाल के बादलों की घटनाओं के परस्पर टकराने से भयंकर, द्रौपदी के क्रोध की प्रथम उद्घोषणा करने वाले, कुरुवंश के अपशकुनभूत प्रचंड वायु के समान और हमारे सिंहनाद की प्रतिध्वनि के समान इस भेरी (नगाड़े) को कौन बजा रहा है?

व्याख्या– कोणाघात–एक लाख डमरू तथा दस हजार नगाड़ों के एक साथ बजने की ध्वनि कोणाषात कहलाती है। आचार्य भरत के अनुसार– ढक्काशतसहस्राणि भेरीदशशतानि च। एकदा यत्र हन्यन्ते कोणाघातः स उच्यते।।

निर्घातवात– आकाश में तीव्र वायु का वायु से टकरा कर धरती की ओर आना– यदान्तरीक्षे बलवान् मारुतो मारुताहतः। पतत्यघः सनिर्घातो जायते वायुसम्भवः ।। मन्दरध्वानधीर–समुद्रमन्थन के समय उठती हुई घोर ध्वनि।

TESLA-013

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ

ज्ञानोत्सेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।

यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्

तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम् ।। 23 ।।

अन्वयः– आत्मारामाः निर्विकल्पे समाधौ विहितरतयः, ज्ञानोत्सेकात् विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः (मुनयः) यं कमपि ज्योतिषां तमसां वा परस्तात् वीक्षन्ते तम् अमुं पुराणं देवं मोहान्धः अयं कथं वेत्तु।

अनुवाद– आत्मा में रमण करने वाले, निर्विकल्पक समाधि में अनुराग रखने वाले, ज्ञान के बाहुल्य से नष्ट हुई अज्ञानरूपी मोहग्रन्थि वाले, सात्त्विक भावों से युक्त मुनिजन जिस किसी को भी अज्ञानान्धकार अथवा ज्ञानज्योति से परे देखते हैं, उन पुराणपुरुष परमात्मा श्री कृष्ण को मोह से अन्धा यह दुर्योधन कैसे समझ सकता है?

व्याख्या– निर्विकल्पक समाधि–ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय की त्रिपुटी का ब्रह्मरूप बिन्दु में विलय हो जाने की स्थिति जिसमें विभेद समाप्त होकर केवल ज्ञेय ही अवशिष्ट हो। विघटिततमोग्रन्थिः–जिनकी तामसिक वृत्ति नष्ट हो चुकी हो, अज्ञान हृदय में गाँठ लगा कर विद्यमान रहता है, ब्रह्मसाक्षात्कार से यह गाँठ खुल जाती है, अज्ञान नष्ट हो जाता है। कहा गया है– 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे'।। प्रस्तुत श्लोक में ज्ञानप्राप्ति के सोपानों का क्रमशः वर्णन इस प्रकार है– प्रथम अन्तमुखता, समाधिस्थता, तमोगुण का विनाश, सात्त्विक भावों का उद्रेक, ज्ञान और अज्ञान दोनों से ऊपर उठना, ईश्वर का साक्षात्कार।

यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं

यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता।

तद्द्यूतारणिसम्भृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः

क्रोधज्योतिरिदं महत् कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ।। 24 ।।

अन्वयः– यत् सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं यत् कुलस्य शान्तिम् इच्छता शमवता (तेन) विस्मर्त्तुम् अपि ईहितम् , तत् इदं द्यूतारणिसम्भृतं यौधिष्ठिरं क्रोधज्योतिः नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः महत् कुरुवने जृम्भते।

अनुवाद– जिसे सत्यप्रतिज्ञा के भङ्ग के भय से व्याकुल चित्त वाले युधिष्ठिर ने प्रयास करके मन्द कर दिया था, जिसे कुल का कल्याण चाहते हुए युधिष्ठिर शान्त मन से भुला देना चाहते थे, वही यह द्यूत रूपी वन में युधिष्ठिर की क्रोधाग्नि राजपुत्री द्रौपदी के केश तथा वस्त्र खींचे जाने से कुरुवंश रूपी वन में अत्यधिक प्रकाशित होने जा रही है।

व्याख्या– सत्यनिष्ठ, शान्तप्रवृत्ति युधिष्ठिर के बार-बार प्रयास करने पर दुर्योधन शत्रुता त्यागने को तत्पर नहीं है अतः सहनशक्ति की एक सीमा है। छलपूर्वक जुएँ में पाण्डवों को हरा कर उनकी पत्नी के केश तथा बाल खींचने से वह सहनशक्ति सीमा लांघ चुकी है, अतः अब उनकी क्रोधाग्नि से कुरूवंश का विनाश निश्चित है।

TESLA-013

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान् कर्मोपदेष्टा हरिः

संग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता।

कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं

राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः ।। 25 ।।

अन्वयः– वयं चत्वारः ऋत्विजः स भगवान् हरिः कर्मोपदेष्टा नरपतिः संग्रामाध्वरदीक्षितः पत्नी गृहीतव्रता कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलम् राजन्योपनिमन्त्रणाय यशोदुन्दुभिः स्फीतं रसति।

अनुवाद– हम (भीमादि) चार भाई ऋत्विज् हैं वे भगवान् कृष्ण आचार्य हैं, स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर संग्राम रूपी यज्ञ में दीक्षा ग्रहण करने वाले (यजमान) हैं, पत्नी द्रौपदी ने यज्ञ का व्रत ग्रहण किया है, कुरुवंशी दुर्योधनादि यज्ञ में बलिपशु हैं, प्रिय पत्नी के अपमान से प्राप्त दुःख का शान्त होना यज्ञ का फल है, यज्ञ में राजाओं को निमन्त्रित करने के लिए यह कीर्ति दुन्दुभि गम्भीर ध्वनि से बज रही है।

व्याख्या– भारतीय संस्कृति यज्ञप्रधान है, यज्ञ का फल भी निश्चित रूप से मिलता ही है, अतः कवि युद्ध को यज्ञरूप दे कर पाण्डवों की विजय का आभास करा रहा है।

भूयः परिभवक्षान्तिलज्जाविधुरिताननम् ।

अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम् ।। 26 ।।

अन्वयः– अनिःशेषितकौरव्यं परिभवक्षान्तिलज्जाविधुरिताननं वृकोदरं भूयः न पश्यसि।

अनुवाद– कौरवों का समूल नाश किए बिना, तिरस्कार तथा लज्जा से विवर्ण मुख वाले भीमसेन को तुम फिर (जीवित) न देख सकोगी।

व्याख्या– भीमसेन या तो कौरवों को सम्पूर्ण रूप से समाप्त कर देंगे या स्वयं युद्ध में वीरता से लड़ कर प्राण त्याग देंगे–दोनों विकल्पों में से एक निश्चित है।

अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के

मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ।

स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे

सङ्ग्रामैकार्णवान्तः पयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ।। 27 ।।

अन्वयः– अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसामांसमस्तिष्कपङ्के मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्क बन्धे सङ्ग्रामैकार्णवान्तः पयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः।

अनुवाद– परस्पर टकराने से विदीर्ण हुए हाथियों के रक्त, चर्बी, मांस तथा कपाल के कीचड़ में डूबे हुए, रथों के ऊपर पैर रखकर चलने का पराक्रम दिखाती हुई पैदल सेना वाले, विपुल रक्तपान की गोष्ठियों में अमंगलसूचक श्रृगाली रूपी तुरही के बजने से उछलते हुए धड़ों वाले युद्ध रूपी अद्वितीय समुद्र के मध्यवर्ती जल में विचरण करने में पाण्डु के पुत्र चतुर हैं।

TESLA-013

व्याख्या– पाण्डुपुत्र पञ्चपाण्डव आचार्य द्रोण के निरीक्षण में युद्धकला में अभ्यस्त थे। अतः भीमसेन को विश्वास है कि हम अपनी सेना के पराक्रम की सहायता से युद्ध में अवश्य विजयी होंगे।

इति प्रथमोऽङ्कः

3.3 द्वितीय अङ्क के श्लोक, अन्वय, अनुवाद, व्याख्या

द्वितीयोऽङ्कः

नोच्चैः सत्यपि चक्षुषीक्षितुमलं श्रुत्वापि नाकर्णितं

शक्तेनाप्यधिकार इत्यधिकृता यष्टिः समालम्बिता।

सर्वत्रस्खलितेषु दत्तमनसा यातं मया नोद्धतं

सेवान्धीकृतजीवितस्य जरसा किं नाम यन्मे कृतम् ।। 1 ।।

अन्वयः– चक्षुषि सति अपि उच्चैः ईक्षितुं न अलं, श्रुत्वा अपि न आकर्णितम् , शक्तेन अपि अधिकार इति अधिकृता यष्टिः समालम्बिता, सर्वत्र स्खलितेषु दत्तमनसा मया उद्धतं न यातं, सेवान्धीकृतजीवितस्य मे किं नाम यत् जरसा कृतम् ।

अनुवाद– (अन्तःपुर में) नेत्रों के होने पर भी आँख ऊपर उठा कर नहीं देखा, सुन कर भी नहीं सुना, समर्थ होने पर भी अधिकार है इस कारण ग्रहण करने योग्य यष्टि दण्ड का सहारा लिया, सर्वत्र त्रुटियों के बारे में सावधान रह कर उद्दण्डता नहीं दिखाई, सेवा करने से निष्फल हुए जीवन वाले मेरे लिए क्या है जो वृद्धावस्था ने किया।

व्याख्या– राजा के अन्तःपुर में रानियों की ओर आँख उठाकर देखने का साहस कंचुकी में कहाँ? उन रानियों की चर्चाएँ सुन कर भी अनसुनी करनी पड़ती हैं। रनिवास का नियम है अतः (युवावस्था में भी) सदा दण्ड धारण कर ही चलना पड़ता है। कहीं उद्दण्डता न हो जाए, सर्वदा इसका ध्यान रखना पड़ता है। अपना जीवन सेवा में समर्पित कर देने वाले कञ्चुकी के लिए यह कोई नई बात नहीं है।

आ शास्त्रग्रहणादकुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने–

स्तापायास्य न पाण्डुसूनुभिरयं भीष्मः शरैः शायितः।

प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो

बालस्यायमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्वधात् ।। 2 ।।

अन्वयः– आ शास्त्रग्रहणात् अकुण्ठपरशोः तस्य मुनेः अपि जेता अयं भीष्मः पाण्डुसूनुभिः शरैः शायितः (सन् अपि) अस्य तापाय न भवति। प्रौढानेक धनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य एकाकिनः अरातिलूनधनुषः बालस्य अभिमन्योः वधात् च (अयं) प्रतिः वर्तते।

अनुवाद– शास्त्रग्रहण करने के समय से लेकर कभी कुंठित न होने वाले परशु वाले परशुराम मुनि को जीत लेने वाले भीष्म को पाण्डुपुत्रों द्वारा बाणों की शय्या पर सुला

TESLA-013

दिए जाने पर भी इन दुर्योधनादि को सन्ताप नहीं हुआ। कुशलतम अनेक धनुर्धारियों को विजित करके थके हुए अकेले और शत्रुओं द्वारा तोड़े गए धनुष वाले बालक अभिमन्यु के वध से ये प्रसन्न हो रहे हैं।

व्याख्या– भीष्म प्रिय पाण्डवों को छोड़ कर सर्वदा अन्यायी कौरवों के पक्ष में रहे, उन्हीं की ओर से युद्ध करने के कारण अर्जुन ने भीष्म को बाणों से बींध दिया परन्तु दुर्योधन आदि को रंचमात्र भी दुःख नहीं हुआ। इसके विपरीत एकाकी, असहाय निःशस्त्र, श्रान्त बालक अभिमन्यु को मार कर ये निर्दयी प्रसन्न हैं। कंचुकी को भी यह कार्य अनुचित प्रतीत हो रहा है।

गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः।

करोति महतीं प्रीतिमपकारोऽपकारिणाम् ।। 3 ।।

अन्वयः– अपकारिणां गुप्त्या साक्षात् वा महान् अल्पः वा स्वयम् अन्येन वा कृतः अपकारः महतीं प्रीतिं करोति।

अनुवाद– अपकारी शत्रुओं के प्रति गुप्तरूप से या प्रत्यक्षरूप से, अधिक या कम, स्वयं या दूसरे के द्वारा किया गया अपकार अत्यधिक आनन्ददायी होता है।

व्याख्या– शत्रु के पतन से हर्ष स्वाभाविक है,। वह हानि छिपी हो या प्रकट, अधिक हो या कम, स्वयं द्वारा कृत हो या अन्य किसी द्वारा कृत–देख सुन कर अत्यधिक आनन्द होता है।

हते जरति गाङ्गेये पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
या श्लाघा पाण्डुपुत्राणां सैवास्माकं भविष्यति ।। 4 ।।

अन्वयः– शिखण्डिनं पुरस्कृत्य जरति गाङ्गेये हते पाण्डुपुत्राणां या श्लाघा सा एव अस्माकं भविष्यति।

अनुवाद– शिखण्डी को आगे करके वृद्ध भीष्म पितामह को मार देने पर पाण्डवों की जो प्रशंसा हुई है, वही प्रशंसा हमारी होगी।

व्याख्या– भीष्म की मृत्यु में शिखण्डी कारण बने थे, नपुसंक पर बाणप्रहार का नियम नहीं है अतः भीष्म प्रतिरोध न कर बाणविद्ध हो गए तो यदि आज हम कौरव पक्ष के महारथियों ने बालक अभिमन्यु को अकेले पाकर मार डाला तो इसमें कुछ अनुचित नहीं है।

सह भृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात् पाण्डुसुतः सुयोधनम् ।। 5 ।।

अन्वयः– पाण्डुसुतः स्वबलेन सहभृत्यगणं सबान्धवं सहभिन्नं ससुतं सहानुजं सुयोधनं संयुगे, न चिरात् निहन्ति।

अनुवाद– पाण्डुपुत्र अपनी शक्ति से सेवकों, बन्धुओं, मित्रों, पुत्रों तथा छोटे भाइयों सहित दुर्योधन को युद्ध में शीघ्र ही मार देंगे।

व्याख्या– कंचुकी भी अकस्मात् जो उचित समझता है, उसे ही अपरोक्ष रूप से कह देता है। वह पाण्डुपुत्रों की सत्यता और बल से भी परिचित है, अतः उसकी कल्पना में कुरुवंशी ही विनष्ट होंगे।

TESLA-013

सहभृत्यगणं सबान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।
स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात् पाण्डुसुतं सुयोधनः ।। 6 ।।

अन्वय– पाण्डुसुतं स्वबलेन सहभृत्यगणं सबान्धवं सहभिन्नं ससुतं सहानुजं सुयोधनः संयुगे, न चिरात् निहन्ति।

अनुवाद– सेवकों, बन्धुओं, मित्रों, पुत्रों और छोटे भाइयों सहित पाण्डु के पुत्र को दुर्योधन शीघ्र ही युद्ध में अपने पराक्रम से मार देगा।

व्याख्या– राजसभा में राजा की चाटुकारिता की परम्परा सदा से रही है अतः कंचुकी राजा की प्रशंसा कर तत्क्षण उन्हें प्रसन्न कर लेता है।

प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः

पुष्पैः समं निपतिता रजनीप्रबुद्धैः।

अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्ध–

संसूचितानि कमलान्यलयः पतन्ति ।। 7 ।।

अन्वयः– रजनीप्रबुद्धैः प्रालेयमिश्रमकरन्दकरालकोशैः पुष्पैः समं निपतिता अलयः अर्कांशुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रगन्धसंसूचितानि कमलानि पतन्ति।

अनुवाद– रात में खिले हुए ओस कणों से मिश्रित पराग से विषम मध्यभाग वाले पुष्पों के साथ गिरे हुए भौरें सूर्य की किरणों से विकसित कलियों के मध्यभाग की तीव्र गन्ध के कारण ठीक प्रकार ज्ञात होने वाले कमलों पर गिरे हुए हैं।

व्याख्या– भ्रमर और कमल का अन्योन्यानुराग प्रत्यक्ष है। भीगे पराग वाले पुष्पों का रसास्वादन करते भौरें फूलों के साथ-साथ धरती पर खिले कमलों पर गिरते हैं, तत्क्षण कमल की ताज़ी खिली कलियों की चतुर्दिक उड़ती सुगन्ध से आकृष्ट हो उन पर जा बैठते हैं।

जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टै–

र्हस्तैर्भानोर्नृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः।

स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागा

मुञ्चन्त्येते विकचनलिनीशय्यां द्विरेफाः ।। 8 ।।

अन्वयः– जृम्भारम्भप्रविततदलोपान्तजालप्रविष्टैः भानोः हस्तैः स्पृश्यमानाः (अतएव) विबुद्धाः नृपतय इव एते द्विरेफाः घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागाः (सन्तः) स्त्रीभिः सार्धं विकचनलिनीगर्भशय्यां मुञ्चन्ति।

अनुवाद– विकास के आरम्भ होने से खिली हुई पंखुरियों के छोरों रूपी झरोखों से प्रविष्ट (राजा के पक्ष में–) विकसित होना प्रारम्भ होने पर फैली हुई पंखुरियों के छोरों के समान खिडकियों में से हो कर प्रविष्ट, सूर्य की किरणों के संस्पर्श से जगे हुए राजाओं के समान ये भौरें तीव्र गन्ध से कुछ प्रकट होते हुए अंगराग वाली भ्रमरियों (राजा के पक्ष में–) चन्दन की गन्ध से कुछ दिखलाई पड़ने वाले अंगराग वाली स्त्रियों, के साथ विकसित कमलिनियों के मध्यभाग रूपी शय्या को (राजा के पक्ष में–) विकसित कमलिनियों को मध्य में धारण करने वाली शय्या को, छोड़ रहे हैं।

व्याख्या– कवि ने भ्रमरों और राजाओं के प्रातः जागरण के दृश्य को व्यञ्जना के माध्यम से सुन्दरता से वर्णित किया है। सूर्य के उदय के साथ ही कमल खिलते हैं तो कमलों में भ्रमरियों के साथ बन्द भौरें कमलों से बाहर निकलते हैं, उसी प्रकार राजा गण राजप्रासादों के गवाक्षों से भीतर आती सूर्य की किरणों के स्पर्श से जग कर अपनी स्त्रियों के साथ कमलवत् कोमल शय्या का परित्याग करते हैं।

किं कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया
निद्राच्छेदविवर्तनेष्वभिमुखं नाद्यासि सम्भाविता।
अन्यस्त्रीजनसंकथालघुरहं स्वप्ने त्वया लक्षितो
दोषं पश्यसि के प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि ।। 9 ।।

अन्वयः– मया कण्ठे प्रमादात् भुजलतापाशः शिथिलीकृतः किम् ? अद्य निद्राच्छेदविवर्तनेषु अभिमुखं त्वं न सम्भाविता असि (किम् ?) स्वप्ने त्वया अहम् अन्यस्त्रीजनसंकथालघुः लक्षितः (अस्मि किम् ?) प्रिये! परिजनोपालम्भयोग्ये मयि कं दोषं पश्यसि?

अनुवाद– क्या मैने भूल से तुम्हारे गले में डाली गई भुजलताओं के पाश को ढीला कर दिया? क्या नींद खुलने के भय से करवट बदलते सम्मुख होकर तुम्हारा आदर नहीं किया? क्या स्वप्न में तुमने मुझे दूसरी स्त्री के साथ प्रेमालाप करने के कारण क्षुद्रवृत्ति समझ लिया? हे प्रिये! सेवक के समान उलाहना देने योग्य मुझ में तुम कौन सा दोष देख रही हो?

व्याख्या– कवि ने यहाँ काकु व्यञ्जना के माध्यम से वैपरीत्यार्थ को व्यञ्जित किया है। अर्थात् प्रमाद से भी मैने भुजलताओं के आलिंगन को शिथिल नहीं किया। नींद में करवट बदलते समय भी सम्मुख होकर स्पर्शादि क्रीडाएँ की हैं। स्वप्न में भी कभी किसी अन्य महिला के साथ प्रेमवार्ता नहीं की। अतः मैने तुम्हारे प्रति कभी कोई अपराध नहीं किया है।

इयमस्मदुपाश्रयैकचित्ता
मनसा प्रेमनिबद्धमत्सरेण।
नियतं कुपितातिवल्लभत्वात्
स्वयमुत्प्रेक्ष्य ममापराधलेशम् ।। 10 ।।

अन्वयः– अस्मदुपाश्रयैकचित्ता इयं प्रेमनिबद्धभत्सरेण मनसा अतिवल्लभत्वात् मम अपराधलेशं स्वयम् (एव) उत्प्रेक्ष्य नियतं कुपिता।

अनुवाद– एकमात्र मुझमें ही अनुरक्त चित्त वाली यह प्रेमजन्य द्वेषी मन से अत्यन्त प्रिय होने के कारण मेरे नाममात्र के अपराध की स्वयं ही कल्पना करके निश्चित रूप से क्रुद्ध हो गई है।

व्याख्या– कवि कालिदास की एक पंक्ति है–'अतिस्नेहः पापशङ्की-अभिज्ञानशाकुन्तलम्'। अत्यधिक स्नेह मन में भयभीत करने वाली कल्पनाएँ करता रहता है अतः यहाँ भी कवि ने इसी प्रकार की आशंका व्यक्त की है। दुर्योधन अपनी पत्नी भानुमती के प्रति किसी प्रकार की आशंका व्यक्त की है। दुर्योधन अपनी पत्नी भानुमती के प्रति किसी प्रकार की उपेक्षा न करके भी अत्यधिक प्रेमवश उससे उपेक्षा की कल्पना कर रहा है।

TESLA-013

तद्भरुत्वं तव मम पुरः साहसानीदृशानि

श्लाघा सास्मद्वपुषि विनयव्युत्क्रमेऽप्येष रागः।

तच्चौदार्यं मयि जडमतौ चापले कोऽपि पन्थाः

ख्याते तस्मिन् वितमसि कुले जन्म कौलीनमेतत् ।। 11 ।।

अन्वयः– मम पुरः तव तद्भरुत्वम् ईदृशानि साहसानि अस्मद् वपुषि सा श्लाघा विनयव्युत्क्रमे अपि एषः रागः जडमतौ मयि च तत् औदार्यं चापले कः अपि पन्थाः तस्मिन् ख्याते वितमसि कुले जन्म, एतत् कौलीनम् ।

अनुवाद– मेरे सामने तुम्हारी वह भीरुता (और अब) इस प्रकार के साहसिक कार्य, मेरे शरीर की वह प्रशंसा (और अब) सदाचार का उल्लंघन करने के प्रति यह आकुलता, मन्दबुद्धि मेरे प्रति वह उदारता का प्रदर्शन (और अब) कुलटा स्त्री का मार्ग अपनाना, उस निर्दोष प्रसिद्ध कुल में जन्म लेना (और अब) यह संसार में निन्दा के योग्य कर्म करना।

व्याख्या– दुर्योधन की पत्नी भानुमती 'नकुल' शब्द का प्रयोग नेवले के लिए करती है परन्तु दुर्योधन 'नकुल' पद को माद्रीपुत्र के अर्थ में ग्रहण कर विभिन्न प्रकार के दुर्विचारों से ग्रस्त हो उठा है। वह सोचता है कि मेरे सम्मुख तो तुम नितान्त कायर, मेरे प्रति अनुरक्त, पतिपरायणा और उच्चकुलीन होने का नाटक करती हो, यद्यपि तुम्हारी वास्तविकता इसके विपरीत है। तुम्हारा सम्बन्ध पर पुरुष से है, तुमने स्त्रियोचित मर्यादा भंग की है, तुमने दुराचारिणी स्त्री का मार्ग अपनाया है, तुमने तो वस्तुतः निम्नस्तरीय कुलीन स्त्री के समान आचरण प्रदर्शित किया है।

यस्मिंश्चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावा–

मावेदितो रहसि मत्सुरतोपभोगः।

तत्रैव दुश्चरितमद्य निवेदयन्ती

ह्रीणासि पापहृदये न सखीजनेऽस्मिन् ।। 12 ।।

अन्वयः– पापहृदये, यस्मिन् (त्वया) रहसि मत्सुरतोपभोगः चिरप्रणयनिर्भरबद्धभावम् आवेदितः तत्र एव अस्मिन् अद्य (त्वं) सखीजने दुश्चरितं निवेदयन्ती न ह्रीणासि किम् ?

अनुवाद– अरी पापमना! जिस सखियों से तुमने एकान्त में मेरी रतिक्रिया के आनन्द को चिरकालीन प्रणय के कारण रुचिपूर्वक वर्णित किया था, उन्हीं इन सखियों से आज तुम अपना दुश्चरित्र निवेदित करते हुए लज्जित नहीं हो रही हो?

व्याख्या– सदाचारपूर्वक पतिभक्ति स्त्री की मर्यादा है। पति के प्रति अनुराग और भक्ति रखने वाली रानी भानुमती परपुरुष नकुल (नेवला अथवा माद्रीपुत्र) के प्रति अपने प्रेम की सखियों के मध्य चर्चा करके अपने दुराचार पर लज्जित नहीं हो रही है?

दिष्ट्यार्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधादहं नो गतो

दिष्ट्या नो परुषं रुषार्धकथने किञ्चिन्मया व्याहृतम् ।

मां प्रत्याययितुं विमूढहृदयं दिष्ट्या कथान्तं गता

मिथ्यादूषितयानया विरहितं दिष्ट्या न जातं जगत् ।। 13 ।।

TESLA-013

अन्वयः– दिष्ट्या अहम् अर्धश्रुतविप्रलम्भजनितक्रोधात् (भानुमत्याः समीपं) नो गतः, दिष्ट्या अर्धकथने रुषा किञ्चित् परुषं मया नो व्याहृतम् , दिष्ट्या विमूढहृदयं मां प्रत्याययितुं कथा अन्तं गता। दिष्ट्या जगत् मिथ्या दूषितया अनया विरहितं न जातम् ।

अनुवाद– सौभाग्य से मैं आधी सुनी हुई वञ्चना की बात से उत्पन्न हुए क्रोध से भानुमती के समीप नहीं चला गया। अच्छा हुआ कि आधी बात कहने पर मैने कुछ कठोर वचन नहीं कहे। भाग्य से मुझ मूर्ख को विश्वास दिलाने के लिए कथा का अन्त भी हो गया। सौभाग्य है कि संसार मिथ्या दोषारोपण करने से इस (भानुमती) से वियुक्त नहीं हो गया।

व्याख्या– सौभाग्य से जड़बुद्धि दुर्योधन आधी बात सुन कर भानुमती के ऊपर परपुरुषगमन विषयक आरोप लगा कर क्रुद्ध नहीं हुए अन्यथा वह सदाचारिणी स्त्री मिथ्या दोष की ग्लानि से अपने प्राण दे देती। यह तुच्छ कलंक उसे निराशा से जीने नहीं देता।

पर्यायेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः।

शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्पृशतीव माम् ।। 14 ।।

अन्वयः– हि शुभाशुभाः स्वप्नाः पर्यायेण कामं दृश्यन्ते। इयं शतसंख्या पुनः सानुजं मां स्पृशतीव।

अनुवाद– यद्यपि शुभ और अशुभ फल देने वाले स्वप्न तो क्रमानुसार पर्याप्त दिखाई देते हैं परन्तु सौ की संख्या मानों अनुजों सहित मुझे छू रही है।

व्याख्या– तात्पर्य यह कि निद्रा में प्रायः शुभ अथवा अशुभ फल देने वाले स्वप्न दिखाई पड़ते हैं पर हम उन्हें गम्भीरता से नहीं लेते हैं। किन्तु इस स्वप्न में सौ की संख्या में सांपों का मारा जाना तो मानों हम सौ भाइयों को ही सूचित कर रही है।

ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तान्युपयाचितम् ।

फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न बिभ्यति ।। 15 ।।

अन्वयः– ग्रहाणां चरितं स्वप्नः अनिमित्तानि उपयाचितम् (एतानि सर्वाणि) काकतालीयं फलन्ति प्राज्ञाः तेभ्यः न बिभ्यति।

अनुवाद– ग्रहों की गति, स्वप्न, काकतालीय न्याय के अनुसार (संयोगवश) फल देती रहती हैं। विद्वान् लोग इनसे भयभीत नहीं होते हैं।

व्याख्या– काकतालीय न्याय–काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालम्, काकतालमिव काकतालीयम् यथा कौए के वृक्ष पर बैठते ही ताड़ के फल के गिरने से नीचे बैठे पथिक का यह समझना कि फल संयोग से नहीं, कौए के बैठने से गिरा है। कौए का बैठना और फल का गिरना हर बार नहीं होगा अतः स्वप्न आदि भी हर बार फल देने वाले ही हों यह आवश्यक नहीं है।

विकिर धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः

परिजनपथवर्तिन्यत्र किं सम्भ्रमेण।

स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोच्चैः

प्रभवति मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ।। 16 ।।

TESLA-013

अन्वयः– सम्भ्रमेण किम् । परिजनपथवर्तिनि अत्र धवलदीर्घापाङ्गसंसर्पि चक्षुः विकिर। देवि! मां स्मितमधुरम् उदारम् उच्चैः आलप। मम पाण्योः अञ्जलिः त्वां सेवितुं प्रभवति।

अनुवाद– घबराने से क्या? सेवक के मार्ग पर चलने वाले मुझ पर धवल, विशाल बरौनियों तक फैले नेत्रों वाली दृष्टि डालो। हे देवि! मुझसे मुस्कराहट से मधुर और उदारतापूर्ण स्पष्ट वार्तालाप करो। मेरे हाथों की अंजलि तुम्हारी सेवा के लिए प्रस्तुत है।

व्याख्या– दुर्योधन पतिपरायणा पत्नी का प्रेम देख कर विह्वल हो कर रानी भानुमती से प्रेमालाप और अनुग्रह आदि की याचना करता है।

किं नो व्याप्तदिशां प्रकम्पितभुवामक्षौहिणीनां फलं
किं द्रोणेन किमङ्गराजविशिखैरवं यदि क्लाम्यसि।
भीरु! भ्रातृशतस्य मे भुजवनच्छायासुखोपस्थिता
त्वं दुर्योधनकेसरीन्द्रगृहिणी शङ्कास्पदं किं तव ।। 17 ।।

अन्वयः– भीरु! यदि एवं क्लाम्यसि तर्हि न व्याप्तदिशां प्रकम्पितभुवाम् अक्षौहिणीनां किं फलं, द्रोणेन किं, अङ्गराजविशिखैः किम् ? त्वं मे भ्रातृशतस्य भुजवनच्छाया सुखोपस्थिता दुर्योधन केसरीन्द्र गृहिणी। तव किं शङ्कास्पदम् ।

अनुवाद– हे भयशीले! यदि तुम इस प्रकार दुःख करती हो तो दिशाओं में छा जाने वाली, भूमि को कंपा देने वाली चतुरंगिणी सेना का क्या फल है? आचार्य द्रोण से क्या लाभ हुआ? अंगदेश के राजा कर्ण के बाणों से भी क्या लाभ हुआ? तुम मेरे सौ भाइयों की भुजारूपी वन की छाया में सुख से बैठी हुई दुर्योधनरूपी सिंहराज की पत्नी हो। तुम्हें किस बात की शंका है?

व्याख्या– हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकों से युक्त सेना अक्षौहिणी कहलाती है। अभिप्राय यह कि दुर्योधन राज्य की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त तो है ही गर्वोन्मत्त भी है अतः उसे उचित-अनुचित का विवेक ही नहीं है।

प्रेमाऽऽबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं
लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा
वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाङ्काधरं वा
पातुं वाञ्छा परमसुलभं किं नु दुर्योधनस्य ।। 18 ।।

अन्वय– प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं लज्जायोगात् अविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा नियममुषितालक्तकाङ्काधरं वा ते वक्त्रेन्दुं पातुं वाञ्छा (दुर्योधनस्य अस्ति)। किं परं दुर्योधनस्य असुलभं नु अस्ति।

अनुवाद– प्रेम में आबिद्ध निश्चल नेत्रों से कमल की शोभा का पान करने वाले, लज्जा के कारण अस्पष्ट वचन वाले, मन्द-मन्द मुस्कराहट वाले अथवा व्रतपालन करने के कारण लाक्षारस विहीन अधरों वाले तुम्हारे मुखचन्द्र के चुम्बन की इच्छा है। इसके अतिरिक्त अन्य क्या दुर्योधन के लिए दुर्लभ है?

व्याख्या– कुरुराज दुर्योधन का दर्प और चाटुकारिता दोनों ही यहाँ व्यञ्जित हैं। पत्नी की चाटुकारिता कर दुर्योधन साक्षात् तो उसे प्रसन्न करने का प्रयास कर रहे हैं किन्तु अपरोक्षतः उनका दर्प प्रस्तुटित है कि कुरुराज के लिए सब कुछ सहज सुलभ है।

TESLA-013

दिक्षु न्यूढाङ्घ्रिपाङ्गस्तृणजटिलचलत्पांसुदण्डोऽन्तरिक्षे

झाङ्कारी शर्करालः पथिषु विटपिनां स्कन्धकाषैः सधूमः।

प्रासादानां निकुञ्जेष्वभिनवजलदोद्गारगम्भीरधीर–

श्चण्डारम्भः समीरो वहति परिदिशं भीरु! किं सम्भ्रमेण ।। 19 ।।

अन्वयः– भीरु! दिक्षु व्यूढाङ्घ्रिपाङ्गः अन्तरिक्षे, तृणजटिलचलत्पांशुदण्डः पथिषु झाङ्कारी शर्करालः विटपिनां स्कन्धकाषैः सधूमः प्रासादानां निकुञ्जेषु अभिनव जलदोद्गार-गम्भीर-धीरः चण्डारम्भः समीरः परिदिशं वहति। सम्भ्रमेण किम् ?

अनुवाद– हे भीरु! दिशाओं में फैली हुई वृक्षों की शाखाओं से युक्त, आकाश में तिनकों से व्याप्त दण्डाकार में धूल को उड़ाने वाला, मार्गों में झांय-झांय करता हुआ, कंकड़ियों से युक्त, वृक्षों की शाखाओं के रगड़ने से उत्पन्न धुएँ वाला, महलों के कुञ्जों में नवीन मेघ की गर्जना के समान धीर-गम्भीर ध्वनि वाला, प्रचण्ड पवन चारों ओर से बह रहा है। भयभीत होने की क्या आवश्यकता है?

व्याख्या– दुर्योधन पति है, पत्नी भानुमती की रक्षा पति का कर्त्तव्य है अतः वह प्रिय पत्नी को साहस दिला कर उसका भय दूर कर रहा है। कवि ने कुरुक्षेत्र में राजस्थान की ओर से आने वाले धूलिबवंडरों का सजीव वर्णन किया है।

व्यस्ता न भृकुटिर्न बाष्पसलिलैराच्छादिते लोचने

नीतं नाननमन्यतः सशपथं नाहं स्पृशन् वारितः।

तन्व्या मग्नपयोधरं भयवशादाबद्धमालिङ्गितं

भङ्क्तास्या नियमस्य भीषणमरुन्नायं वयस्यो मम ।। 20 ।।

अन्वय– तन्व्याः भृकुटिः न व्यस्ता, लोचने बाष्पसलिलैः न आच्छादिते, आननम् अन्यतः न नीतम्, स्पृशन् अहं सशपथं न वारितः, भयवशात् मग्नपयोधरम् आलिङ्गितम् आबद्धम् । अस्याः नियमस्य भङ्क्ता अयं भषिणमरुत् मम वयस्यः न (किम्)।

अनुवाद– इस तन्वङ्गी ने भौंहे टेढ़ी न कीं, नयनो को आंसुओं से न ढका, मुख को दूसरी ओर न घुमाया, स्पर्श करते हुए मुझे शपथ के साथ न रोका। भय के कारण पयोधरों को दबा कर आलिंगन में आबद्ध किया। इसके व्रत को भंग करने वाला यह वायु मेरा मित्र नहीं है क्या?

व्याख्या– पुरुष के प्रति नारी सुलभ लज्जा रमणी की शालीनता का सूचक है। कवि ने नारी की श्रृंगारिक लज्जा का मोहक चित्र यहाँ खीचा है।

कुरु घनोरु पदानि शनैः-शनैः-

रयि विमुञ्च गतिं परिवेपिनीम् ।

सुतनु बाहुलतोपरिबन्धनं

मम निपीडय गाढमुरः स्थलम् ।। 21 ।।

TESLA-013

अन्वयः– घनोरु! पदानि शनैः-शनैः कुरु! अयि परिवेपिनीं गतिं विमुञ्च। सुतनु! मम उरः स्थलं बाहुलतोपरिबन्धनं गाढं निपीडय।

अनुवाद– हे घनी जंघाओं वाली! चरण धीरे-धीरे रखो, अयि! लड़खड़ाने वाली चाल को छोड़ दो। हे सुन्दरि! मेरे वक्ष को अपनी भुजारूपी लता से बांध कर गाढ आलिंगन करो।

व्याख्या– कामप्रेरित दुर्योधन पत्नी के प्रति प्रेमासक्त हो कर उससे वार्तालाप कर रहा है। कवि ने कामशास्त्र के अनुसार स्त्री की प्रेमासक्त दशा का वर्णन दुर्योधन के मुख से कराया है।

रेणुर्बाधां विधत्ते तनुरपि महतीं नेत्रयोरायतत्वा-

दुत्कम्पोऽल्पोऽपि पीनस्तनभरितमुरः क्षिप्तहारं दुनोति।

ऊर्वोमन्देऽपि याते पृथुजघनभराद् वेपथुर्वर्धतेऽस्या

वात्या खेदं मृगाक्ष्याः सुचिरमवयवैर्दत्तहस्ता करोति ।। 22 ।।

अन्वयः– तनुः अपि रेणुः अस्या नयनयोः आयतत्वात् महतीं बाधां विधत्ते, अल्पः अपि उत्कम्पः पीनस्तनभरितम् उरः क्षिप्तहारं दुनोति, मन्दे अपि याते पृथुजघनभरात् ऊर्वोः वेपथुः वर्धते, मृगाक्ष्याः अवयवैः दत्तहस्ता वात्या सुचिरं खेदं करोति।

अनुवाद– थोड़ी भी धूल बड़े-बड़े नेत्र होने के कारण महान् कष्ट दे रही है। धीमा भी कम्पन स्थूल स्तनों से बोझिल वक्षस्थल को हार को उछालते हुए दुःख दे रहा है। धीरे-धीरे चलने पर भी स्थूल जघनों के भार के कारण जांघों का कम्पन पीड़ा दे रहा है। मृगनयनी के अंगों द्वारा सहायता प्राप्त आंधी (प्रिया को) अधिक समय तक कष्ट दे रही है।

व्याख्या– दुर्योधन का कथन आंधी के वर्णन के माध्यम से प्रिया के विशाल नेत्रों, स्थूल स्तनों, पीवर जंघाओं आदि के सौन्दर्य की सूचना दे रहा है।

लोलांशुकस्य पवनाकुलितांशुकान्तः

त्वद्दृष्टिहारि मम लोचनबान्धवस्य।

अध्यासितुं तव चिरं जघनस्थलस्य

पर्याप्तमेव करभोरु ममोरुयुग्मम् ।। 23 ।।

अन्वयः– करभोरु! पवनाकुलितांशुकान्तं त्वद् दृष्टिहारि मम उरुयुग्मं लोलांशुकस्य मम लोचनबान्धवस्य तव जघनस्थलस्य चिरम् अध्यासितुं पर्याप्तम् एव।

अनुवाद– हे सुन्दर जंघाओं वाली! वायु से अस्त-व्यस्त वस्त्र के छोर वाली और तुम्हारी दृष्टि को आकृष्ट करने वाली मेरी दोनों जांघें चंचल वस्त्र वाले और मेरे नेत्रों के लिए बन्धु सम प्रिय तुम्हारे जघनस्थल का चिरकाल तक आश्रय लेने के लिए समर्थ हैं।

व्याख्या– करभोरु! करभ (हथेली के कलाई और छोटी अंगुलि के बीच के भाग के समान सुचिक्कण) जांघों वाली अथवा हाथी की शुण्ड के समान चिकनी जांघों वाली।

भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम् ।

पतितं किङ्किणीक्वाणबद्धाक्रन्दमिव क्षितौ ।। 24 ।।

TESLA-013

अन्वयः– भीमेन मरुता भवतः रथकेतनं भग्नम् , किङ्किणीक्वाणबद्धक्रन्दम् इव क्षितौ पतितम् ।

अनुवाद– भयंकर पवन (पक्षान्तर में–वायुरुप भीम) ने आपके रथ की पताका तोड़ दी, वह बजती हुई छोटी-छोटी घंटियों के शब्द से मानो रोदन करते हुए पृथिवी पर गिर पड़ी।

व्याख्या– भीम वायु पुत्र हैं, 'आत्मा वै जायते पुत्रः' उक्ति प्रसिद्ध ही है अतएव यह श्लोक भयंकर पवन के माध्यम से भयंकर वायुरूप भीम के द्वारा दुर्योधन के अनिष्ट की पूर्वसूचना दे रहा है।

हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना दुःशासनेनाज्ञया

पाञ्चाली मम राजचक्रपुरतो गौर्गौरिति व्याहृता।

तस्मिन्नेव स किं नु गाण्डिवधरो नासीत् पृथानन्दनो

यूनः क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः क्रोधास्पदं किं न तत् ।। 25 ।।

अन्वयः– मम आज्ञया दुःशासनेन हस्ताकृष्टविलोलकेशवसना पाञ्चाली राजचक्रपुरुतः गौः गौः इति व्याहृता। तस्मिन् एव सः गाण्डिवधरः पृथानन्दनः किं नु न आसीत्। क्षत्रियवंशजस्य कृतिनः यूनः तत् क्रोधास्पदं न किम् ?

अनुवाद– मेरी आज्ञा से दुःशासन के द्वारा दोनों हाथों से खीचे गए चंचल केश तथा वस्त्र वाली द्रौपदी ने राजाओं के समूह के सामने 'गौ, गौ' यह उच्चारण किया था। उस समय क्या वह गाण्डीव धारी पृथापुत्र वहाँ नहीं था? क्या क्षत्रिय कुल में उत्पन्न उस युवक के लिए वह क्रोध का स्थान नहीं था?

व्याख्या– दुर्योधन की क्रूरता और अमानवीयता यहाँ परिलक्षित है–द्रौपदी ने 'मैं गाय सदृश निरीह और दया की पात्र हूँ' कह कर करुणा की याचना की थी पर दुर्योधन का हृदय न पिघला।

द्यूतक्रीडा व्यसनी पाण्डुपुत्र हार कर विरोध का अवसर गंवा चुके थे उन्हें क्रोध तो अवश्य आया होगा, परन्तु हार कर दासत्व स्वीकार कर लेने के कारण वे क्रोध प्रकट कर ही नहीं सकते थे।

धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति

मध्ये वृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन!

एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं

कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः ।। 26 ।।

अन्वयः– धर्मात्मजं यमौ च प्रति कथा एव नास्ति वृकोदरकिरीटभृतोः मध्ये एकः अपि कः विस्फुरितमण्डलचापचक्रं सिन्धुराजं बलेन अभिषेणयितुं समर्थः।

अनुवाद– युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव के विषय में तो कहना ही क्या है? भीम और अर्जुन में से क्या कोई एक भी चमकते हुए मण्डलाकार घनुष वाले सिन्धुराज जयद्रथ पर बल से आक्रमण करने में समर्थ है।

TESLA-013

व्याख्या– दर्प से भरा हुआ दुर्योधन पाण्डवों की सरल हृदयता और विवशता को न समझ कर उन्हें कायर और पराक्रमविहीन मान रहा है और आगत भविष्य के दुर्भाग्य के प्रति नितान्त लापरवाह सा व्यवहार कर रहा है।

कोदण्डज्याकिणाङ्कैरगणितरिपुभिः कङ्कटोन्मुक्तदेहैः

श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिमुत्पादयद्भिः।

रेणुग्रस्तार्कभासां प्रचलदसिलतादन्तुराणां बलाना–

माक्रान्ता भ्रातृभिर्मे दिशि दिशि समरे कोटयः संपतन्ति ।। 27 ।।

अन्वयः– रेणुग्रस्तार्कभासां प्रचलदसिलतादन्तुराणां बलानां कोटयः कोदण्डज्याकिणाङ्कैः अगणितरिपुभिः कङ्कटोन्मुक्तदेहैः श्लिष्टान्योन्यातपत्रैः सितकमलवनभ्रान्तिमुत्पादयद्भिः मे भ्रातृभिः आक्रान्ता समरे दिशि दिशि संपतन्ति।

अनुवाद– धूलि से सूर्य की किरणों को ढक लेने वाली चलती हुई असिलताओं से ऊँची-नीची लगने वाली करोड़ों सेनाएँ, धनुष की प्रत्यंचा के आघात के चिह्नों से युक्त शत्रुओं को कुछ न समझने वाले, कवच से रहित शरीर वाले परस्पर सटे हुए राजछत्रों से श्वेत कमलवन के भ्रम को उत्पन्न करने वाले मेरे भाइयों से आक्रान्त हो कर संग्राम में चारों ओर धराशायी हो रही हैं।

व्याख्या– दुर्योधन अपने पक्ष की प्रबलता दिखाने के लिए अपने अयोग्य किन्तु उद्दण्ड भ्राताओं की अतिरञ्जित प्रशंसा कर रहा है। युद्ध में सैनिकों का हताहत होना सहज है, इसे ही वह अपने वीर भाइयों का पराक्रम मान रहा है।

दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने

दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे।

तेजस्विनां समरमूर्धनि पाण्डवानां

ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ।। 28 ।।

अन्वयः– तेजस्विनां पाण्डवानां समरमूर्धनि दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने गदया दुर्योधनस्य उरुभङ्गे च यथा प्रतिज्ञा तथा जयद्रथवधे अपि ज्ञेया।

अनुवाद– तेजस्वी पाण्डवों की युद्धभूमि में दुःशासन के हृदय को विदीर्ण कर रक्तजल पान की तथा गदा से दुर्योधन की जंघा को तोड़ डालने की जैसी प्रतिज्ञा थी वैसी जयद्रथ के वध के विषय में भी समझनी चाहिए।

व्याख्या– युद्ध चल रहा है, पाण्डवों की उपर्युक्त दो प्रतिज्ञाएँ अभी तक सफल नहीं हुई हैं, अतः तृतीय प्रतिज्ञा को भी विफल ही जानो।

उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः

प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः।

सज्जोऽयं नियमितवल्गिताकुलाश्वः

शत्रूणां क्षपितमनोरथो रथस्ते ।। 29 ।।

अन्वयः– उद्घातक्वणितविलोलहेमघण्टः प्रालम्बद्विगुणितचामरप्रहासः नयमितवल्गिता कुलाश्वः शत्रूणां क्षपितमनोरथः अयं ते रथः सज्जः (अस्ति)।

अनुवाद– आघात लगने से शब्द करती हुई सोने की चंचल घंटियों वाला, लटकते हुए चामर से दुगने प्रकाश वाला, नियन्त्रित चाल के कारण व्याकुल अश्वों वाला और शत्रुओं के मनोरथों को नष्ट करने वाला आपका यह रथ तैयार है।

इति द्वितीयोऽङ्कः

3.4 बोध प्रश्न

1. प्रथम अंक के दूसरे, सातवें श्लोक की अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
2. प्रथम अंक के ग्यारहवें, बारहवें श्लोक की अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
3. प्रथम अंक के इक्कीसवें, चौबीसवें श्लोक की अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
4. प्रथम अंक के चौबीसवें, पच्चीसवें श्लोक की अन्वय, हिन्दी **अनुवाद** सहित **व्याख्या** कीजिए।
5. द्वितीय अंक के पहले, तीसरे श्लोक की अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
6. द्वितीय अंक के आठवें, नवें श्लोक की अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
7. द्वितीय अंक के उन्नीसवें, बीसवें श्लोक की अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
8. द्वितीय अंक के बाइसवें, सत्ताइसवें श्लोक की अन्वय, हिन्दी अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।
9. श्लोकों के अनुवाद के आधार पर प्रत्येक अंक का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

TESLA-013

TESLA-013

इकाई-4

तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ अंङ्क के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या एवं अनुवाद

इकाई की रुपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 तृतीय अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

4.3 चतुर्थ अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

4.4 पञ्चम अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

4.5 षष्ठ अङ्क के श्लोक

अन्वय

अनुवाद

व्याख्या

4.6 बोध प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत वेणीसंहार नाटक के तृतीय, चतुर्थ, पन्चम एवं षष्ठ अङ्कों के श्लोकों का अन्वय, हिन्दी व्याख्या एवं अनुवाद का अध्ययन प्रस्तावित है।

4.1 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप तृतीय अङ्क के श्लोकों का अनुवाद, अन्वय तथा व्याख्या कर पाएँगे।
- इसी प्रकार चतुर्थ, पन्चम एवं षष्ठ अंकों के श्लोकों का भी अन्वय, अनुवाद तथा व्याख्या कर पाएँगे।
- कथावस्तु को जान पाएँगे।

श्लोकों की हिन्दी व्याख्या अन्वय तथा अनुवाद (तृतीय अङ्क के पर)

तृतीयोऽङ्कः

हतमानुषमांसभोजने कुम्भसहस्रं वसाभिः संचितम् ।

अनिशं च पिबामि शोणितं वर्षशतं समरो भवतु ।। 1 ।।

अन्वयः– हतमानुषमांसभोजने वसाभिः कुम्भसहस्रं संचितम् । अनिशं च शोणितं पिबामि। समरः वर्षशतं भवतु।

अनुवाद– मारे गए मनुष्यों के मांस भोज के अवसर पर मैने वसा से हजारों घड़े भर लिए हैं, रातदिन रुधिर पी रही हूँ, (इसी प्रकार) सौ वर्ष तक युद्ध चलता रहे।

व्याख्या– युद्धादि निकृष्ट स्थितियों में निकृष्ट शक्तियाँ प्रबल हो जाती हैं। महाभारत का युद्ध तो विशालतम युद्ध था, राक्षसों आदि का जागृत हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक था।

प्रत्यग्रहतानां मांसं यद्युष्णं रुचिरं च लभ्यत।

तदेष मम परिश्रमः क्षणमात्रमेव लघु नश्येत् ।। 2 ।।

अन्वयः– यदि प्रत्यग्रहतानां मांसम् उष्णं रुधिरं च लभ्यत तत् एष मम परिश्रमः क्षणमात्रम् एव लघु नश्येत् ।

अनुवाद– यदि तत्काल मारे गए लोगों का मांस और उष्ण रक्त मिले तो मेरी यह थकान शीघ्र समाप्त हो जाए।

व्याख्या– राक्षसजाति की थकान इसी प्रकार के गर्हित भोजन से ही तो मिटेगी।

रुधिरासवपानमत्ते रणहिण्डनस्खलद्गात्रि।

शब्दायसे कस्मान्मां प्रिये पुरुषसहस्रं हतं श्रूयते ।। 3 ।।

अन्वय– रुधिरासवपानमत्ते रणहिण्डनस्खलद्गात्रि प्रिये, कस्मात् मां शब्दायसे। पुरुषसहस्रं हतं श्रूयते।

अनुवाद– हे रक्तरूपी मदिरा को पीने से मत्तवाली! युद्धभूमि में घूमने से शिथिल अंगों वाली! मुझे क्यों बुला रही है? हज़ारों पुरुष मारे गए सुने जाते हैं।

व्याख्या– महायुद्ध की भूमि में रक्त का पान और मांसादि का भोजन राक्षसों का प्रिय है, अतः राक्षस को युद्धभूमि जाने की शीघ्रता है, वहाँ पर्याप्त भोजन मिलेगा।

महाप्रलयमातक्षुभितपुष्करावर्तक–

प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः।

रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः

कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ।। 4 ।।

अन्वयः–अद्य (मम) पुरः महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तकप्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी स्थगितरोदसीकन्दरः श्रवणभैरवः अयम् अभूतपूर्वः रवः समरोदधे कुतः मुहुः (भवति)।

अनुवाद– आज मेरे सामने महाप्रलयकारी वायु से संचालित पुष्कर तथा आवर्तक नामक मेघों के भयंकर-गम्भीर गर्जना की प्रतिध्वनि का अनुकरण करने वाला पृथिवी तथा आकाश की कन्दराओं में व्याप्त हो जाने वाला यह अभूतपूर्व शब्द युद्धरूपी समुद्र से क्यों बार-बार उठ रहा है?

व्याख्या– पुष्कर तथा आवर्तक मेघ उत्पातकारी कहे गए हैं–

पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह कीर्तिताः। नानारुपधराश्चैव महाघोरस्वनाश्च ते।। ब्रह्माण्डपुराण, 58

यद् दुर्योधनपक्षपातसदृशं युक्तं यदस्त्रग्रहे

रामाल्लब्धसमस्तहेतिगुरुणो वीर्यस्य यत्साम्प्रतम् ।

लोके सर्वधनुष्मतामधिपतेर्यच्चानुरूपं रुषः

प्रारब्धं रिपुघस्मरेण नियतं तत्कर्म तातेन मे ।। 5 ।।

अन्वयः– यद् दुर्योधनपक्षपातसदृशम्, यद् अस्त्रग्रहे युक्तं, यत् रामात् लब्धसमस्तहेतिगुरुणः वीर्यस्य साम्प्रतं, यत् च लोके सर्वधनुष्मताम् अधिपतेः रुषः अनुरूपं, तत् कर्म रिपुघस्मरेण मे तातेन नियतं प्रारब्धम् ।

अनुवाद– जो दुर्योधन के प्रति पक्षपात के अनुरूप है, जो अस्त्र उठा लेने पर उचित है, जो परशुराम से प्राप्त की गई सकल शस्त्रविद्या के गौरव के योग्य है, और जो संसार में समस्त धनुर्धारियों के स्वामी के क्रोध के अनुकूल है, वह कर्म शत्रुओं का संहार करने वाले मेरे पिता ने निश्चित ही आरम्भ कर दिया है।

व्याख्या– एक अन्तर्कथा के अनुसार दानी परशुराम से द्रोणाचार्य को अस्त्रविद्या दान में मिली थी अतः यहाँ अश्वत्थामा कह रहे हैं कि ब्राह्मण होते हुए भी मेरे पिता ने अस्त्र ग्रहण किए, तब अपनी सामर्थ्यानुसार युद्ध करना उनके लिए उचित ही है।

TESLA-013

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो-

र्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।

अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः

किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ।। 6 ।।

अन्वयः– यदि समरम् अपास्य मृत्योः भयं न अस्ति इति इतः अन्यतः प्रयातुं युक्तम् । अथ जन्तोः मरणम् अवश्यम् एव। किमिति यशः मुधा मलिनं कुरुध्वे।

अनुवाद– यदि युद्ध को छोड़ कर मृत्यु का भय नहीं हो तो युद्धभूमि से अन्यत्र पलायन उचित है, किन्तु प्राणी की मृत्यु अवश्यम्भावी है तो फिर यश को व्यर्थ क्यों कलंकित कर रहे हो?

व्याख्या– 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च'–श्रीमद्भगवतगीता की इसी पंक्ति का आश्रय लेकर अश्वत्थामा वीर सैनिकों को प्रेरित करते हैं। वे कहते हैं कि युद्ध से भाग कर मृत्यु से बचना सम्भव नहीं, मृत्यु कहीं न कहीं तुम्हें अवश्य घेरेगी, अतः युद्ध में मरना श्रेयस्कर होगा।

अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे

सेनानाथे स्थितेऽस्मिन् मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।

कर्णालं सम्भ्रमेण व्रज कृप समर मुञ्च हार्दिक्य शङ्कां

ताते चापद्वितीये वहति रणधुरं कोभयस्वावकाशः ।। 7 ।।

अन्वयः– अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेः अन्तः और्वायमाणे सर्वधन्वीश्वराणां गुरौ मम अस्मिन् पितरि सेनानाथे स्थिते (सति) कर्ण! अलं सम्भ्रमेण। कृप! समरं व्रज। हार्दिक्य! शङ्कां मुञ्च। चापद्वितीये ताते रणधुरं वहति कः भयस्य अवकाशः।

अनुवाद– अस्त्रों रूपी ज्वालाओं से आक्रान्त, शत्रुसेना रूपी सागर के मध्य बड़वानल की भाँति विचरण करने वाले, समस्त श्रेष्ठ धनुर्धारियों के गुरु मेरे इन पिता के सेनापति रहते हुए, हे कर्ण! घबराओ नहीं। हे कृपाचार्य! युद्धभूमि को जाओ। हे हृदिकापुत्र कृतवर्मन् ! भय को त्याग दो। धनुष मात्र सहायक वाले पिता वे युद्ध का भार ग्रहण करने पर भय के लिए अवसर कहाँ?

व्याख्या– और्व अर्थात् बड़वानल, ऊर्व ऋषि का पुत्र समुद्र के मध्य बडवा अर्थात् घोड़ी के मुख में अवस्थित हो कर अग्नि को जलाता है अतः बडवानल कहलाता है।

दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का

वाता वाता दिशि दिशि न वा सपृथा सप्त भिन्नाः।

छन्नं मेघैर्न गगनतलं पुष्करावर्तकाद्यैः

पापं पापाः कथयत कथं शौर्यराशेः पितुर्मे ।। 8 ।।

TESLA-013

अन्वयः– द्वादशार्काः दहनकिरणैः विश्वं दग्धुं न उदिताः। सप्तधा भिन्नाः सप्त वाताः वा दिशि दिशि न वाताः। पुष्करावर्तकाद्यैः मैघैः गगनतलं न छन्नम् । पापाः ! शौर्यराशेः मे पितुः कथं पापं कथयत।

अनुवाद– बारह सूर्य जलाने वाली किरणों से संसार को भस्म करने के लिए उदित नहीं हुए हैं। उनचास पवन सभी दिशाओं में नहीं बह रहे हैं। पुष्कर और आवर्तक मेघों ने आकाश को आच्छादित नहीं किया है। अरे पापियों! वीरवर मेरे पिता के विषय में (मृत्यु) कैसे बता रहे हो?

व्याख्या– द्वादश सूर्य–धाता, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान् , पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु।

सप्तधा भिन्नाः सप्त वाताः–सात प्रकार की सात वायु–उनचास वायु

अश्वत्थामा को विश्वास है कि उसके पराक्रमी पिता का अन्त केवल प्रलयकाल ही कर सकता है। अन्य किसी काल में कोई ऐसा अद्वितीय योद्धा न होगा जो पिता से श्रेष्ठ हो, जो उनका वध कर सके।

किं भीमाद् गुरुदक्षिणां गुरुगदां भीमप्रियः प्राप्तवान्

अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनासादितो जिष्णुना।

गोविन्देन सुदर्शनस्य निशितं धारापथं प्रापितः

शङ्के नापदमन्यतः खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम् ।। 9 ।।

अन्वयः– भीमप्रियः (तातः) भीमात् गुरुगदां गुरुदक्षिणां प्राप्तवान् किम् ? अन्तेवासिदयालुः (असौ) उज्झितनयेन जिष्णुना आसादितः (किम्)? गोविन्देन (असौ) सुदर्शनस्य निशितं धारापथं प्रापिताः (किम्)? एभ्यः अन्यतः चतुर्थात् अहं गुरोः आपदं न शङ्के खलु।

अनुवाद– क्या भीम से प्रेम करने वाले पिता ने भी की भीम गदा से (स्वर्गरूपी) गुरुदक्षिणा प्राप्त कर ली? क्या शिष्यों के प्रति दयालु पिता नीति का परित्याग करने वाले अर्जुन के द्वारा मारे गए? क्या कृष्ण ने सुदर्शन चक्र की तीक्ष्ण धार के मार्ग पर पहुँचा दिया? इन तीनों के अतिरिक्त चौथे किसी व्यक्ति से मैं पिता की मृत्यु की आशंका निश्चित रूप से नहीं करता हूँ।

एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणेः

किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति संख्ये।

शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्रं

त्यक्तं तदास्य विहितं रिपुणातिघोरम् ।। 10 ।।

TESLA-013

अन्वयः– एतेऽपि धूर्जटेः इव महास्त्रपाणेः कुपितस्य तस्य संख्ये तुलाम् उपयान्ति किम् ? तु यदा शोकोपरुद्धहृदयेन तेन शस्त्रं व्यक्तं तदा रिपुणा अस्य अतिघोरं विहितम् ।

अनुवाद– ये (भीम, अर्जुन आदि) युद्ध में शिव के समान हाथ में महान् अस्त्र धारण करने वाले क्रुद्ध पिता की बराबरी कर सकते हैं क्या? किन्तु जब शोक व्यथित हृदय वाले (उन्होंने) शस्त्र त्याग दिया, तब शत्रु ने उनका विनाश कर दिया।

व्याख्या– युधिष्ठिर के मुख से अश्वत्थामा की मृत्यु का मिथ्या समाचार सुन कर आचार्य द्रोण ने शोकवश अस्त्रत्याग दिया। अवसर का लाभ उठा निःशस्त्र द्रोण को धृष्टद्युम्न ने मार दिया।

अश्वत्थामा हत इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा

स्वैरं शेषे गज इति किल व्याहृतं सत्यवाचा।

तच्छ्रुत्वासौ दयित तनयः प्रत्ययात् तस्य राज्ञः

शस्त्राण्याजौ नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच ।। 11 ।।

अन्वय– सत्यवाचा पृथासूनुना 'अश्वत्थामा हतः' इति स्पष्टम् उक्त्वा शेषे 'गजः' इति स्वैरं व्याहृतं किल। तत् श्रुत्वा तस्य राज्ञः प्रत्ययात् दयिततनयः असौ आजौ शस्त्राणि नयनसलिलं चापि तुल्यं मुमोच।

अनुवाद– सत्यवक्ता युधिष्ठिर ने 'अश्वत्थामा मारा गया' यह स्पष्ट कह कर अन्त में 'हाथी' यह धीरे से कहा। उसे सुन कर उस राजा युधिष्ठिर के विश्वास से पुत्रप्रेमी उन्होंने संग्राम में शस्त्रों और आंसुओं को एक साथ ही छोड़ दिया।

व्याख्या– अश्वत्थामा हतः, नरो वा कुञ्जरो वा–महाराज युधिष्ठिर की सत्यवादिता पर विश्वास करके आचार्य द्रोण ने पुत्रशोक से विह्वल हो कर धनुष का परित्याग कर दिया था। उनके जीवित रहते कौरवों पर विजय असंभव थी। अतः कृष्ण की योजनानुसार छलपूर्वक उन्हें मारा गया।

श्रुत्वा वधं मम मृषा सुतवत्सलेन

तात त्वया सह शरैरसवो विमुक्ताः।

जीवाम्यहं पुनरहो भवता विनापि

क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपातः ।। 12 ।।

अन्वयः– तात! मम मृषा वधं श्रुत्वा सुतवत्सलेन त्वया शरैः सह असवः विमुक्ताः। अहं पुनः अहो भवता विनापि जीवामि। तत् क्रूरे अपि मयि तव मुधा पक्षपातः आसीत् ।

अनुवाद– हे पिता! मेरे वध का असत्य समाचार सुनकर पुत्र स्नेह से आपने बाणों के साथ-साथ प्राण भी त्याग दिए। मैं फिर भी आपके बिना भी जीवित हूँ। उस क्रूर स्वभाव वाले मुझ पर आप व्यर्थ ही स्नेह करते थे।

व्याख्या– अश्वत्थामा पितृशोक से विह्वल हो विलाप कर रहे हैं कि कहाँ इतना अधिक आपका स्नेह और कहाँ मैं। आपने मेरे लिए प्राणों की चिन्ता नहीं की और मैं इस संसार में जीवित विचर रहा हूँ।

धिक्सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं

धिग्भूपतीन् विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।

केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया

द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ।। 13 ।।

अन्वयः– सानुजं कुरुपतिं धिक्, अजातशत्रुं धिक्, भूपतीन् धिक्, विफल शस्त्रभृतः धिक् अस्मान्, यैः लिखितैः इव तदा द्रुपदात्मजायाः अद्य द्रोणस्य च केशग्रहः वीक्षितः खलु।'

अनुवाद– भाइयों सहित दुर्योधन को धिक्कार, युधिष्ठिर को धिक्कार, राजाओं को धिक्कार, निष्फलशस्त्र धारण करने वाले हम लोगों को धिक्कार, जिन्होंने चित्रलिखित की तरह उस द्रौपदी का और आज द्रोणाचार्य का बाल पकड़ कर खींचना देखा है।

व्याख्या– कृपाचार्य अश्वत्थामा को सान्त्वना देते हुए सम्पूर्ण राजसभा की लांछना कर रहे हैं कि हम इतने पतित हो चुके हैं कि न तो एक स्त्री के शील की रक्षा कर सके और न एक वयोवृद्ध गुरु के सम्मान को सुरक्षित रख सके।

एकस्य तावत्पाकोऽयं दारुणो भुवि वर्तते।

केशग्रहे द्वितीयेऽस्मिन् नूनं निःशेषिताः प्रजाः ।। 14 ।।

अन्वयः– एकस्य तावत् अयं दारुणः पाकः भुवि वर्तते, अस्मिन् द्वितीये केशग्रहे नूनं प्रजाः निःशेषिताः।

अनुवाद– एक केशग्रहण (द्रौपदी) का तो भयंकर परिणाम यह महाभारत पृथिवी पर हो रहा है, अब इस द्वितीय केशग्रहण (द्रोणाचार्य) से तो प्रजा का विनाश निश्चित है।

व्याख्या– गुरु और स्त्री का अपमान निकृष्टतम मनोवृत्ति है, उसके ये दुष्परिणाम सामने भयंकर रूप ले कर उपस्थित हैं और भविष्य को भी दुःखद बनाते रहेंगे।

आ जन्मनो न वितथं भवता किलोक्तं

न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रुः।

ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषात्

सर्वं तदेकपद एवं कथं निरस्तम् ।। 15 ।।

अन्वयः– भवता आ जन्मनः वितथं न उक्तं किल यत् जनं न द्वेक्षि अतः त्वम् अजातशत्रुः गुरौ द्विजवरे मम ताते भाग्यदोषात् एकपदे एव सर्वं कथं निरस्तम् ।

अनुवाद– आपने जन्म से कभी असत्य भाषण नहीं किया, किसी से कभी भी द्वेष नहीं किया अतः अजातशत्रु हो कर भी आचार्य, श्रेष्ठ ब्राह्मण और मेरे पिता के विषय में भाग्यदोष से एकसाथ ही यह सब कैसे त्याग दिया।

TESLA-013

व्याख्या– अश्वत्थामा युधिष्ठिर को लक्ष्य करके एकाकी विलाप कर रहे हैं, युधिष्ठिर के श्रेष्ठ गुणों से वे परिचित हैं अतः उन्हें आश्चर्य हो रहा है कि इतने श्रेष्ठ आचार-विचार वाला व्यक्ति भी क्या 'मृत्यु' जैसा भयंकर असत्य बोल सकता है, वह भी सम्मान्य गुरुजन को वञ्चित करने के लिए।

गतो येनाद्य त्वं सह रणभुवं सैन्यपतिना

य एकः शूराणां गुरुसमर कण्डूनिकषणः।

परिहासाश्चित्राः सततमभवन् येन भवतः

स्वसुः श्लाघ्यो भर्ता क्व नु खलु स ते मातुल गतः ।। 16 ।।

अन्वयः– येन सैन्यपतिना सह अद्य त्वं रणभुवं गतः, यः एकः (एव) शूराणां गुरुसमर कण्डूनिकषणः, येन भवतः चित्राः परिहासाः सततम् अभवन् , सः ते स्वसुः श्लाघ्यः भर्ता, मातुल! क्व नु खलु गतः।

अनुवाद– जिन सेनापति के साथ आज आप युद्धभूमि को गए थे, जो अकेले ही वीरों की उत्कृष्ट युद्धों की खुजली को दूर कर देते थे, जिनके साथ आप विभिन्न प्रकार के हंसी-मज़ाक हमेशा करते थे, वह आपके भगिनी पति, प्रशंसनीय स्वामी हे मामा! कहाँ चले गए?

व्याख्या– भारत में भगिनी पति (जीजा) और भगिनीभ्राता (साले) का सम्बन्ध मित्रता और माधुर्य से परिपूर्ण माना जाता है। वे समवयस्क होने से एक-दूसरे के दुःख-सुख के साथी होते हैं। एक की मृत्यु दूसरे के लिए अत्यन्त कष्टदायी होती है।

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः ।

करोम्यविरहं तस्य वत्सलस्य सदा पितुः ।। 17 ।।

अन्वयः– तातः मद्वियोगभयात् इतः परलोकं गतः। अहं तस्य वत्सलस्य पितुः विरहं सदा करोमि ।

अनुवाद– पिता मेरे वियोग के भय से यहाँ से परलोक को चले गए। मैं उन पुत्रप्रेमी पिता के अभाव को सदा अनुभव करूँगा।

व्याख्या– माता-पिता की छत्रछाया बड़ी सुखद होती है, उनका अभाव व्यक्ति को आजीवन कष्ट देता है, यह नितान्त स्वाभाविक है।

निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः।

तस्योपकारे शक्तस्त्वं किं जीवन् किमुतान्यथा ।। 18 ।।

अन्वयः– निवापाञ्जलिदानेन केतनैः श्राद्धकर्मभिः तस्य उपकारे त्वं किं जीवन् (शक्तः) किम् उत? अन्यथा शक्तः।

अनुवाद– जलाञ्जलिदान (तर्पण), ब्राह्मणभोजन और श्राद्धकर्म आदि के द्वारा उनका उपकार करने में तुम जीवित रह कर अथवा प्राणत्याग कर समर्थ हो?

व्याख्या– निवापाञ्जलि–अंजलि में जल और तिल लेकर पितरों के उद्देश्य से छोड़ना पुत्र की पुत्रता स्मृति में तीन प्रकार की कही गई है–1. पिता के जीवित रहते उनकी आज्ञापालन, 2. मृत्यु पश्चात् श्राद्ध-तर्पण आदि करना, 3. गया में पिण्डदान करना। भाव यह कि पिता की सद्गति के लिए अश्वत्थामा को जीवित रह कर ये समग्र कार्य निबटाने होंने, मर कर तो यह दायित्व पूरे नहीं हो सकते।

गृहीतं येनासीः परिभवभयान्नोचितमपि

प्रभावाद्यस्याऽसन्नि खलु तव कश्चिन्न विषयः।

परित्यक्तं येन त्वमसि सुतशोकान्न तु भयाद्

विमोक्ष्ये शस्त्रं त्वामहमपि यतः स्वस्ति भवते ।। 19 ।।

अन्वयः– येन (त्वं) नोचितमपि परिभवभयात् गृहीतम् आसीः यस्य प्रभावात् तव खलु कश्चित् न विषयः न अभूत् , येन त्वं सुतशोकात् परित्यक्तम् असि न तु भयात् । शस्त्र! अहम् अपि त्वां विमोक्ष्ये, यतः भवते स्वस्ति।

अनुवाद– जिन पिता ने उचित न होते हुए भी तिरस्कार के भय से तुम्हें धारण किया था, जिसके प्रभाव से तुम्हारा कोई लक्ष्य न बन सका, ऐसा नहीं है, जिन्होंने तुम्हें पुत्रशोक से त्याग दिया न कि भय से। हे शस्त्र! मैं भी तुम्हें त्याग दूंगा, जिससे तुम्हारा कल्याण हो।

व्याख्या– तात्पर्य यह कि द्रोणाचार्य ने ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध राजा द्रुपद के द्वारा प्राप्त अपमान की प्रतिक्रिया स्वरूप शस्त्र ग्रहण किया था। 'कश्चित् न विषय न'–दो न दृढता को सूचक हैं अर्थात् उनके सन्धान से समग्र संसार तुम्हारा अचूक लक्ष्य बना हुआ था।

आचार्यस्य त्रिभुवनगुरोर्न्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्

द्रोणस्याऽऽजौ नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य।

मौलौ पाणिं पलितधवले न्यस्य कृत्वा नृशंसं

धृष्टद्युम्नः स्वशिविरमयं याति सर्वे सहध्वम् ।। 20 ।।

अन्वयः– आजौ न्यस्तशस्त्रस्य त्रिभुवनगुरोः शोकात् नयनसलिलक्षालितार्द्राननस्य आचार्यस्य द्रोणस्य पलितधवले मौलौ पाणिं न्यस्य नृशंसं कृत्वा अयं धृष्टद्युम्नः स्वशिविरं याति, सर्वे (यूयं) सहध्वम् ।

अनुवाद– युद्ध में शस्त्र का त्याग किये हुए, तीनो लोकों के गुरु, आंसुओं के जल से धुले हुए गीले मुख वाले आचार्य द्रोण के वृद्धावस्था के कारण सफ़ेद सिर पर हाथ रख कर विनाश करके यह धृष्टद्युम्न अपने शिविर को जा रहा है, तुम सब (कैसे) सहन कर रहे हो।

व्याख्या– निःशस्त्र, सम्मान्य, दुःखी और वृद्ध आचार्य द्रोण का शिरच्छेद कर यह अत्याचारी धृष्टद्युम्न जा रहा है और तुम लोग शान्त हो कर देख रहे हो।

TESLA-013

प्रत्यक्षमात्तधनुषां मनुजेश्वराणां

प्रायोपवेशसदृशं व्रतमास्थितस्य।

तातस्य मे पलितमौलिनिरस्तकाशे

व्यापारितं शिरसि शस्त्रमशस्त्रपाणेः ।। 21 ।।

अन्वयः– आत्तधनुषां मनुजेश्वराणां प्रत्यक्षं प्रायोपवेशसदृशं व्रतम् आस्थितस्य अशस्त्रपाणेः मे तातस्य पलितमौलिनिरस्तकाशे शिरसि शस्त्रं व्यापारितम् ।

अनुवाद– धनुष धारण किए हुए राजाओं के सामने आमरण अनशन का व्रत लिए हुए और शस्त्रविहीन हाथों वाले मेरे पिता के शुभ्र केशों से काश के पुष्प को पराजित करने वाले सिर पर शस्त्र प्रहार किया।

व्याख्या– कुरुवंश के पक्ष में प्राणार्पण का व्रत लेने वाले, निःशस्त्र पिता के वृद्धत्व का भी ध्यान न करके उनका वध कर दिया गया, यह तो अत्यन्त अनुचित है, युद्ध के नियमों का अतिक्रमण है।

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकान्धमनसा

शिरःश्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत् ।

स्फुरद्दिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपो–

र्ममैवायं पादः शिरसि निहितस्तस्य न करः ।। 22 ।।

अन्वयः– रणशिरसि शोकान्धमनसा देहे परित्यक्ते श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा शिरः परिमृशेत् । स्फुरद्दिव्यास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य रिपोः अयं पादः एव मम शिरसि निहितः च तस्य करः न।

अनुवाद– युद्ध में शोक से उन्मत्त मन से शरीर त्याग देने पर कुत्ता या कौआ या द्रुपद का पुत्र कोई भी सिर को छुए। चमकते हुए दिव्य अस्त्र समूह रूपी धन मद से मदमत्त उस शत्रु धृष्टद्युम्न का यह पैर ही मेरे सिर पर रखा गया न कि हाथ।

व्याख्या– किसका साहस कि जीवित रहते पिता का स्पर्श भी कर सके, मृत्यु के पश्चात् तो कुत्ता, कौआ या मनुष्य कोई भी छुए। पिता का अपमान मेरा ही अपमान है।

वातं शस्त्रग्रहणविमुखं निश्चयेनोपलभ्य

त्यक्त्वा शङ्कां खलु विदधतः पाणिमस्योत्तमाङ्गे ।

अश्वत्थामा कर धृतधनु पाण्डुपाञ्चालसेना–

तूलोत्क्षेपप्रलयपवनः किं न यातः स्मृतिं ते ।। 23 ।।

अनुवाद– शस्त्र ग्रहण से विमुख पिता को निश्चित रूप से जानकर, निःशंक होकर उनके सिर पर हाथ रखते हुए तुझे हाथ में धनुष लिए हुए पाण्डवों तथा पाञ्चाल राजाओं की

सेना रूपी रुई को उड़ा देने वाला प्रलयकालीन वायु रूपी अश्वत्थामा क्या याद नहीं आया?

व्याख्या– पुत्र ही पिता के अपमान का बदला ले सकता है। अश्वत्थामा कहते हैं कि पिता के वध का बदला मैं लूंगा। मैं वीर पिता का वीर पुत्र हूँ।

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरु पातकं

मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः।

नरकरिपुणा सार्धं तेषां सभीमकिरीटिना–

मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ।। 24 ।।

अन्वयः– यैः मनुजपशुभिः निर्मर्यादैः उदायुधैः भवद्भिः इदं गुरुपातकं कृतम् अनुमतं दृष्टं वा नरकरिपुणा सार्धं सभीमकिरीटिनां तेषाम् असृङ्मेदोमांसैः अयम् अहं दिशां बलिं करोमि।

अनुवाद– नरपशु, अमर्यादित, शस्त्रधारी आप लोगों के द्वारा यह भीषण पाप किया गया, अनुमति दी गई अथवा देखा गया, उन (नरकासुर शत्रु) कृष्ण, भीम और अर्जुन सहित सभी के रक्त, मज्जा, मांस से मैं अश्वत्थामा दिशाओं को बलि चढ़ाता हूँ।

व्याख्या– निःशस्त्र व्यक्ति पर शस्त्रधारी व्यक्तियों द्वारा शस्त्रप्रहार शोभा नहीं देता है, जिसने यह पाप किया है उसे मैं अवश्य मारुँगा।

पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना

कृतं यद्रामेण श्रुतिमुपगतं तन्न भवताम् ।

किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासार विघसं

न कर्म क्रोधान्धः प्रभवति विधातुं रणमुखे ।। 25 ।।

अन्वयः– पितुः मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना रामेण यत् कृतम्, तद् भवतां श्रुति न उपगतम् ? क्रोधान्धः अश्वत्थामा अद्य रणमुखे अरिरुधिरासार विघसं तत् कर्म विधातुं न प्रभवति किम् ?

अनुवाद– पिता (जमदग्नि) के सिर को छूने पर जलती हुई अग्नि के समान चमकते हुए परशु वाले परशुराम ने जो किया था, वह क्या आप लोगों ने नहीं सुना है? आज क्रोधान्ध अश्वत्थामा युद्धभूमि में शत्रुओं के रक्त की धारा रूपी आहारविशेष वाले उस कर्म को करने में क्या समर्थ नहीं है?

व्याख्या– सहस्रबाहु राजा कार्तवीर्य ने जमदग्नि के आश्रम में कामधेनु के दुग्ध आदि पदार्थों से तृप्त हो कर मुनि से कामधेनु को मांगा। ऋषि के मना करने पर उन्होंने उनका वध कर दिया। क्रोध में पुत्र परशुराम ने सम्पूर्ण क्षत्रियवंश का ही समूल नाश कर दिया। उसी प्रकार मैं भी पिता के वध का प्रतिशोध लेने के लिए सम्पूर्ण पाण्डववंश का नाश कर दूँगा, यह अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा है।

TESLA-013

भवेदभीष्मद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथम् ।

यदि तत्तुल्यकर्माऽत्र भवान् धुरि न युज्यते ।। 26 ।।

अन्वयः– यदि तत्तुल्यकर्मा भवान् अत्र धुरि न युज्यते (तदा) अभीष्मम् अद्रोणं धार्तराष्ट्रबलं कथं (रक्षितं) भवेत् ?

अनुवाद– यदि उन (भीष्म तथा द्रोण) के समान कर्म करने वाले आप को इस युद्ध में सेनापति पद पर आसीन नहीं किया जाता है तो भीष्म तथा द्रोण से रहित कौरव सेना कैसे रक्षित होगी?

व्याख्या– अश्वत्थामा वीर पिता के वीरपुत्र थे अतएव भीष्म तथा द्रोण सदृश महान् सेनापतियों की मृत्यु के पश्चात् अश्वत्थामा को ही सेनापति पद पर अभिषिक्त किया जाना उचित था।

तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं

बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम् ।

आचार्यः सुतनिधनं निशम्य संख्ये

किं शस्त्रग्रहसमये विशस्त्र आसीत् ।। 27 ।।

अन्वयः–तेजस्वी धृतायुधप्लवाभ्यां बाहुभ्यां रिपुहतबन्धुदुःखपारं व्रजति। संख्ये आचार्यः सुतनिधनं निशम्य शस्त्रग्रहसमये किं विशस्त्रः आसीत् ?

अनुवाद–अंगराज! तेजस्वी पुरुष आयुध रूपी नाव हाथों में लेकर भुजाओं से शत्रु के द्वारा मारे गए कुटुम्बियों के दुःख को पार किया करता है। तब आचार्य युद्ध में पुत्र की मृत्यु सुन कर शस्त्रग्रहण के अवसर पर शस्त्र से विहीन क्यों हो गए थे?

व्याख्या–किसी सम्बन्धी के मारे जाने का समाचार सुनकर योद्धा शस्त्र नहीं त्याग देता है अपितु क्रोध में मर कर शस्त्र उठा कर उसका हत्यारे वध कर देता है और इस प्रकार अपने क्रोध को शान्त करता है। पर आचार्य ने तो ऐसा नहीं किया, अतः निःशस्त्र होने पर तो अपनी रक्षा असंभव थी।

दत्त्वाऽभयं सोऽतिरथो वध्यमानं किरीटिना।

सिन्धुराजमुपेक्षेत नैवं चेत् कथमन्यथा ।। 28 ।।

अन्वयः– चेत् एवं न (तदा) अतिरथः स अभयं दत्त्वा किरीटिना वध्यमानं सिन्धुराजम् अन्यथा कथम् उपेक्षेत।

अनुवाद– यदि ऐसी बात न होती तो वह महारथी द्रोण जयद्रथ को अभय देकर अर्जुन द्वारा वध किए जाते हुए उसकी उपेक्षा क्यों करते?

व्याख्या– अतिरथः–अमितान् योधयेद् यस्तु वीरान् सोऽतिरथः स्मृतः, जो असंख्य वीरों को लड़ावे, वह अतिरथ कहलाता है।

एह्यस्मदर्थतात परिष्वजस्व

क्लान्तैरिमैर्मम निरन्तरमङ्गमङ्गैः।

स्पर्शस्तवैष भुजयोः सदृशः पितुस्ते

शोकेऽपि नो विकृतिमेति तनूरुहेषु ।। 29 ।।

अन्वयः– अस्मदर्थहततात! एहि, इमैः क्लान्तैः अङ्गैः मम अङ्गं निरन्तरं परिष्वजस्व। ते पितुः सदृशः एव तव भुजयोः स्पर्शः शोकेऽपि नः तनूरुहेषु विकृतिम् एति।

अनुवाद– हे हमारे लिए पितृवध सहने वाले! आओ, इन थके हुए अंगों से मेरे अंगों का गाढ आलिंगन करो। तुम्हारे पिता के सदृश तुम्हारी भुजाओं का स्पर्श शोक में भी हमारे शरीर को रोमांचित कर देता है।

व्याख्या– दुर्योधन अश्वत्थामा को सान्त्वना देते हुए उसका सम्मान कर रहा है। पिता के गुण पुत्र में अवतरित होते ही हैं अतः द्रोणपुत्र अश्वत्थामा का वीरोचित सम्मान होना ही चाहिए।

तातस्तव प्रणयवान् स पितुः सखा मे

शस्त्र यथा तव गुरुः स तथा ममापि।

किं तस्य देहनिधने कथयामि दुःखं

जानीहि तद् गुरुशुचा मनसा त्वमेव ।। 30 ।।

अन्वयः– सः तव प्रणयवान् तातः मे पितुः सखा, शस्त्रे सः यथा तव गुरुः तथा मम अपि। तस्य देहनिधने दुःखं किं कथयामि? तद् गुरुशुचा मनसा त्वमेव जानीहि।

अनुवाद– वे तुम्हारे स्नेही पिता मेरे पिता के मित्र थे, शस्त्रविद्या में जैसे वे तुम्हारे गुरु थे वैसे ही मेरे भी, उनका शरीरान्त हो जाने पर दुःख को क्या कहूँ? उसे अत्यधिक दुःखी मन वाले तुम ही समझो।

व्याख्या– दुर्योधन पिता की मृत्यु से दुःखित अश्वत्थामा को सान्त्वना देते हुए कहता है कि तुम्हारे पिता की मृत्यु मेरे लिए भी उतनी ही दुःखद है जितना कि तुम्हारे लिए। मेरा भी उनसे मेरे पिता के समय से ही प्रगाढ़ सम्बन्ध था अतः मेरा शोक तुमसे कुछ कम नहीं है, इस समय हम और तुम समान रूप से दुःखी हैं।

मयि जीवति मत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ।

कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् ।। 31 ।।

अन्वयः– मयि जीवति (सति) मत्तातः केशग्रहम् आप्तवान् । अन्ये अपुत्रिणः पुत्रेभ्यः स्पृहां कथं करिष्यन्ति?

अनुवाद– मेरे जीवित रहते मेरे पिता केश खींच कर मारे गए। तब दूसरे पुत्ररहित जन पुत्र की इच्छा कैसे करेंगे?

TESLA-013

व्याख्या– मैं पुत्र हो कर पिता को दुर्दशा से न बचा सका, तब लोग अच्छे पुत्र की कामना क्योंकर किया करेंगे?

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां

यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।

यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः

क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ।। 32 ।।

अन्वयः–पाण्डवीनां चमूनां (मध्ये) स्वभुजगुरुमदः यः यः शस्त्रं बिभर्ति, पाञ्चालगोत्रे यः यः अधिकवया वा गर्भशय्यां गतः शिशुः, यः यः तत्कर्मसाक्षी, यः च यः च रणे मयि चरति प्रतीपः, क्रोधान्धः अहं जगताम् अन्तकस्य अपि इह तस्य तस्य स्वयम् अन्तकः अस्मि।

अनुवाद– पाण्डवों की सेनाओं में अपनी भुजाओं (के बल) पर अत्यधिक गर्व करने वाले जो जो वीर शस्त्र धारण करते हैं, पाञ्चालों के वंश में जो जो युवक अथवा गर्भस्थ शिशु हैं, जो जो मेरे पिता के वध के साक्षी हैं, जो जो युद्ध में मेरे पराक्रम के विपरीत (प्रदर्शन) करेगा, क्रोध से अन्धा हुआ मैं लोकों के संहारक यमराज का और उस-उस का अन्त करने वाला होऊँगा।

व्याख्या– अंगराज कर्ण ने आचार्य द्रोण के शस्त्रत्याग को लक्ष्य बना कर जो चर्चा की कि वे अपने ही कारण केशग्रहण और मृत्यु को प्राप्त हुए, अश्वत्थामा ने क्रोधपूर्वक उनको उत्तर दिया कि अब तो मैं यमराज का भी अन्त कर दूँगा, पांडववंशी क्या हैं?

देशः सोऽयमरातिशोणितजलैर्यस्मिन् ह्रदाः पूरिताः

क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केशग्रहः।

तान्येवाहितशस्त्रधस्मरगुरूण्यस्त्राणि भास्वन्ति मे

यद् रामेण कृतं तदेव कुरुते द्रौणायनि क्रोधनः ।। 33 ।।

अन्वयः– अयं सः देशः यस्मिन् अरातिशोणितजलैः ह्रदाः पूरिताः, तातस्य केशग्रहः क्षत्रात् एव तथाविधः परिभवः, मे तानि एव अहितशस्त्रधस्मरगुरुणि भास्वन्ति अस्त्राणि, यत् रामेण कृतं तदेव क्रोधनः द्रौणायनिः कुरुते।

अनुवाद– यह वही देश है जहाँ शत्रुओं के रुधिर जल से तालाब भर गए थे, पिता का केश पकड़ कर खींचना क्षत्रियों से (जमदग्नि के समान) हुआ वैसा ही अपमान है, मेरे वे ही शत्रुओं के शस्त्रों को खा जाने वाले और प्रचण्ड देदीप्यमान अस्त्र हैं, जो क्षत्रियविनाश का कार्य परशुराम ने किया था, अब वही द्रोणपुत्र अश्वत्थामा करेगा।

व्याख्या– यह वही कुरुक्षेत्र है, जहाँ परशुराम ने पाँच तालाब क्षत्रियों के रक्त से भर दिए थे, आज परशुराम के समान ही मैं अपने पिता के अपमान और वध का बदला परशुराम के चमकते हुए अस्त्रों के समान ही चमकते हुए अपने अस्त्रों से लूंगा। परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार कर धरती को क्षत्रियविहीन कर दिया था, अब मैं धरती को पाण्डवविहीन करूंगा।

प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशा–

मकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम् ।

इयं परिसमाप्यते रणकथाद्य दोःशालिना–

मपैतु नृपकाननातिगुरुरद्य भारो भुवः ।। 34 ।।

अन्वयः– अद्य स्तुतिभिः प्रयत्नपरिबोधितः निशां शेषे, अद्य भुवनम् अकेशवम् अपाण्डवं निःसोमकम् , अद्य दोःशालिनाम् इयं रणकथा परिसमाप्यते, अद्य नृपकाननातिगुरुः भुवः भारः अपैतु।

अनुवाद– आज आप बन्दिजनों द्वारा स्तुति गान के द्वारा जगाएँ जाने पर रात्रि समाप्त करेंगे। (निद्रात्याग करेंगे), आज संसार कृष्ण, पाण्डवों और सोमवंशियों से विहीन हो जाएगा, आज बाहुवीरों की यह युद्धकथा समाप्त हो जाएगी, आज धरती का राजाओं रूपी जंगल का भार समाप्त हो जाएगा।

व्याख्या– महाभारत युद्ध की आयोजना ही महाविनाश का कारण बनी थी, अश्वत्थामा क्रोध में एक प्रकार से उसी सत्य की ओर इंगित कर रहे हैं कि अब यह धरती वीरविहीन हो जाएगी, राजागण नामशेष हो जाएँगे।

निवीर्य गुरुशापभाषितवशात् किं मे तवेवायुधं

सम्प्रत्येव भयाद् विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा।

जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले

क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्त्रेण नास्रेण यत् ।। 35 ।।

अन्वयः– मे आयुधं तव इव गुरुशापभाषितवशात् निवीर्यं किम् ? त्वं यथा सम्प्रति एवं भयात् समरं विहाय प्राप्तः अस्मि किम् ? स्तुतिवंशकीर्तनविदा सारथीनां कुले अहं जातः किम् ? यत् क्षुद्रारातिकृताप्रियम् प्रतिकरोमि, अस्त्रेण न।

अनुवाद– क्या मेरा शस्त्र तुम्हारे शस्त्र के समान गुरु के शापवश शक्ति हीन हो गया है? क्या मैं तुम्हारे समान अभी अभी भयवश युद्ध छोड़ कर चला आया हूँ? क्या मैं स्तुतियों और वंशगान करने वाले सारथियों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ? जो नीच शत्रुओं (पाण्डवों) द्वारा किए गए अपकार का प्रतिकार आंसुओं से करूँ न कि अस्त्र से।

व्याख्या– गुरुशापभाषितवशात्–आचार्य द्रोण ने सारथिपुत्र कर्ण को विद्या देना अस्वीकार कर दिया, वे परशुराम के पास जाकर स्वयं को ब्राह्मण बता कर अस्त्र विद्या सीखने लगे। एक दिवस कर्ण की जंघा पर परशुराम सिर रख कर सोए, कर्ण की जंघा में किसी कीट ने काट लिया, रक्त बहने लगा, गुरुनिद्रा भंग न हो, इस चिन्ता से कर्ण ने आह न की। जगने पर रक्तप्रवाह देख परशुराम को उनके (सहन शक्ति को देखकर) ब्राह्मणत्व पर सन्देह हुआ। उन्होंने शाप दिया–कार्यकाल में मेरी सिखाई विद्या तुम्हारे प्रति असफल होगी।

TESLA-013

निवीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम् ।

यथा पाञ्चालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना ।। 36 ।।

अन्वयः– निवीर्यं वा सवीर्यं वा, मया आयुधं न उत्सृष्टम् , यथा पाञ्चालभीतेन बहुशालिना ते पित्रा उत्सृष्टम् ।

व्याख्या– कर्ण स्वयं को धृष्टद्युम्न के समान वीर कह रहे हैं, आचार्य द्रोण को शस्त्रत्याग के कारण कायर।

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भयाम्यहम् ।

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ।। 37 ।।

अन्वयः– सूतः वा सूतपुत्रः वा यः वा कः वा अहं भवामि। कुले जन्म दैवायत्तं तु पौरुषं मदायत्तम् ।

अनुवाद– सारथि हूँ या सारथिपुत्र या जो कोई मैं हूँ, कुल में जन्म लेना भाग्य के अधीन है तो पुरुषार्थ करना मेरे अधीन है।

व्याख्या– जाति, आयु और भोग पूर्वजन्मार्जित कर्मों के अनुसार मिलते हैं परन्तु पुरुषार्थ अथवा पराक्रम में सर्वोत्तम प्रदर्शन अपने ऊपर होता है।

स भीरुः शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने

कृतं मत्तेनोजौ प्रतिदिनभियं वेत्ति वसुधा।

परित्यक्तं शस्त्रं कथमिति स सत्यव्रतधरः

पृथासूनुः साक्षी त्वमसि रणभीरो क्व नु तदा ।। 38 ।।

अन्वयः– भीरुः शूर वा त्रिभुवने प्रथितभुजसारः, तेन आजौ प्रतिदिनं यत् कृतं तत् इयं वसुधा वेत्ति, शस्त्रं कथं परित्यक्तम् इति सः सत्यव्रतधरः पृथासूनुः साक्षी, रणभीरो! तदा त्वं क्व नु असि?

अनुवाद– वे भीरु थे अथवा वीर किन्तु तीनों लोकों में प्रख्यात भुजबल वाले थे। उन्होंने युद्ध में प्रतिदिन जो (पराक्रम) किया उसे यह पृथिवी जानती है। उन्होंने शस्त्र कैसे त्याग दिया इसे वह सत्यधर्मा युधिष्ठिर जानते हैं। हे युद्धकायर! तुम उस समय कहाँ थे?

व्याख्या– आचार्य द्रोण पर कर्ण द्वारा किए गए आक्षेपों से क्रुद्ध अश्वत्थामा प्रत्युत्तर में कहते हैं कि पिता की वीरता जगप्रसिद्ध थी। कायर पुरुष कर्ण! तुम युद्ध क्षेत्र में मृत्युभय से जाते ही नहीं हो इसीलिए उनका अपमान कर रहे हो।

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो

न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान् ।

यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासितं

सुचिरं स्त्रियेव नृपचक्रसन्निधौ ।। 39 ।।

अन्वयः– यदि शस्त्रम् उज्झितम् अशस्त्रपाणयः उदायुधान् अरीन् न निवारयन्ति किम् ? यत् अनेन नृपचक्रसन्निधौ मौलिदलने अपि स्त्रियाः इव सुचिरं उदासितम् ।

अनुवाद– यदि उन्होंने शस्त्रत्याग दिया तो क्या निःशस्त्र व्यक्ति शस्त्र उठाए हुए शत्रुओं को रोकते नहीं हैं? जो उन्होंने राजसमूह के मध्य मानमर्दन होने पर भी स्त्री के समान देर तक उदासीनता दिखाई।

व्याख्या– कर्ण के अनुसार आचार्य द्रोण को शस्त्रत्याग के अनन्तर भी निःशस्त्र रह कर युद्ध करना चाहिए था, पर वे तो अबला की भाँति मानमर्दन होने पर भी विरोध प्रदर्शित न कर सहन करते रहे।

कथमपि न निषिद्धो दुःखिना भीरुणा वा

द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाद्य।

तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वामः

शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम् ।। 40 ।।

अन्वयः– अद्य दुःखिना वा भीरुणा तेन मम पित्रा द्रुपदतनयपाणिः न निषिद्धः कथमपि। भुजबलदर्पाध्मायमानस्य तव शिरसि एष वामः चरणः न्यस्यते, एनं वारय।

अनुवाद– आज दुःखी अथवा भीरु उन मेरे पिता ने धृष्टद्युम्न के हाथ को कैसे भी नहीं रोका। भुजाओं के बल के गर्व से फूले हुए तेरे सिर पर यह मेरा बायां चरण रखा जा रहा है, इसको रोको।

व्याख्या– अश्वत्थामा पितृ अपमान से दुःखी तथा क्रुद्ध हो कर कर्ण को पैर मारने को उद्यत हो उठता है।

जात्या कामवध्योऽसि चरणं त्विममुद्धतम् ।

अनेन लूनं खड्गेन पतितं द्रक्ष्यसि क्षितौ ।। 41 ।।

अन्वयः– जात्या कामम् अवध्योऽसि, इमम् उद्धतं चरणं तु अनेन खड्गेन लूनं सत् क्षितौ पतितं द्रक्ष्यसि।

अनुवाद– जाति के कारण तू नितान्त अवध्य है, किन्तु इस उठाए हुए पैर को इस तलवार से कटकर धरती पर पड़ा हुआ देखेगा।

व्याख्या– जातिश्रेष्ठ होने के कारण ब्राह्मण को अवध्य कहा गया है। शास्त्रों के इसी वचन का अनुपालन करते हुए कर्ण अश्वत्थामा को केवल पैर काट देने की बात कह रहे हैं।

अद्य मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया।

शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ वा रचयाञ्जलिम् ।। 42

अन्वयः– अद्य मया असौ किरीटी मिथ्याप्रतिज्ञः क्रियते, शस्त्रं गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ अञ्जलिं वा रचय।

TESLA-013

अनुवाद– अर्जुन ने सदा से प्रतिद्वन्द्वी कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की थी। अश्वत्थामा स्वयं कर्ण को मारने को उद्यत है अतः अर्जुन अपूर्णप्रतिज्ञा वाले ही रहेंगे। अब कर्ण या तो अश्वत्थामा के साथ युद्ध करे अथवा हाथ जोड़ कर क्षमा याचना करे।

उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया।

अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ।। 43 ।।

अन्वयः– धीरसत्त्वै अवज्ञया उपेक्षितानां क्रोधान्धैः अत्रासितानां मन्दानाम् एषा विकत्थना भवति।

अनुवाद– गम्भीर हृदय वाले वीरों द्वारा तिरस्कारपूर्वक उपेक्षित और क्रोध से उन्मत्त पुरुषों द्वारा भयभीत न कराए गए मूर्खों की यह आत्मप्रशंसा होती है।

व्याख्या– वीर तथा क्रुद्ध पुरुष को कायर और तिरस्कृत मूर्ख व्यक्तियों को दण्डित करना चाहिए। यथासमय अनुशासित न करने से वे मूर्ख स्वयं को श्रेष्ठ मानने लगते हैं।

पापप्रियस्तव कथं गुणिनः सखायं

सूतान्वयः शशधरान्वयसम्भवस्य।

हन्ता किरीटिनमहं नृप मुञ्च कुर्यां

क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम् ।। 44।।

अन्वयः– नृप! गुणिनः शशधरान्वयसम्भवस्य तव पापप्रियः सूतान्वयः अयं कथं सखा? अहं किरीटिनं हन्ता, मुञ्च, क्रोधात् अद्य लोकम् अकर्णम् अपृथात्मजम् कुर्याम् ।

अनुवाद– गुणों से युक्त चन्द्रवंश में जन्म लेने वाले आपका यह पापप्रेमी सारथिवंश में उत्पन्न कर्ण मित्र कैसे हो सकता है? मैं अर्जुन का वध कर सकता हूँ (यह नहीं), इसे छोड़ दीजिए, क्रोध के कारण आज मैं संसार को कर्ण और अर्जुन से रहित कर दूँगा।

व्याख्या– अश्वत्थामा दुर्योधन से कहते हैं–कहाँ उच्चवंशी आप और कहाँ निम्न वंशी कर्ण, आप क्यों इससे मित्रता किए हैं, अर्जुन को मारने के लिए तो चिन्ता न कीजिए, मैं उसे मार दूंगा।

अयं पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरैः

परित्यक्तं तावत्प्रियमपि मयास्त्रं रणमुखे।

बलानां नाथेऽस्मिन् परिकुपितभीमार्जुनमये

समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु समरे ।। 45 ।।

अन्वयः– यावत् अयं पापः अरिशरैः निधनं न उपेयात्, तावत् मया रणमुखे प्रियमपि अस्त्रं परित्यक्तम् अस्मिन् बलानां नाथे (सति) समरे परिकुपितभीमार्जुनमये समुत्पन्ने राजा प्रियसखबलं वेत्तु।

अनुवाद– जब तक यह पापी शत्रुओं के बाणों से मृत्यु को न प्राप्त कर ले, तब तक मैने युद्ध में अपने प्रिय अस्त्र का भी परित्याग कर दिया। इस कर्ण के सेनापति रहने पर युद्ध में अत्यन्त क्रुद्ध भीम तथा अर्जुन से भय उत्पन्न होने पर राजा अपने प्रिय मित्र के बल को जान लें।

व्याख्या– राजा को सच्चे मित्र की परख नहीं है जो कायर कर्ण को मित्र बनाए है। युद्ध में बली भीम और योद्धा अर्जुन के समक्ष यह कर्ण सरलता से घुटने टेक देगा तब राजा को चेत होगा, यह अश्वत्थामा का अभिप्राय है।

धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः।

यद् वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत् केन सेत्स्यति ।। 46 ।।

अन्वयः– अहं यावत् धृतायुधः तावत् अन्यैः आयुधैः किम् ? मम अस्त्रेण यत् न वा सिद्धं तत् केन सेत्स्यति?

अनुवाद– जब तक मैं अस्त्र धारण किए हुए हूँ तब तक दूसरों के अस्त्र धारण से क्या प्रयोजन? मेरे अस्त्र से जो कार्य सिद्ध नहीं हुआ, वह किसके अस्त्र से सिद्ध होगा?

व्याख्या– कर्ण के अनुसार यदि उन्होंने अस्त्रधारण किया हुआ है तो दूसरों के अस्त्रधारण की आवश्यकता नहीं है, शत्रु को समाप्त करने को वे पर्याप्त हैं। जिसे वे नहीं मार सकते, उसे कोई नहीं मार सकता है।

कृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा

येनास्याः परिधानमप्यपहृतं राज्ञां गुरूणां पुरः।

यस्योरः स्थलशोणितासवमहं पातुं प्रतिज्ञातवान्

सोऽयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः संरक्ष्यतां कौरवः ।। 47 ।।

अन्वयः–येन नृपशुना पाञ्चालराजात्मजा शिरोरुहे कृष्टा, येन राज्ञां गुरुणां पुरः अस्याः परिधानमपि अपहृतम् , यस्य उरः स्थलशोणितासवं पातुम् अहं प्रतिज्ञातवान् , सः अयं मद्भुजपञ्जरे निपतितः कौरवः संरक्ष्यताम् ।

अनुवाद– जिस नरपुश के द्वारा पाञ्चालराजपुत्री द्रौपदी बाल पकड़ कर खींची गई, जिसने राजाओं और गुरुओं के सामने उसके वस्त्र भी खींच लिए, जिसके वक्ष स्थल के रक्त रूपी मदिरा को पीने की मैने प्रतिज्ञा की थी, वही यह दुःशासन मेरे भुजपञ्जर में पड़ा है, कौरवों इसे बचाओ।

व्याख्या– भीम पिछले सारे दुष्कर्मों का फल चखाने के लिए दुःशासन का वध करने को तत्पर हैं। वे कौरवों को कह रहे हैं कि इसके गर्हित कार्यों का दण्ड देने के लिए मैं इसे मार रहा हूँ, कौरवों में सामर्थ्य हो तो बचा लें।

सत्यादप्यनृतं श्रेयो धिक्स्वर्गं नरकोऽस्तु मे।

भीमाद् दुःशासनं शत्रुं त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ।। 48 ।।

TESLA-013

अन्वयः– सत्यात् अपि अनृतं श्रेयः (भवतु), स्वर्गं धिक्, मे नरकः अस्तु भीमात् दुःशासनं त्रातुं त्यक्तम् आयुधम् अत्यक्तम् ।

अनुवाद– सत्य की अपेक्षा असत्य श्रेष्ठ हो जाए, स्वर्ग को धिक्कार है, मुझे नरक मिले। भीम से दुःशासन को बचाने के लिए त्यागा हुआ अस्त्र भी नहीं त्यागा है।

व्याख्या– अश्वत्थामा जानते हैं कि भीम के क्रोध के समक्ष केवल द्रोणाचार्य ही टिक सकते थे, अब वे नहीं हैं तभी तो भीम को दुःशासन को मारने का साहस हो गया। कर्ण का क्या साहस कि भीम के पंजे से दुःशासन को छुड़ा सके अतः मैं शस्त्रत्याग की प्रतिज्ञा दुःशासन की रक्षा के लिए तोड़ता हूँ। असत्यप्रतिज्ञ होने के लिए मुझे स्वर्ग के स्थान पर नरक भी मिले तो सहर्ष स्वीकार है।

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽप्युदासितम् ।

दुर्योधनस्य कर्तास्मि किमन्यत्प्रियमाहवे ।। 49 ।।

अन्वयः– दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽपि (मया) उदासितम् (तदा) आहवे दुर्योधनस्य अन्यत् किं प्रियं कर्ता अस्मि।

अनुवाद– दुःशासन का रुधिर पीये जाने पर भी मैं उदासीन रहा तो युद्ध में दुर्योधन का दूसरा क्या प्रिय कार्य करूंगा?

व्याख्या– अश्वत्थामा दिव्यवाणी के रोक देने के कारण दुःशासन की रक्षा न कर पाने को विवश हो जाते हैं। उन्हें दुःख है कि दुर्योधन के प्रिय सहोदर भ्राता की रक्षा दुर्योधन का प्रिय कार्य था जो वे पूर्ण न कर सके।

इति तृतीयोऽङ्कः

4.3 चतुर्थ अङ्क के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या, अन्वय तथा अनुवाद

चतुर्थोऽङ्कः

राज्ञो मानधनस्य कार्मुकभृतो दुर्योधनस्याग्रतः

प्रत्यक्षं कुरुबान्धवस्य च तथा कर्णस्य शल्यस्य च।

पीतं तस्य मयाद्य पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः

कोष्णं जीवत एव तीक्ष्णकरजक्षुण्णादसृग्वक्षसः ।। 1 ।।

अन्वयः– मानधनस्य कार्मुकभृतः राज्ञः दुर्योधनस्य अग्रतः च कुरुबान्धवस्य तथा कर्णस्य शल्यस्य च प्रत्यक्षम् अद्य मया पाण्डववधूकेशाम्बराकर्षिणः तस्य जीवतः एव तीक्ष्णकरजक्षुण्णात् वक्षसः कोष्णम् असृक् पीतम् ।

अनुवाद– मानधनी, धनुर्धारी राजा दुर्योधन के समक्ष, कौरवों के बन्धु कर्ण और शल्य की आंखों के सामने आज मैने पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी के केश व वस्त्र खींचने वाले

दुःशासन के जीवित रहते हुए पैने नखों से फाड़े गए वक्षस्थल से गर्म रुधिर पी लिया है।

व्याख्या– भीम की प्रतिज्ञा थी कि दुःशासन को दण्ड देने के लिए उसका हृदय फाड़ कर रक्त पियूँगा, इस प्रकार द्रौपदी के अपमान का बदला लूंगा, आज भीम की वह प्रतिज्ञा पूरी हुई। सत्य है पाप का दण्ड मिलता ही है।

दत्त्वा द्रोणेन पार्थादभयमपि न संरक्षितः सिन्धुराजः

क्रूरं दुःशासनेऽस्मिन्हरिण इव कृतं भीमसेनेन कर्म।

दुःसाध्यामप्यरीणां लघुमिव समरे पूरयित्वा प्रतिज्ञां

नाहं मन्ये सकामं कुरुकुलविमुखं दैवमेतावतापि ।। 2 ।।

अन्वयः– द्रोणेन पार्थात् अभयं दत्त्वा अपि सिन्धुराजः न संरक्षितः, भीमसेनेन हरिणे इव अस्मिन् दुःशासने क्रूरं कर्म कृतम् , अहं मन्ये समरे अरीणां दुःसाध्यम् अपि प्रतिज्ञां लघुम् इव पूरयित्वा कुरुकुलविमुखं दैवम् एतावता अपि सकामं न।

अनुवाद– द्रोणाचार्य ने अर्जुन से अभयदान देकर भी सिन्धुराज की रक्षा नहीं की, भीमसेन ने हिरन के समान इस दुर्योधन के प्रति क्रूर कर्म किया। मुझे लगता है युद्ध में शत्रुओं की दुःसाध्य प्रतिज्ञा को भी तृणवत् पूरी करा कर कुरुवंश का प्रतिकूल भाग्य अभी सन्तुष्ट नहीं हुआ है।

व्याख्या– द्रोणाचार्य सदृश महावीर जयद्रथ की रक्षा न कर सके, वीर दुःशासन सरलता से भीम द्वारा मार दिया गया, अभी भी कुरुवंश का विनाश स्पष्ट दिख रहा है, पता नहीं कुरुवंश का प्रतिकूल भाग्य कब शान्त होगा, युद्ध में कुरुवंशी समर्थक योद्धाओं की मृत्यु के समाचार निरन्तर सुन कर दुर्योधन का सारथि यह भाव व्यक्त कर रहा है।

मदकलितरेणुम्ज्यमाने

विपिन इव प्रकटैकशालशेषे

हतसकलकुमारके कुलेऽस्मिं -

स्त्वमपि विधेरवलोकितः कटाक्षैः ।। 3 ।।

अन्वयः– मदकलितरेणुभज्यमाने प्रकटैकशालशेषे विपिने इव हतसकलकुमारके अस्मिन् कुले त्वम् अपि विधेः कटाक्षैः अवलोकितः।

अनुवाद– मदमत्त हाथी द्वारा तोड़े जाते हुए तथा एकमात्र बचे हुए शालवृक्ष वाले वन के समान मारे गए समस्त कुरुराजकुमारों के इस कुल में तुम भी दुर्भाग्य की कुटिल दृष्टि से देख लिए गए हो।

व्याख्या– शाल अर्थात् साखू का वृक्ष दीर्घकाय तथा दृढ़काय होता है, दुर्योधन शालवृक्ष के समान दृढ़ और शक्तिशाली है, प्रतिकूल भाग्य इसे भी नष्ट न कर दे।

अक्षतस्य गदापाणेरनारूढस्य संशयम् ।

एषापि भीमसेनस्य प्रतिज्ञा पूर्यते त्वया ।। 4 ।।

अन्वयः– गदापाणेः अक्षतस्य संशयम् अनारूढस्य भीमसेनस्य एषा अपि प्रतिज्ञा त्वया पूर्यते।

TESLA-013

अनुवाद– गदाधारी, घावरहित, सन्देह को न प्राप्त करने वाले भीमसेन की यह प्रतिज्ञा भी तुम पूरी कर रहे हो।

व्याख्या– गदायुद्ध में मैं दुर्योधन को मारूँगा या वह मुझे मारेगा, इस प्रकार के सन्देह से रहित भीमसेन दुर्योधन को ही मार कर सौभाग्य से अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेगा, सारथि को ऐसा अनुमान हो रहा है।

बालस्य मे प्रकृतिदुर्ललितस्य पापः

पापं व्यवस्यति समक्षमुदायुधोऽसौ।

अस्मिन्निवारयसि किं व्यवसायिनं मां

क्रोधो न नाम करुणा न च तेऽस्मि लज्जा ।। 5 ।।

अन्वयः– उदायुधः असौ पापः मे समक्षं प्रकृतिदुर्ललितस्य बालस्य पापं व्यवस्यति। अस्मिन् व्यवसायिनं मां किं निवारयसि? ते क्रोधः नाम न करुणा न च लज्जा अस्ति।

अनुवाद– शस्त्र उठाए हुए वह पापी भीमसेन मेरे सामने स्वभाव से चंचल बालक के प्रति अत्याचार कर रहा है, उस पापी को रोकने में प्रयत्न करने से तुम मुझे क्यों रोक रहे हो? तुम्हें रंचमात्र भी क्रोध, दया और लज्जा नहीं आती है।

व्याख्या– क्रोध–पापी शत्रु पर तुम्हें क्रोध नहीं आता? करुणा–बालक पर दया नहीं आती? लज्जा–घोड़े रथ खींचने में असमर्थ हैं, कहने में लज्जा नहीं आती?

युक्तो यथेष्टमुपभोगसुखेषु नैव

त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाग्रजेन।

अस्यास्तु वत्स तव हेतुरहं विपत्ते–

र्यत् कारितोऽस्यविनयं न च रक्षितोऽसि ।। 6 ।।

अन्वयः– वत्स! त्वं वृथाग्रजेन मया यथेष्टम् उपभोगसुखेषु नैव युक्तः, न हि लालितः अपि तु तव अस्य विपत्तेः अहं हेतुः यत् अविनयं कारितः असि न च रक्षितः असि।

अनुवाद– वत्स! तुम्हें व्यर्थ अग्रज कहलाने वाले मैने यथेच्छानुसार सुखों के उपभोग का अवसर नहीं दिया, समुचित पालन भी नहीं किया, अपितु तुम्हारी इस विपत्ति का कारण बना जो तुमसे (द्रौपदी के प्रति) अशिष्टता करवाई परन्तु तुम्हारी रक्षा न की।

व्याख्या– दुर्योधन विलाप करता है कि भरी सभा में दुःशासन से द्रौपदी के केश और वस्त्र खिंचवा कर मैं ही दुःशासन की मृत्यु का कारण बना, भीम ने क्रोध में उसका वध कर दिया, मैं रक्षा न कर सका।

रक्षणीयेन सततं बालेनाज्ञानुवर्तिना।

दुःशासनेन भ्रात्राहमुपहारेण रक्षितः ।। 7 ।।

TESLA-013

अन्वयः– सततं रक्षणीयेन आज्ञानुवर्तिना बालेन भ्रात्रा दुःशासनेन उपहारेण अहं रक्षितः।

अनुवाद– निरन्तर रक्षा करने योग्य, आज्ञापालक, छोटे भाई दुःशासन के द्वारा प्राणों की बलि दे कर मेरी रक्षा की गई।

व्याख्या– दुर्योधन ग्लानिपूर्वक सारथि की भर्त्सना करता है कि अपनी रक्षा के लिए देवताओं को बलि देने के समान तुमने मेरी रक्षा के लिए दुःशासन को बलिदान कर दिया।

तस्यैव पाण्डवपशोरनुजद्विषो मे

क्षौदैर्गदाशनिकृतैर्न विबोधितोऽस्मि।

तामेव नाधिशायितो रुधिरार्द्रशय्यां

दौः शासनीं यदहमाशु वृकोदरो वा ।। 8 ।।

अन्वयः– यत् मे अनुजद्विषः तस्यैव पाण्डवपशोः गदाशनिकृतैः क्षौदैः न विबोधितः अस्मि, ताम् एव दौःशासनीं रुधिरार्द्रशय्याम् अहं वृकोदरः वा आशु न अधिशायितः।

अनुवाद– जो मेरे छोटे भाई से द्वेष करने वाले उस पशुसमान पाण्डव भीम की वज्र सदृश गदा के प्रहारों से मुझे नहीं जगाया अथवा उसी दुःशासन वाली रुधिर से भीगी शय्या पर मुझे अथवा भीम को नहीं सुलाया।

अपि नाम भवेन्मृत्युर्न च हन्ता वृकोदरः।

घातिताशेषबन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा ।। 9 ।।

अन्वयः– मृत्युः अपि नाम भवेत् वृकोदरः च हन्ता न । घातिता अशेषबन्धोः मे राज्येन वा जयेन किम् ?

अनुवाद– भले ही मेरी मृत्यु हो जाए पर भीम मारने वाला न हो। मारे गए समस्त बन्धुओं वाले मुझे राज्य से क्या, विजय से क्या?

व्याख्या– भीम के हाथों मरने पर अपयश होगा और अपमान भी।

पर्याप्तनेत्रमचिरोदितचन्द्रकान्त–

मुद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोकम् ।

प्राणावहारपरिवर्तितदृष्टि दृष्टं

कर्णेन तत्कथमिवाननपङ्कजं ते ।। 10 ।।

अन्वय– कर्णेन ते तत् पर्याप्तनेत्रम् अचिरोदितचन्द्रकान्तम् उद्भिद्यमाननवयौवनरम्यशोभम् आननपङ्कजं प्राणापहारपरिवर्तितदृष्टिः (सत्) कथं दृष्टम्।

अनुवाद– कर्ण ने तुम्हारे उस विशाल नेत्रों वाले, नवोदित चन्द्रमा की सी कान्ति वाले, प्रस्फुटित हो रहे नवयौवन से रमणीय शोभा वाले मुखकमल को, मरण को प्राप्त हो जाने से विकृत दृष्टि वाला हो जाने पर कैसे देखा होगा?

TESLA-013

व्याख्या– दुर्योधन सदैव सहयोगी अतएव प्रिय अनुज के लिए दुःखी हो कर विलाप कर रहा है कि जिस भाई को युवा, हृष्टपुष्ट, सुदर्शन रूप में देखा है उसे प्राण चले जाने पर विकृत शरीर वाला हो जाने से देख पाना कितना कठिन है।

प्रत्यक्षं हतबन्धूनामेतत् परिभवाग्निना।

हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं कुतो दुःखं कुतो व्यथा ।। 11 ।।

अन्वयः– प्रत्यक्षं हतबन्धूनाम् (अस्माकम्) एतत् हृदयं परिभवाग्निना अत्यर्थं दह्यते। (अतएव) कुतः दुःख कुतः व्यथा।

अनुवाद– आंखों के सामने ही मारे गए बन्धुओं वाले हमारा यह हृदय अपमान रूपी अग्नि से अत्यन्त जल रहा है, अतएव मुझे कहाँ दुःख और कहाँ पीड़ा।

व्याख्या– दुर्योधन का भाव यह है कि दुःख और वेदना की अनुभूति तो हृदय में होती है, मेरा हृदय पराजय और अपमान की अग्नि से जल चुका है, तब दुःख और वेदना का अनुभव कैसे हो?

अस्त्रग्रामविधौ कृती न समरेष्वस्यास्ति तुल्यः पुमान्

भ्रातृभ्योऽपि ममाधिकोऽयममुना जेयाः पृथासूनवः।

त्वत्सम्भावित इत्यहं न च हतो दुःशासनारिर्मया

त्वं दुःखप्रतिकारमेहि भुजयोर्वीर्येण वाष्पेण वा ।। 12 ।।

अन्वयः– अयम् अस्त्रग्रामविधौ कृती, समरेषु अस्य तुल्यः पुमान् न अस्ति, भ्रातृभ्यः अपि अयं मम अधिकः अमुना पृथासूनवः जेयाः, इति यत् अहम् त्वत्सम्भावितः, दुःशासनारि च मया न हतः (तत्) त्वं भुजयोः वीर्येण बाष्पेण वा दुःखप्रतिकारम् एहि।

अनुवाद– यह कर्ण अस्त्रसमूह के प्रयोग में कुशल है, युद्ध में इसके समान कोई अन्य व्यक्ति नहीं है, भाइयों से भी अधिक यह मुझे प्रिय है, यह कुन्ती के पुत्रों को जीत सकता है, इस प्रकार आपने मेरा सम्मान किया था परन्तु मैं दुःशासन के शत्रु का वध न कर सका, तो आप (अब) भुजाओं के पराक्रम से अथवा आँसुओं से दुःख का प्रतीकार कीजिए।

व्याख्या– कर्ण ने पत्र के माध्यम से अपनी व्यथा को व्यक्त किया है कि आप जिस किस तरह अपने दुःख को शान्त कर लीजिए, मेरा मन शान्त नहीं हो सकता है अतः मैं मरने के लिए उद्यत हूँ।

हत्वा पार्थान् सलिलमशिवं बन्धुवर्गाय दत्त्वा

मुक्त्वा बाष्पं सह कतिपयैर्मन्त्रिभिश्चारिभिश्च।

कृत्वान्योन्यं सुचिरमपुनर्भावि गाढोपगूढं

संत्यक्ष्यावो हततनुमिमां दुःखितौ निवृत्तौ च ।। 13 ।।

अन्वयः– पार्थान् हत्वा बन्धुवर्गाय अशिवं सलिलं दत्त्वा कतिपयैः मन्त्रिभिश्च अरिभिः च सह वाष्पं मुक्त्वा अन्योन्यम् अपुनर्भावि सुचिरं गाढोपगूढं कृत्वा दुःखितौ निवृतौ च इमां हततनुं संत्यक्ष्यावः।

अनुवाद– कुन्तीपुत्र पाण्डवों को मार कर, बन्धुओं को जलाञ्जलि देकर, (बचे हुए) कुछ मन्त्रियों तथा शत्रुओं के साथ आँसू बहा कर परस्पर फिर न होने वाला चिरकालिक गाढ़ आलिंगन करके दुःखित तथा शान्त मन से हम दोनों इस अधम शरीर का त्याग कर देंगे।

व्याख्या– जलाञ्जलि अर्थात् मृत्यु के पश्चात् दी जाने वाली तिलाञ्जलि, दुःखितौ– बान्धवों के मारे जाने से दुःखी, निवृत्तौ-शत्रु वध से सुखी, हम दोनों अर्थात् कर्ण और दुर्योधन।

वृषसेनो न ते पुत्रो न मे दुःशासनोऽनुजः।

त्वां बोधयामि किमहं त्वं मां संस्थापयिष्यसि ।। 14 ।।

अन्वयः– वृषसेन ते पुत्रः न, दुःशासनः मे अनुजः न, अहं त्वां किं बोधयामि, त्वं मां किं संस्थापयिष्यसि?

अनुवाद– वृषसेन तुम्हारा ही पुत्र नहीं था (मेरा भी था), दुःशासन मेरा ही भाई नहीं था (तुम्हारा भी था), मैं तुम्हें क्या सान्त्वना दूँ और तुम मुझे क्या धैर्य दोगे?

व्याख्या– कर्ण को प्रकृतिस्थ करने हेतु दुर्योधन सन्देश भेजते हैं कि हम दोनों ने ही परमप्रियों को खोया है, हम दोनों का दुःख समान है जो सान्त्वना से नहीं, शत्रुवध से समाप्त होगा।

अद्यैवावां रणमुपगतौ तातमबां च दृष्ट्वा

घ्रातस्ताभ्यां शिरसि विनतोऽह च दुःशासनश्च।

तस्मिन् बाले प्रसभमरिणा प्रपिते तामवस्थां

पार्श्वं पित्रोरहमुपगतः किं नु वक्ष्यामि ताभ्याम् ।। 15 ।।

अन्वयः– अद्यैव आवां तातम् अम्बां च दृष्ट्वा रणम् उपगतौ। ताभ्यां विनतः अहं च दुःशासनश्च शिरसि घ्रातः। तस्मिन् बाले अरिणा प्रसभं ताम् अवस्थां प्रापिते पित्रोः पार्श्वम् उपगतः अहं ताभ्यां किं नु वक्ष्यामि?

अनुवाद– आज ही हम दोनों पिता और माँ का दर्शन कर युद्ध को गए थे, उन दोनों ने प्रणाम के लिए झुके हुए मेरा और दुःशासन का सिर सूंघा था। उस बालक दुःशासन को शत्रु द्वारा उस दशा (मृत्यु) को पहुँचा दिए जाने पर माता-पिता के पास जाकर मैं उन दोनों को क्या कहूँगा?

व्याख्या– दुर्योधन माता गान्धारी और पिता धृतराष्ट्र के युद्ध में आने की सूचना पाकर व्यथित हो कहता है कि प्रातः तक मैं और दुःशासन माता-पिता के दो प्रिय पुत्र जीवित थे, उनमें भी अनुज दुःशासन मारा गया, मैं उसे न बचा सका, अब माता-पिता को क्या मुख दिखाऊँ?

इति चतुर्थोऽङ्कः

TESLA-013

4.4 पञ्चम अङ्क के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या, अन्वय तथा अनुवाद

पञ्चमोऽङ्कः

शल्यानि व्यपनीय कङ्कवदनैरुन्मोचिते कङ्कटे

बद्धेषु व्रणपट्टकेषु शनकैः कर्णे कृतापाश्रयः।

दूरान्निर्जितसान्त्वितान्नरपतीनालोकयँल्लीलया

सह्या पुत्रक वेदनेति न मया पापेन पृष्टो भवान् ।। 1 ।।

अन्वयः– कङ्कटे उन्मोचिते कङ्कवदनैः शल्यानि व्यपनीय व्रणपट्टकेषु बद्धेषु शनकैः कर्णे कृतापाश्रयः निर्जितसान्त्वितान् नरपतीन् दूरात् लीलया आलोकयन् भवान् पापेन मया, पुत्रक! वेदना सह्या, इति न पृष्टः।

अनुवाद– कवच उतार देने पर कङ्क पक्षी के मुख के समान मुख वाले यन्त्रों से बाणों के फलकों को निकाल कर घावों पर पट्टी बाँधे हुए, धीरे से कर्ण का सहारा लिए हुए, पहले जीते गए पश्चात् सान्त्वना दिए गए नरपतियों को दूर से अवहेलनापूर्वक देखते हुए तुमसे मुझ पापी ने, हे पुत्र! तुम्हारी वेदना सहा तो है, यह नहीं पूछा।

व्याख्या– पिता धृतराष्ट्र का वात्सल्य पुत्र दुर्योधन के शरीर के घावों को देख कर उमड़ रहा है। यद्यपि वे जन्मान्ध थे तथापि पुत्र की पीड़ा का अनुभव तो कर ही सकते थे।

पापोऽहमप्रतिकृतानुजनाशदर्शी

तातस्य बाष्पपयसां तव चाम्ब हेतुः।

दुर्जातमत्र विमले भरतान्वये वः

किं मां सुतक्षयकरं सुत इत्यवैषि ।। 2 ।।

अन्वयः– अम्ब! अप्रतिकृतानुजनाशदर्शी अहं पापः तातस्य तव च बाष्पपयसां हेतुः। अत्र विमले भरतान्वये दुर्जातं वः सुतक्षयकरं मां सुत इति किम् अवैषि?

अनुवाद– माँ! बिना बदला लिए छोटे भाइयों का विनाश देखने वाला पापी मैं पिता तथा आपके आँसुओं का कारण हूँ। इस उज्ज्वल भरतकुल दुःख से जन्म लेने वाले आपके पुत्रों का विनाश करने वाले मुझे आप पुत्र क्यों मान रही हैं?

व्याख्या– दुर्योधन व्यथित है कि उसके दुराग्रह से समस्त अनुजों का विनाश हो गया। उत्तमकुल में जिन्हें सौभाग्य से जन्म मिला, माँ के वे सब पुत्र मेरे कारण निःशेष हो गए। मैं तो पुत्र कहलाने योग्य ही नहीं हूँ।

मातः किमप्यसदृशं कृपणं वचस्ते

सुक्षत्रिया क्व भवती क्व च दीनतैषा।

निर्वत्सले सुतशतस्य विपत्तिमेतां

त्वं नानुचिन्तयसि रक्षसि मामयोग्यम् ।। 3 ।।

TESLA-013

अन्वयः– मातः! ते क्वचः किम् अपि असदृशं कृपणं, क्व भवती सुक्षत्रिया क्व च एषा दीनता। हे निर्वत्सले! त्वं सुतशतस्य एतां विपत्तिम् न अनुचिन्तयसि? अयोग्यं मां च रक्षसि।

अनुवाद– माँ! तुम्हारे वचन अवाच्य एवं कायरतापूर्ण हैं, कहाँ तो आप उत्तम वंश की क्षत्राणी हो और कहाँ यह दीनता? हे पुत्रनिर्मोही! तुम सौ पुत्रों के इस विनाश को नहीं सोच रही हो और मुझे अयोग्य की रक्षा कर रही हो।

व्याख्या– जन्मान्ध पति धृतराष्ट्र की पत्नी का कर्त्तव्य निर्वाह करने के लिए पत्नी गान्धारी ने भी आंखों पर पट्टी बाँध ली थी। दुर्योधन को उत्साहित करने के लिए गान्धारी ने सौ पुत्रों की मृत्यु के दुःख को भी दुर्योधन के समक्ष प्रकट नहीं होने दिया।

कुन्त्या सह युवामद्य मया निहतपुत्रया।

विराजमानौ शोकेऽपि तनयाननुशोचतम् ।। 4 ।।

अन्वयः– अद्य मया निहतपुत्रया कुन्त्या सह शोके अपि विराजमानौ युवां तनयान् अनुशोचतम् ।

अनुवाद– आज मेरे द्वारा मारे गए पुत्रों वाली कुन्ती के साथ शोक में आकुल आप दोनों (माता-पिता) पुत्रों का शोक कर लें।

व्याख्या– मैने कुन्ती के वंशजों का वध किया है और कुन्ती पुत्रों ने मेरे भाइयों का, आप का शोक कुन्ती के शोक से कम नहीं है। आप अपने सभी पुत्रों की मृत्यु का शोक मना लें।

दायदा न ययोर्बलेन गणितास्तौ द्रोणभीष्मौ हतौ

कर्णस्यात्मजमग्रतः शमयतो भीतं जगत् फाल्गुनात् ।

वत्सानां निधनेन मे त्वयि रिपुः शेषप्रतिज्ञोऽधुना

मानं वैरिषु मुञ्च तात पितरावन्धाविमौ पालय ।। 5 ।।

अन्वयः– ययोः बलेन दायदाः न गणिताः तौ द्रोणभीष्मौ हतौ, कर्णस्य आत्मजम् अग्रतः शमयतः फाल्गुनात् जगत् भीतम् , मे वत्सानां निधनेन रिपुः अधुना त्वयि शेषप्रतिज्ञः (अस्ति अतः) तात! वैरिषु मानं मुञ्च, इमौ अन्धौ पितरौ पालय।

अनुवाद– जिनके बल से हमने दायादों (पाण्डुपुत्रों) को (अंशभागी) नहीं गिना, वे द्रोण और भीष्म मारे गए। कर्ण के पुत्र को कर्ण के सामने ही मार डालने वाले अर्जुन से संसार त्रस्त है। मेरे पुत्रों के निधन से शत्रु अब तुम्हारे ऊपर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेगा। अतः हे पुत्र! शत्रुओं के प्रति अभिमान त्याग दो तथा इन अन्धे माता-पिता का पालन करो।

व्याख्या– युद्ध के दुष्परिणाम से चिन्तित दुर्योधन के माता-पिता उसे समुचित समयानुकूल परामर्श दे कर युद्ध से विरत होने को कह रहे हैं। सत्य है उन अन्धे माता-पिता का एकमात्र अवशिष्ट सहारा दुर्योधन ही तो है।

TESLA-013

हीयमानान् किल रिपून् नृपाः संदधते कथम् ।

दुःशासनेन हीनोऽहं सानुजः पाण्डवोऽधुना ।। 6 ।।

अन्वयः– किल नृपाः हीयमानात् रिपून कथं संदधते। अधुना अहं दुःशासनेन हीनः पाण्डवः सानुजः।

अनुवाद– वस्तुतः राजागण हीनबल वाले शत्रुओं से क्यों सन्धि करें? आज मैं दुःशासन से रहित हूँ और पाण्डव भाइयों से युक्त हैं।

व्याख्या– उदित होते सूर्य को संसार प्रणाम करता है। दुर्योधन अब पराजय तक पहुँचा हुआ हीनबल राजा है परन्तु पाण्डव विजय श्री को प्राप्त हो रहे हैं। अतः वे क्योंकर दुर्योधन से सन्धि करें।

एकेनापि विनानुजेन मरणं पार्थः प्रतिज्ञातवान्

भ्रातृणां निहते शते विषहते दुर्योधनो जीवितुम् ।

तं दुःशासनशोणिताशनमरिं भिन्नं गदाकोटिना

भीमं दिक्षु न विक्षिपामि कृपणः सन्धिं विदधाम्यहम् ।। 7 ।।

अन्वयः– पार्थः एकेन अपि अनुजेन विना मरणं प्रतिज्ञातवान् । दुर्योधनः भ्रातृणां शते निहते अपि जीवितुं विषहते। दुःशासनशोणिताशनं तम् अरिं भीमं गदाकोटिना भिन्नं (सन्तम्) दिक्षु न विक्षिपामि? कृपणः अहं सन्धिं विदधामि ।

अनुवाद– युधिष्ठिर ने एक भी अनुज के न रहने पर मर जाने की प्रतिज्ञा की है, दुर्योधन सौ भाइयों के मार दिए जाने पर भी जीवित रह सकेगा। दुःशासन का रक्त पीने वाले उस शत्रु भीम को गदा के अग्रभाग से विदीर्ण कर दिशाओं में क्यों न फेंक दूँ? क्या दीन मैं उससे सन्धि करूँ?

व्याख्या–पिता धृतराष्ट्र के आदेश की अवहेलना करता हुआ दुर्योधन युद्ध समाप्त करने को मना कर देता है। वह कहता है कि युधिष्ठिर मात्र चार भाइयों के बिना जीवित रहने की इच्छा नहीं करता है तो मैं सौ भाइयों और प्रिय दुःशासन के बिना क्योंकर जीवित रहूँ, यह असंभव है। प्राण जाते हैं तो जाएँ, मैं पाण्डवों से सन्धि वार्ता कदापि नहीं करूँगा।

कलितभुवना भुक्तैश्वर्यास्तिरस्कृतविद्विषः

प्रणतशिरसां राज्ञां चूडासहस्रकृतार्चनाः।

अभिमुखमरीन् घ्नन्तः संख्ये हताः शतमात्मजा

वहतु सगरेणोढां तातो धुरं सहितोऽम्बया ।। 8 ।।

अन्वयः– कलितभुवनाः भुक्तैश्वर्याः तिरस्कृतविद्विषः प्रणतशिरसां राज्ञां चूडासहस्रकृतार्चनाः शतम् आत्मजाः संख्ये अभिमुखम् अरीन् घ्नन्तः हताः। (अत) अम्बया सहितः तातः सगरेण ऊढां धुरं वहतु।

TESLA-013

अनुवाद– संसार को आक्रान्त करने वाले, ऐश्वर्य का भोग करने वाले, शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले और नतमस्तक राजाओं के सहस्रों मुकुटों से पूजित होने वाले आपके सौ पुत्र संग्राम में आपके सामने शत्रुओं का संहार करते हुए मारे गए। अतः माता सहित पिता सगर के द्वारा धारण किए गए पृथिवी के भार को धारण करें।

व्याख्या– अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार राजा सगर के समस्त भूमंडल के शासक, विविध ऐश्वर्यों का भोग करने वाले और अधीनस्थ सहस्रों राजाओं से पूजित साठ हजार पुत्र कपिल मुनि की शापाग्नि (रूपी युद्ध) में जल कर मर गए, अन्ततः राजा सगर ने ही पृथिवी के शासन का भार उठाया, उसी प्रकार आप भी अपने सौ पुत्रों के मारे जाने पर पृथिवी पर शासन करें।

प्रत्यक्षं हतबान्धवा मम परे हन्तुं न योग्या रहः

किं वा तेन कृतेन तैरिव कृतं यन्न प्रकाश्यं रणे।

एकोऽहं भवतीसुतक्षयकरो मातः कियन्तोऽरयः

साम्यं केवलमेतु दैवमधुना निष्पाण्डवा मेदिनी ।। 9 ।।

अन्वयः– मम प्रत्यक्षं हतबान्धवाः परे रहः हन्तुं न योग्या। वा तेन कृतेन किं यत् तैः इव रणे प्रकाश्यं न कृतम् । मातः! एकः अहं भवतीसुतक्षयकरः, अरयः कियन्तः? अधुना केवलं दैवं साम्यम् एतु, मेदिनी निष्पाण्डवा (भविष्यति)।

अनुवाद– मेरे सामने भाइयों को मारने वाले शत्रु एकान्त में मारने योग्य नहीं हैं। अथवा वह करने से क्या लाभ? जो उनके समान युद्ध में पौरुष प्रकट नहीं किया। माता! एक मैं आपके सौ पुत्रों के नाश का कारण बना, शत्रु कितने हैं? अब केवल भाग्य अनुकूल हो जाए तो धरती पाण्डवों से रहित हो जाएगी।

व्याख्या– दुर्योधन के अनुसार वह किसी गुप्त योजना से नहीं, साक्षात् युद्ध में पाण्डवों का विनाश करना चाहता है क्योंकि पाण्डवों ने भीष्म, द्रोण, दुःशासन आदि युद्धवीरों का विनाश युद्ध में किया किसी गुप्त योजना से नहीं। जब सौ पुत्र युद्ध में मारे जा सकते हैं तो पाँच पाण्डव क्यों नहीं? बस समय बदलने की देर है।

त्यक्तप्राजनरश्मिरङ्किततनुः पार्थाङ्कितैर्मार्गणै–

र्वाहैः स्यन्दनवर्त्मनां परिचयादाकृष्यमाणः शनैः।

वार्तामङ्गपतेर्विलोचनजलैरावेदयन् पृच्छतां

शून्येनैव रथेन याति शिविरं शल्यः कुरूञ्शल्ययन् ।। 10 ।।

अन्वयः– त्यक्तप्राजनरश्मिः पार्थाङ्कितैः मार्गणैः अङ्कितततनुः, स्यन्दनवर्त्मनां परिचयात् वाहैः शनैः आकृष्यमाणः, पृच्छताम् अङ्गपतेः वार्ताम् विलोचनजलैः आवेदयन् , कुरून् शल्ययन् शल्यः शून्येनैव रथेन शिविरं याति।

अनुवाद– चाबुक और लगाम छोड़े हुए, अर्जुन के नाम से अंकित बाणों से चिह्नित शरीर वाला, रथ के मार्गों से परिचित घोड़ों के द्वारा धीरे-धीरे खींचा जाता हुआ, पूछने वालों को अंगराज कर्ण का समाचार आंसुओं से बताता हुआ और कुरुवंशियों को शल्य के समान सालता हुआ शल्य खाली रथ से शिविर को जा रहा है।

TESLA-013

व्याख्या– दुर्योधन को अंगराज कर्ण के युद्ध पौरुष पर पूर्ण विश्वास था। कर्ण उसके मित्र थे, सहायक थे, सेनापति थे। उनकी मृत्यु दुर्योधन के लिए कितनी बड़ी हताशा थी। यह समाचार कांटा हृदय में गड़ने के समान दुःखदायी था।

शल्येन यथा शल्येन मूर्च्छितः प्रविशता जनौघोऽयम् ।

शून्यं कर्णस्य रथं मनोरथमिवाधिरूढेन ।। 11 ।।

अन्वयः– कर्णस्य शून्यं मनोरथमिव रथम् अधिरूढेन शल्येन यथा प्रविशता शल्येन अयं जनौघः मूर्च्छितः।

अनुवाद– कर्ण के शून्य मनोरथ के समान रथ पर चढ़े हुए तथा शल्य (भाले) के समान प्रवेश करते हुए शल्य ने इस जनसमूह को मूर्च्छित कर दिया है।

व्याख्या– कर्ण की मृत्यु दुर्योधन के लिए वज्राघात है। मृत्यु का समाचार सुन कर न केवल दुर्योधन अपितु दुर्योधन के पक्षधर जन भी बेहोश हो कर गिरने लगते हैं।

भीष्मे द्रोणे च निहते य आसीदवलम्बनम् ।

पुत्रस्य मे सुहृत् प्रेयान् राधेयः सोऽप्ययं हतः ।। 12 ।।

अन्वयः– भीष्मे द्रोणे च निहते यः अवलम्बनम् आसीत् , सः अयं मे पुत्रस्य प्रेयान् सुहृत् राधेयः अपि हतः।

अनुवाद– भीष्म और द्रोण के मारे जाने पर जो सहारा बना हुआ था, वह यह मेरे पुत्र का प्रिय मित्र कर्ण भी मार दिया गया।

व्याख्या– कर्ण के वध का समाचार सुन कर पिता धृतराष्ट्र भी शोक विगलित चित्त से व्यथित हो रहे हैं।

अन्धोऽनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः

शोच्यां दशामुपगतः सह भार्ययाहम् ।

अस्मिन्नशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे

दुर्योधनेऽपि हि कृतो भवता निराशः ।। 13 ।।

अन्वयः– अनुभूतशतपुत्रविपत्तिदुःखः अन्धः अहं भार्यया सह शोच्यां दशाम् उपगतः। अशेषितसुहृद्गुरुबन्धुवर्गे अस्मिन् दुर्योधने अपि भवता हि निराशः कृतः।

अनुवाद– सौ पुत्रों के विनाश का दुःख भोगने वाला अन्धा मैं पत्नी के सहित शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया हूँ। समाप्त कर दिए गए मित्रों, गुरुओं और बन्धुओं के समूह वाले इस दुर्योधन के विषय में भी तुमने मुझे निराश कर दिया है।

व्याख्या– पुत्र की असहायता से विवश धृतराष्ट्र भाग्य की निन्दा करते हुए अत्यन्त चिन्तित हैं कि अब उनके प्रिय पुत्र का भविष्य क्या होगा?

अयि कर्ण कर्णसुखदां प्रयच्छ मे

गिरमुद्गिरन्निव मुदं मयि स्थिराम् ।

सततावियुक्तमकृताप्रियं प्रियं

वृषसेनवत्सल विहाय यासि माम् ।। 14 ।।

TESLA-013

अन्वयः– अयि कर्ण! मयि स्थिरां मुदम् उदगिरन् इव मे कर्ण-सुखदां गिरं प्रयच्छ। हे वृषसेनवत्सल! सततावियुक्तम् अकृताप्रियं मां प्रियं विहाय यासि।

अनुवाद– हे कर्ण! मुझसे स्थाई प्रसन्नता का संचार करते हुए कानों को सुख देने वाली वाणी में मुझे उत्तर दो। हे वृषसेन स्नेही! सदा साथ रहने वाले, अप्रिय कार्य न करने वाले मुझ मित्र को छोड़ कर (कहाँ) आ रहे हो।

व्याख्या– वृषसेनवत्सल पद से सम्बोधन का अभिप्राय है कि तुम्हें अपने वृषसेन से मेरी अपेक्षा अधिक स्नेह है अतः तुम मुझे छोड़ कर उसके पास जा रहे हो। परन्तु हमने पर्याप्त समय साथ बिताया है, कभी एक-दूसरे का अप्रिय नहीं किया है, ऐसी घनिष्ठ मैत्री छोड़ कर कहाँ चल दिए।

मम प्राणाधिके तस्मिन्नङ्गानामधिपे हते।

उच्छ्वसन्नपि लज्जेऽहमाश्वासे तात का कथा ।। 15 ।।

अन्वयः– मम प्राणाधिके तस्मिन् अङ्गानाम् अधिपे हते अहम् उच्छ्वसन् अपि लज्जे। तात! आश्वासने का कथा?

अनुवाद– मेरे प्राणों से बढ़कर उस अङ्गराजकर्ण के मारे जाने पर मैं सांस लेने में भी लज्जित हो रहा हूँ। पिता सान्त्वना की तो बात ही क्या?

व्याख्या– दुर्योधन पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि मेरा परम मित्र मेरे कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ, सान्त्वना की तो अब कोई सम्भावना ही नहीं बची है।

शोचामि शोच्यमपि शत्रुहतं न वत्सं

दुःशासनं तमधुना न च बन्धुवर्गम् ।

येनातिदुःश्रवमसाधु कृतं तु कर्णे

कर्तास्मि तस्य निधनं समरे जनस्य ।। 16 ।।

अन्वयः– अधुना शत्रुहतं शोच्यम् अपि वत्सं दुःशासनं न च तं बन्धुवर्गं शोचामि, तु येन कर्णे अतिदुःश्रवम् असाधु कृतं, तस्य जनस्य निधनं समरे कर्ता अस्मि।

अनुवाद– अब शत्रुओं द्वारा मारे गए तथा शोक करने के योग्य भी प्रिय पुत्र, अनुज दुःशासन तथा अन्य बान्धवों का शोक नहीं है किन्तु जिसने कर्ण के साथ अत्यधिक दुःख से सुनने योग्य अनुचित कर्म किया है उस व्यक्ति को युद्ध में मारूँगा।

व्याख्या– एक-एक बान्धव की मृत्यु का समाचार दुःखद है, निराशाप्रद है किन्तु सर्वाधिक दुःखद है मित्र कर्ण की मृत्यु का समाचार। मेरी मित्रता उसके निधन का कारण बनी अतः मैं भी उसके वधकर्ता की हत्या कर अपना कर्त्तव्य निबाहूँगा।

मामुद्दिश्य व्यजन् प्राणान् केनचिन्न निवारितः।

तत्कृते व्यजतो बाष्पं किं मे दीनस्य वार्यते ।। 17 ।।

TESLA-013

अन्वयः– माम् उद्दिश्य प्राणान् व्यजन् केनचित् न निवारितः। तत्कृते बाष्पं व्यजतः दीनस्य मे किं वार्यते।

अनुवाद– मेरे लिए प्राणोत्सर्ग करते हुए कर्ण को किसी ने नहीं रोका (तो) उसके लिए आँसू बहाते हुए मुझ दुःखी को क्यों रोका जा रहा है?

व्याख्या– कर्ण ने सत्यतापूर्वक मित्रधर्म का निर्वाह कर मेरे लिए प्राणों को त्याग दिया, ऐसे घनिष्ठ मित्र के लिए मैं आँसू क्योंकर न बहाऊँ।

भूमौ निमग्नचक्रश्चक्रायुधसारथेः शरैस्तस्य।

निहतः किलेन्द्रसूनोरस्मत्सेनाकृतान्तस्य ।। 18 ।।

अन्वयः– भूमौ निमग्नचक्रः चक्रायुधसारथे अस्मत्सेनाकृतान्तस्य तस्य इन्द्रसूनोः शरैः निहतः किल।

अनुवाद– धरती में धंसे हुए रथ के पहिए वाले कर्ण को, चक्रायुधमुक्त सारथि श्रीकृष्ण वाले और हमारी सेना के लिए यमराजस्वरूप इन्द्रपुत्र अर्जुन के बाणों ने मारा।

व्याख्या– भूमौ निमग्नचक्रः–परशुराम से अस्त्रविद्या सीखते समय त्रुटि वश कर्ण के बाण से एक ब्राह्मण की गाय की हत्या हो गई थी, क्रुद्ध ब्राह्मण ने कर्ण को शाप दिया था कि अन्तिम क्षणों में तुम्हारा रथचक्र धरती में धंस जाएगा तब तुम शत्रु द्वारा मार दिए जाओगे।

इन्द्रसूनु–कुन्ती ने दुर्वासा ऋषि से देवाकर्षण के कुछ मन्त्र प्राप्त किए थे, उनसे पुत्रों की प्राप्ति की थी। अर्जुन कुन्ती और इन्द्र के पुत्र थे।

कर्णाननेन्दुस्मरणात् क्षुभितः शोकसागरः।

वाडवेनेव शिखिना पीयते क्रोधजेन मे ।। 19 ।।

अन्वयः– कर्णाननेन्दुस्मरणात् क्षुभितः शोकसागरः वाडवेन इव मे क्रोधजेन शिखिना पीयते।

अनुवाद– कर्ण के मुखरूपी चन्द्रमा का स्मरण करने से व्याकुल हुआ मेरा शोकसागर बडवानल के समान क्रोध से उत्पन्न हुई अग्नि द्वारा पिया जा रहा है।

व्याख्या– वाडवेन–कहते हैं कि पूर्वकाल में और्व ऋषि की जंघा से अग्नि की उत्पत्ति हुई थी। उसकी बुभुक्षा को शान्त करने के लिए ब्रह्मा ने उसे समुद्र में रहने वाली घोड़ी के मुख में डाल दिया। तब से अग्नि समुद्र जल का भक्षण कर उसे जलाया करता है जिससे संसार जलाप्लावित होने से बच जाता है। इसीलिए अग्नि का एक नाम वडवानल है।

ज्वलनः शोकजन्मा मामयं दहति दुःसहः।

समानायां विपतौ वरं संशयितो रणः ।। 20 ।।

अन्वयः– शोकजन्मा अयं दुःसहः ज्वलनः माम् दहति। समानायां विपतौ संशयितो रणः वरम् ।

अनुवाद– शोक से उत्पन्न यह दुःसह अग्नि मुझे जला रही है। ऐसी स्थिति में समान विपत्ति (युद्ध करने या न करने की स्थिति) होने पर संशय पूर्ण युद्ध करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।

व्याख्या– युद्ध करने पर मृत्यु निश्चित है, युद्ध न करने पर ईर्ष्याग्नि से मरणसम स्थिति है। अतएव युद्ध करना ही उचित होगा।

भवति तनय सत्यं संशयः साहसेषु

द्रवति हृदयमेतद् भीममुत्प्रेक्ष्य भीमम् ।

अनिकृतिनिपुणं ते चेष्टितं मानशौण्ड।

छलबहुलमरीणां सङ्गरं हा हतोऽस्मि ।। 21 ।।

अन्वयः– तनय! साहसेषु सत्यं संशयः भवति (परं) भीमं भीमम् उत्प्रेक्ष्य एतत् हृदयं द्रवति। मानशौण्ड! ते चेष्टितम् अनिकृतिनिपुणम् अरीणां सङ्गरं छलबहुलम् , हा हतः अस्मि।

अनुवाद– पुत्र! साहस के कार्यों में वस्तुतः सन्देह होता है किन्तु भयानक भीम का विचार करके यह हृदय व्याकुल हो उठता है। हे यशस्वी अभिमानी तुम्हारा युद्ध कर्म छल वञ्चनादि रहित है, शत्रु का युद्ध छलपूर्ण है। हाय! मैं मारा गया।

व्याख्या– युद्धादि में पूर्व से ही जय-पराजय का निश्चय कर पाना कठिन है। तुम्हारे विषय में तो और भी कठिन है क्योंकि तुम्हारा विरोधी भीम सदृश बली शत्रु है, तुम्हारा युद्ध कौशल छल रहित है, शत्रु का युद्ध कौशल छलपूर्ण है। अतएव पराजय प्राप्ति की अपेक्षा तुम्हारा युद्ध में न जाना ही उचित है।

पापेन येन हृदयस्य मनोरथो मे

सर्वाङ्गचन्दनरसो नयनामलेन्दुः।

पुत्रस्तवाम्ब ! तव तात नयैकशिष्यः

कर्णो हतः सपदि तत्र शराः पतन्तु ।। 22 ।।

अन्वयः– येन पापेन मे हृदयस्य मनोरथः सर्वाङ्गचन्दनरसः नयनामलेन्दुः अम्ब! तव पुत्रः तात! तव नयैकशिष्यः कर्णः हतः तत्र शराः सपदि पतन्तु।

अनुवाद– जिस दुष्ट ने मेरे हृदय के मनोरथ, समस्त अंगों के चन्दनरस तथा नेत्रों के निर्मल चन्द्र, हे माता! तुम्हारे पुत्र तथा हे पिता! तुम्हारे राजनीति शास्त्र के प्रमुख शिष्य कर्ण को मारा है, उस पर मेरे बाण शीघ्र गिरें।

व्याख्या– दुर्योधन का अभिप्राय है कि इस समय मेरा शत्रु भीम नहीं अर्जुन है, वही वधयोग्य है। उसने मेरे मित्र कर्ण को मारा है अतः मैं प्रथम तो उसे ही मारूँगा।

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते।

आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।। 23 ।।

TESLA-013

अन्वयः– भीष्मे गते, द्रोणे हते, कर्णे च विनिपातिते, राजन् ! शल्यः पाण्डवान् जेष्यति (इति) बलवती आशा।

अनुवाद– भीष्म के चले जाने पर, द्रोण के मारे जाने पर, कर्ण के गिरा दिए जाने पर, हे राजन् ! शल्य पाण्डवों को जीतेगा, यह आशा प्रबल है।

व्याख्या– भीष्म, द्रोणाचार्य व कर्ण सदृश महारथी युद्धभूमि से सुदूर चले गए, अब शल्य पर आशा केन्द्रित करना निराशा देगा। यह असम्भव है कि शल्य युद्ध जीत ले।

कर्णालिङ्गनदायी वा पार्थप्राणहरोऽपि वा।

अनिवारितसम्पातैरयमात्माश्रुवारिभिः ।। 24 ।।

अन्वयः– अनिवारितसम्पातैः अश्रुवारिभिः (सिञ्चित) अयम् आत्मा कर्णालिङ्गनदायी वा पार्थप्राणहरः अपि वा (भविष्यति)।

अनुवाद– धाराप्रवाह बहने वाले आंसुओं के जल से सिंचित यह मेरा आत्मा कर्ण का आलिंगन करेगा या अर्जुन के प्राण हरण करेगा।

व्याख्या– आंसुओं के जल से अभिसिक्त अब मेरा यह शरीर सेनापति पद के योग्य या तो अर्जुन के प्राण लेगा या मृत्यु को प्राप्त कर कर्ण से मिलेगा।

प्राप्तावेकरथारूढौ पृच्छन्तौ त्वामितस्ततः।

स कर्णारिः स च क्रूरो वृककर्मा वृकोदरः ।। 25 ।।

अन्वयः– एकरथारूढौ इतस्ततः त्वां पृच्छन्तौ प्राप्तौ। स कर्णारिः स च वृककर्मा क्रूरः वृकोदरः।

अनुवाद– एक रथ पर बैठे हुए तथा इधर उधर आपको पूछते हुए दो लोग आए हैं। वह कर्ण शत्रु अर्जुन और भयंकर कर्म करने वाला क्रूर भीम।

व्याख्या– दुर्योधन कर्ण की मृत्यु का समाचार सुन कर क्रोधोन्मत्त है, उसी समय सारथि अर्जुन और भीम के आने की सूचना लेकर उपस्थित होता है। वे दोनों दुर्योधन के प्राण लेने की इच्छा से उसे ढूँढ़ते हुए आए हैं।

कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दपिनः सोऽतिमानी

कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत् पाण्डवा यस्य दासाः।

राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रं

क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न रुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः।। 26 ।।

अन्वयः– द्यूतच्छलानां कर्ता, जतुमयशरणोद्दपिनः सः अतिमानी, कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनमरुत् , यस्य पाण्डवाः दासाः दुःशासनादेः अनुजशतस्य गुरुः, अङ्गराजस्य मित्रम् , असौ राजा दुर्योधनः क्व आस्ते, कथयत, न रुषा, द्रष्टुम् अभ्यागतौ स्वः।

अनुवाद– जुआँ आदि छलों का करने वाला, लाक्षागृह को जलाने वाला वह अतिमानी, द्रौपदी के केश और उत्तरीय को खींचने में वायु के समान, पाण्डव जिसके दास हैं, दुःशासन आदि सो भाइयों में जेष्ठ और अङ्गराज कर्ण का मित्र वह राजा दुर्योधन कहाँ है, कहिए, क्रोध से नहीं बल्कि यू ही देखने के लिए हम दोनों आए हैं।

व्याख्या– युद्ध में सभी महारथियों को मार कर पाण्डव अन्तिम अवशिष्ट दुर्योधन को मारने के लिए युद्धभूमि में उसे खोज रहे हैं। उसके एक-एक अधर्म की याद दिला कर न्यायसंगत रूप से उसे मारने का उपक्रम कर रहे हैं।

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते

तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः।

रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य

प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम् ।। 26 ।।

अन्वयः– ते सुतैः यत्र सकलरिपुजयाशा बद्धा, यस्य गर्वेण लोकः तृणमिव परिभूतः, तस्य राधासुतस्य रणशिरसि निहन्ता अयं मध्यमः पाण्डवः वां पितरौ प्रणमति।

अनुवाद– आपके पुत्रों ने जिसके बल पर समस्त शत्रुओं को जीत लेने की आशा बाँधी थी, जिसके गर्व से संसार को तिनके के समान अपमानित किया जाता था, उस राधा पुत्र कर्ण को संग्राम भूमि में मारने वाला यह मध्यम पाण्डव अर्जुन आप माता और पिता को प्रणाम करता है।

व्याख्या– अर्जुन की उक्ति से ध्वनित है कि आपके पुत्र अपनी शक्ति से नहीं, कर्ण की शक्ति से संग्राम में विजय की आशा लगाए थे। उनकी यह आशा धूलिधूसरित हो चुकी है क्योंकि कर्ण युद्ध भूमि में मारा जा चुका है।

मध्यमः पाण्डवः–अर्जुन–अपना नाम उच्चरित कर ज्येष्ठ जनों को प्रणाम करने की परम्परा है।

चूर्णिताशेषकौरव्यः छीबो दुःशासनासृजा।

भङ्क्ता सुयोधनस्योर्वोर्भीमोऽयं शिरसाञ्चति ।। 28 ।।

अन्वयः– चूर्णिताशेषकौरव्यः दुःशासनासृजा छीबः सुयोधनस्य ऊर्वोः भङ्क्ता अयं भीमः शिरसा अञ्चति।

अनुवाद– समस्त कौरवों का नाश कर देने वाला, दुःशासन के रक्तपान से मतवाला, दुर्योधन की जंघाओं को तोड़ने वाला यह भीम सिर झुका कर प्रणाम करता है।

व्याख्या– यहाँ भीम के कथन में नितान्त क्रूरता है। वे कौरवों के अन्याय, अत्याचार और अनीतियों के साक्षी धृतराष्ट्र को पापों के भयंकर परिणाम सुना कर व्यथित कर रहे हैं।

कृष्णा केशेषु कृष्टा तव सदसि वधूः पाण्डवानां नृपैर्यैः

सर्वे ते क्रोधवह्नौ कृशशलभकुलावज्ञया येन दग्धाः।

एतस्माच्छ्रावयेऽहं न खलु भुजबलश्लाघया नापि दर्पात्

पुत्रैः पौत्रैश्च कर्मण्यतिगुरुणि कृते तात साक्षी त्वमेव ।। 29 ।।

TESLA-013

अन्वयः– तव सदसि यैः नृपैः पाण्डवानां वधूः कृष्णा केशेषु कृष्टा, ते सर्वे येन क्रोधवह्नौ कृशशलभकुलावज्ञया दग्धाः एतस्मात् अहं श्रावये न खलु भुजबलश्लाघया नापि दर्पात् (श्रावये)। तात! पुत्रैः पौत्रैश्च कृते अति गुरुणि कर्मणि त्वमेव साक्षी।

अनुवाद– आपकी सभा में जिन राजाओं ने पाण्डववधू द्रौपदी के केश खींचे, वे सब जिस कारण से क्रोधाग्नि में क्षुद्र पतंगों की तरह अवज्ञापूर्वक जला दिये गए, इसलिए मैं सुना रहा हूँ, बाहुबल की प्रशंसा के कारण या अभिमानपूर्वक नहीं सुना रहा हूँ। पिता! पुत्रों और पौत्रों के लिए हुए महान् कर्मों के आप ही साक्षी हैं।

व्याख्या– भीम का अभिप्राय है कि आप कुल ज्येष्ठ थे, आपकी उपस्थिति में कुलवधू के साथ अनाचार हुआ, आप शान्त बैठे रहे। आप अनाचार करने वाले जीवित नहीं हैं, यह बात आपको अच्छी प्रकार जान लेनी चाहिए। मैं केवल आपको सत्य बता रहा हूँ क्योंकि पुत्रों आदि के महान् कर्म आपने देखे, अब उनके परिणाम भी तो देखें।

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राज्ञस्तयोर्वा

प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी।

अस्मिन् वैरानुबन्धे वद किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा

बाह्वोर्वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं मामिजित्वैव दर्पः ।। 30 ।।

अन्वयः– मम भुवनपतेः आज्ञया भूपतीनां प्रत्यक्षं द्यूतदासी तव पशोः तव च तस्य राज्ञः तयोः वा भार्या केशेषु कृष्टा। वद, अस्मिन् वैरानुबन्धे ये नरेन्द्राः हताः तैः किम् अपकृतम् ? बाह्वोः वीर्यातिरेकद्रविणगुरुमदं माम् अजित्वा एव दर्पः (क्रियते) !

अनुवाद– मुझ अधिपति की आज्ञा से राजाओं के सामने जुएँ में जीत कर दासी बनाई गई तुझ पशु की, तेरी (अर्जुन की), उस (राजा युधिष्ठिर) की अथवा उन दोनों (नकुल और सहदेव) की पत्नी केश पकड़ कर खींची गई थी। बता, इस शत्रुता के प्रसंग में जो राजा मारे गए, उन्होंने क्या अपकार किया था? भुजाओं के बल की अधिकता रूपी धन के अभिमान से महामत्त मुझको बिना जीते ही (तुझे) गर्व कर रहा है?

व्याख्या– दुर्योधन अपने ही दुष्कर्म को न्यायसिद्ध करते हुए कहता है कि तुम पाँचों की पत्नी जुएँ में हारे जाने पर दासी बनी थी अतः केशाकर्षण अनुचित न था। तुमने ही निरपराध राजाओं की हत्या कर अनुचित किया है और फिर विजयोल्लसित तो तब होना, जब मुझ महाबली को जीत लेना।

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा।

हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ।। 31 ।।

अन्वयः– हतभ्रातृशतः दुःखी एषः वाचा अप्रियाणि करोति, कर्मणा न शक्तः। अस्य प्रलापैः का व्यथा?

अनुवाद– मारे गए सौ भाइयों वाला अतः दुःखी यह दुर्योधन केवल वाणी से अप्रिय वचन बोल रहा है, कर्म में असमर्थ है। इसके प्रलाप से क्या व्याकुल होना?

व्याख्या– दुर्योधन के कटु वचन सुन कर उत्तेजित भीम को शान्त करते हुए अर्जुन कहते हैं कि यह केवल बातें बड़ी-बड़ी कर रहा है, हमारा अपकार तो कर नहीं सकता। अतः आप शान्त रहिए।

अत्रैव किं न विशसेयमहं भवन्तं

दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन् ।

विघ्नं गुरुर्न कुरुते यदि मद्गदाग्र–

निर्भिद्यमानरणिताऽस्थनि ते शरीरे ।। 32 ।।

अन्वयः– कटुप्रलापिन् ! यदि मद्गदाग्रनिर्भिद्यमानरणिताऽस्थनि ते शरीरे गुरुः विघ्नं न कुरुते, दुःशासनानुगमनाय भवन्तम् अहम् अत्रैव किं न विशसेयम् ?

अनुवाद– हे कटुभाषी, यदि मेरी गदा के अग्र भाग से तोड़ी गई चरमराती हुई हड्डियों वाले तेरे शरीर के विषय में गुरुजन विघ्न न डालें तो दुःशासन का अनुगमन करने के लिए तुमको मैं यहीं क्यों न मार देता?

व्याख्या– भीम का अभिप्राय है कि अभी मारने पर पिता धृतराष्ट्र मुझे रोकेंगे अन्यथा तुम्हें जीवित न छोड़ता ।

शोकं स्त्रीवन्नयनसलिलैर्यत् परित्याजितोऽसि

भ्रातुर्वक्षः स्थल विघटने यच्च साक्षीकृतोऽसि।

आसीदेतत् तव कुनृपतेः कारणं साक्षीकृतोऽसि।

क्रुद्धे युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने ।। 33 ।।

अन्वयः– युष्मत्कुलकमलिनीकुञ्जरे भीमसेने क्रुद्धे तव कुनृपतेः जीवितस्य कारणम् एतत् आसीत् यत् स्त्रीवत् नयनसलिलैः शोकं परित्याजितः असि यच्च भ्रार्तुवक्षः स्थलविघटने साक्षीकृतः असि।

अनुवाद– तेरे कुलरूपी कममिनी के लिए हाथीरूपी भीमसेन के क्रुद्ध होने पर तुझ निकृष्ट राजा के जीवित रहने का कारण यह था कि स्त्रियों के समान आंसुओं से शोक को प्रकट करवाया और भाई दुःशासन के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने में तुझे साक्षी बनाया।

व्याख्या– अभिप्राय यह कि जिस प्रकार स्त्रियाँ प्रियजन की मृत्यु पर आंसू बहा कर, रोकर शोक को हल्का करती हैं उसी तरह तुझे रुलाया। तेरे छोटे भाई दुःशासन का हृदय विदीर्ण कर तुझे व्यथित किया–ये दोनों हृदयविदारक घटनाएँ देखने के लिए तुझे अब तक जीवित रहने दिया।

द्रक्ष्यन्ति न चिरात् सुप्तं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे।

मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणम् ।। 34 ।।

TESLA-013

अन्वयः– बान्धवाः त्वां रणाङ्गणे मद्गदाभिन्नवक्षोऽस्थिवेणिकाभीमभूषणं न चिरात् सुप्तं द्रक्ष्यन्ति ।

अनुवाद– तेरे बन्धुगण मेरी गदा से विदीर्ण की गई वक्षःस्थल की अस्थियों की माला से अलङ्कृत तुझे शीघ्र ही रणभूमि में देखेंगे।

व्याख्या– दुर्योधन भीमसेन के व्यङ्ग्य वाक्यों का उत्तर देता हुआ उसे अपनी गदा का भय दिखाता है कि युद्धभूमि में अब मेरी गदा तेरे प्राण लेगी।

पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाघातसञ्चूर्णितोरोः

क्रूरस्याधाय पादं तव शिरसि नृणां पश्यतां श्वः प्रभाते।

त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेनानखाग्रं

स्त्यानेनाद्रेण चाक्तः स्वयमनुभविता भूषणं भीममस्मि ।। 35 ।।

अन्वयः– श्वः प्रभाते नृणां पश्यतां पीनाभ्यां मद्भुजाभ्यां भ्रमितगुरुगदाघातसञ्चूर्णितोरोः क्रूरस्य तव शिरसि पादम् आधाय स्त्यानेन आद्रेण च त्वन्मुख्यभ्रातृचक्रोद्दलनगलदसृक्चन्दनेन आनश्वाग्रम् अक्तः स्वयं भीमं भूषणम् अनुभविता अस्मि।

अनुवाद– कल प्रातःकाल लोगों के देखते-देखते, मेरी स्थूल भुजाओं द्वारा चलाई गई विशाल गदा के प्रहार से चकनाचूर की गई जांघों वाले तुझ क्रूर के शिर पर पैर रख कर गाढ़े और गीले, सौ भाइयों के मध्य में प्रमुख तथा अवशिष्ट, तेरे टपक रहे रक्तरूपी चन्दन से नखाग्र पर्यन्त रक्त से सना हुआ मैं भयंकर भूषण धारण करने का अनुभव करूँगा।

व्याख्या– भीम आदि पाण्डवों के सुचिरप्राप्त कष्ट, अपमान, यातना का कारण अभिमानी, दुर्योधन का हठ है, अतः उसका वध उचित और अनिवार्य है। उसे मारकर ही अन्याय और अपमान का प्रतिशोध पूर्ण होगा, अतः भीम की यह उक्ति सार्थक है।

कुर्वन्त्वाप्ता हतानां रणशिरसि जना वह्निसाद्देहभारा–

नश्रून्मिश्रं कथञ्चिद्ददतु जलमयी बान्धवा बान्धवेभ्यः।

मार्गन्तां ज्ञातिदेहान् हतनरगहने खण्डितान् गृध्रकङ्कैः–

रस्तं भास्वान् प्रयातः सह रिपुभिरयं संह्रियन्तां बलानि ।। 36 ।।

अन्वयः– आप्ताः जनाः रणशिरसि हतानां देहभारान् वह्निसात् कुर्वन्तु, अमी बान्धवा बान्धवेभ्यः अश्रून्मिश्रं जलं कथञ्चित् ददतु, हतनरगहने गृध्रकङ्कैः खण्डितान् ज्ञातिदेहान् मार्गन्ताम् , अयं भास्वान् रिपुभिः सह अस्तं प्रयातः, (अतः) बलानि संह्रियन्ताम् ।

अनुवाद– कुटुम्ब के लोग युद्धभूमि में मारे गए शरीरों के शवों का अग्निसंस्कार करें, ये बान्धव बन्धुजनों को अश्रुमिश्रित जलाञ्जलि किसी प्रकार दें, गृधकङ्क आदि पक्षियों द्वारा टुकड़े-टुकड़े किए गए सम्बन्धियों के शरीरों को मारे गए मनुष्यों की लाशों के ढेर में खोजें। यह भगवान् सूर्य शत्रुओं के (अन्त के) साथ ही अस्त हो रहे हैं अतः सेनाओं को एकत्रित कर लिया जाए।

TESLA-013

व्याख्या– नेपथ्य से सूर्यास्त के साथ ही युद्ध समाप्ति की घोषणा का यह स्वर महाराज युधिष्ठिर का है। इस उद्घोष में युद्ध की विभीषिका वर्णित है। युद्ध से परिवार नष्ट हो जाते हैं, प्रियजन असमय ही सदा के लिए वियुक्त हो जाते हैं।

कर्णक्रोधेन युष्मद्विजियि धनुरिदं त्यक्तमेतान्यहानि

प्रौढं विक्रान्तमासीद् वन इव भवतां शूरशून्ये रणेऽस्मिन् ।

स्पर्शं स्मृत्वोत्तमाङ्गे पितुरनवजितन्यस्तहेतेरुपेतः

कल्पाग्निः पाण्डवानां द्रुपदसुतचमूघस्मरो द्रौणिरस्मि ।। 37 ।।

अन्वयः– एतानि अहानि कर्णक्रोधेन युष्मद विजयि इदं धनुः त्यक्तं, (अतएव) अस्मिन् शूरशून्ये वने इव रणे भवतां विक्रान्तं प्रौढम् आसीत् । अनवजित न्यस्तहेतेः पितुः उत्तमाङ्गे स्पृशं स्मृत्वा पाण्डवानां कल्पाग्निः द्रुपदसुतचमूघस्मरः द्रौणिः उपेतः अस्मि।

अनुवाद– इन दिनों कर्ण के प्रति क्रोध के कारण तुम लोगों पर विजय प्राप्त करने वाला यह धनुष मैने त्याग दिया था अतएव इस वीरविहीन वन के समान युद्ध में तुम्हारा पराक्रम बढ़ा रहा। परन्तु अब अपराजित तथा शस्त्र त्याग करने वाले पिता के सिर पर किए गए स्पर्श को याद करके पाण्डवों के लिए प्रलयाग्नि के समान द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न की सेना का विनाश करने वाला मैं द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आ गया हूँ।

व्याख्या– अश्वत्थामा कर्ण को सहन नहीं करता था अतः कर्ण के सेनापतित्व में कार्य न करने की इच्छा से अश्वत्थामा ने शस्त्र त्याग दिए थे। अब कर्ण के वध के पश्चात् वह शस्त्रग्रहण कर दुर्योधन का साथ देने को प्रस्तुत है।

कर्णेन कर्णसुभगं बहु यत्तदुक्त्वा

यत्सङ्गरेषु विहितं विदितं त्वया तत् ।

द्रौणिस्त्वधिज्यधनुरापतितोऽभ्यमित्र–

मेषोऽधुना त्यज नृप प्रतिकारचिन्ताम् ।। 38 ।।

अन्वयः– कर्णेन कर्णसुभगं बहु यत् तत् उक्त्वा सङ्गरेषु यत् विहितं तत् त्वया विदितम् । अधुना अधिज्यधनुः एष द्रौणिः अभ्यमित्रम् आपतितः। (अतएव) नृप! प्रतिकारचिन्तां त्यज।

अनुवाद–कर्ण ने कानों को प्रिय लगने वाली बहुत सी मीठी-मीठी बातें कह कर युद्ध में जो किया, वह आप लोगों को ज्ञात है। अब धनुष पर डोरी चढ़ाए हुए यह अश्वत्थामा शत्रुओं के सम्मुख आ गया है, अतः हे राजन् ! शत्रु से प्रतिशोध की चिन्ता को त्याग दीजिए।

TESLA-013

व्याख्या– अश्वत्थामा का 'प्रतिशोध' से अभिप्राय है–दुःशासन के वध की चिन्ता क्योंकि कर्ण की मृत्यु से तो वह प्रसन्न था, उसका प्रतिद्वन्द्वी मारा गया।

अवसानेऽङ्गराजस्य योद्धव्यं भवता किल।

ममाप्यन्तं प्रतीक्षस्व कः कर्णः कः सुयोधनः ।। 39 ।।

अन्वयः– अङ्गराजस्य भवता योद्धव्यं किल। मम अपि अन्तं प्रतीक्षस्व, कः कर्णः कः सुयोधनः।

अनुवाद– कर्ण के मारे जाने पर ही आपको युद्ध करना था। मेरे अन्त की भी प्रतीक्षा कर लीजिए, मेरे लिए कर्ण और सुयोधन एक समान हैं।

व्याख्या– दुर्योधन कर्ण की निन्दा से खिन्न हो कर अश्वत्थामा से कहता है कि मेरा परम मित्र था कर्ण, उसकी मृत्यु मेरी मृत्यु है। उस समय तो आप रणभूमि से पलायन कर गए, अब वीरता दिखा रहे हैं।

अकलितमहिमानं क्षत्रियैरात्तचापैः

समरशिरसि युष्मद्भाग्यदोषाद् विपन्नम् ।

परिवदति समक्षं मित्रमङ्गाधिराजं

मम खलु कथयास्मिन् को विशेषोऽर्जुन वा ।। 40 ।।

अन्वयः– आत्तचापैः क्षत्रियैः अकलितमहिमानं युष्मद्भाग्यदोषात् समरशिरसि विपन्नं मित्रम् अङ्गाधिराजं मम समक्षं परिवदति। कथय खलु अस्मिन् अर्जुने वा कः विशेषः?

अनुवाद– धनुष ग्रहण किए हुए क्षत्रिय जिसकी महिमा नहीं समझ पाए, जो तुम सबके दुर्भाग्य से युद्ध भूमि में मारा गया, उस मित्र अंगराज कर्ण की मेरे समक्ष निन्दा कर रहे हो। बताइए, इस अश्वत्थामा और अर्जुन में कोई अन्तर है?

व्याख्या– भाव यह कि वीर क्षत्रिय भी जिसकी प्रतिभा को नहीं जान पाए जो मेरे कारण युद्धभूमि में मारा गया अथवा कौरवसेना का दुर्भाग्य कि उनके पक्ष का ऐसा महायोद्धा युद्धक्षेत्र में मारा गया। ऐसे वीर की जो अश्वत्थामा निन्दा करे उसे मैं शत्रु अर्जुन के समान शत्रु मानता हूँ।

स्मरति न भवान् पीतं स्तन्यं विभज्य सहामुना

मम च मृदितं क्षौमं बाल्ये त्वदङ्गविवर्तनैः।

अनुजनिधनस्फीताच्छोकादतिप्रणयाच्च तद्

विकृतवचने मास्मिन् क्रोधश्चिरं क्रियतां त्वया ।। 41 ।।

अन्वयः–बाल्ये अमुना सह विभज्य पीतं स्तन्यं, त्वदङ्गविवर्तनैः मृदितं मम क्षौमं च भवान न स्मरति? तत् अनुजनिधनस्फीतात् शोकात् कर्णे अति प्रणयात्च विकृतवचने अस्मिन् त्वया चिरं क्रोधः मा क्रियताम् ।

अनुवाद– बाल्यकाल में इस दुर्योधन के साथ बाँट कर पिए गए माँ के दूध की तथा शरीर लोट-पोट कर रौंदे गए मेरे रेशमी वस्त्र को क्या आप नहीं याद करते हैं? तो छोटे

भाइयों के मारे जाने से बढ़े हुए शोक वाले तथा कर्ण के प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण अनुचित वचन बोलने वाले इस दुर्योधन पर आप चिरकाल तक क्रोध न करें।

व्याख्या– कहावत है 'डूबते को तिनके का सहारा', इस समय जब कौरव योद्धा नष्टप्राय हैं, अश्वत्थामा का आ पहुँचना सन्तोषदायक है। दुर्योधन अपने दुराग्रह में इस सहायता को भी खो रहा है परन्तु पिता धृतराष्ट्र अनुभवी हैं, वे समय की आवश्यकता को जान कर अश्वत्थामा को गान्धारी और अपने पुत्रवत् स्नेह की याद दिला कर शान्त करते हैं।

यन्मोचितस्तव पिता वितथेन शस्त्रं

यत्तादृशः परिभवः स तथाविधोऽभूत् ।

एतद् विचिन्त्य बलमात्मनि पौरुषं च

दुर्योधनोक्तमपहाय विधास्यसीति ।। 42 ।।

अन्वयः– यत् वितथेन तव पिता शस्त्रं मोचितः यत् तादृशः सः तथाविधः परिभवः अभूत्, एतत् आत्मनि बल पौरुषं च विचिन्त्य दुर्योधनोक्त्म् अपहाय विधास्यसि इति।

अनुवाद– जो असत्यभाषण द्वारा तुम्हारे पिता से शस्त्रत्याग करवाया गया, जो प्रख्यात उनका उस प्रकार का अपमान किया गया, यह विचार करके तथा अपनी शक्ति और पुरुषार्थ का विचार करके दुर्योधन के वचनों को भूल कर तुम उचित कार्य करो।

व्याख्या– दुर्योधन की सहायता और रक्षा को व्यग्रपिता किसी प्रकार समझा-बुझा कर अश्वत्थामा को दुर्योधन के पक्ष में लाने का प्रयास कर रहे हैं। संभवतः यही प्रयास उनके पुत्र की प्राणरक्षा कर ले।

इति पञ्चमोऽङ्कः

4.5 षष्ठ अङ्क के श्लोकों की हिन्दी व्याख्या, एवं अनुवाद

षष्ठोऽङ्कः

तीर्णे भीष्ममहोदधौ कथमपि द्रोणानले निवृते

कर्णाशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्ये च याते दिवम् ।

भीमेन प्रियसाहसेन रभसात् स्वल्पावशेषे जये

सर्वे जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः ।। 1 ।।

अन्वयः– कथम् अपि भीष्मसहोदधौ तीर्णे द्रोणानले निर्वृते कर्णाशीविषभोगिनि प्रशमिते शल्ये दिवं याते च जये स्वल्पावशेषे, (सति) प्रियसाहसेन भीमेन, रभसात् वाचा अमी सर्वे वयं जीवितसंशयं समारोपितः।

अनुवाद– किसी प्रकार भीष्म रूपी महासागर को पार कर, द्रोण रूपी अग्नि के बुझ जाने पर, कर्ण रूपी विषधर के नष्ट हो जाने पर और विजय के थोड़ा अवशिष्ट रह जाने पर

TESLA-013

साहसी भीम ने आवेग में (प्रतिज्ञारूपी) वाणी से हम सबके जीवन को संशय में डाल दिया है।

व्याख्या– आशीविषभोगिनि–सर्प का नाम आशीविष है, 'भोगिनि' पद की आवश्यकता नहीं है किन्तु जोड़ देने से भयंकर विषधर अर्थ निकलता है।

भीम की प्रतिज्ञा थी कि आज ही दुर्योधन का वध करूँगा अन्यथा स्वयं प्राणत्याग दूँगा। प्रतिज्ञा सुन कर दुर्योधन किसी सरोवर में छिप गया। युधिष्ठिर चिन्तित हुए कि यदि दुर्योधन सायंकाल तक न मिला तो भीम प्राण दे देंगे। भीम के न रहने पर मैं प्राण दे दूँगा। मेरे न रहने पर मेरे अन्य अनुज भी जीवित न रहेंगे। इस प्रकार हम प्रतिज्ञा से पाँचों भाइयों के प्राण संकट में है।

पङ्के वा सैकते वा सुनिभृतपदवीवेदिनो यान्तु दाशाः

कुञ्जेषु क्षुण्णवीरुन्निचय परिचया बल्लवाः सञ्चरन्तु!

व्याधा व्याघ्राटवीषु स्वपरपदविदो ये च रन्ध्रेष्वभिज्ञा

ये सिद्धव्यजना वा प्रतिमुनिनिलयं ते च चाराश्चरन्तु ।। 2 ।।

अन्वयः– मुनिभृतपदवीवेदिनः दाशाः पंकेवा सैकते वा यान्तु, क्षुण्णवीरुन्निचयपरिचयाः वल्लवाः कुञ्जेषु सञ्चरन्तु, व्याघ्राऽटवीषु स्वपरपदविदः व्याधाः रन्ध्रेषु अभिज्ञाः (सञ्चरन्तु), ये वा सिद्धव्यञ्जनाः ते चाराः प्रतिमुनिनिलयं चरन्तु।

अनुवाद– अत्यन्त गोपनीय चिह्नों को जानने वाले मछुआरे कीचड़ अथवा बालू में खोजने जाएँ। पैरों से रौंदी गई लताओं से परिचित ग्वाले झाड़ियों में खोजने जाएँ। व्याघ्र आदि वाले वनों में अपने और दूसरों के पदचिह्नों का पहचानने वाले शिकारी गुफाओं को पहचान कर खोजने जाएँ। जो सिद्धपुरुषों का वेश धारण करने वाले गुप्तचर हैं वे प्रत्येक ऋषि के आश्रम में खोजने जाएँ।

व्याख्या– युधिष्ठिर जानते हैं कि यह 'करो या मरो' का क्षण है। यदि दुर्योधन सायंकाल तक न मिला तो हम पाँचों भाइयों का अन्त निश्चित है। अतः प्रत्येक सम्भावित स्थल पर दुर्योधन को खोज निकालना कथमपि आवश्यक है।

ज्ञेया रहःशङ्कितमालपन्तः

सुप्ता रुगार्ता मदिराविधेयाः।

त्रासो मृगाणां वयसां विरावो

नृपाङ्कपादप्रतिमाश्च यत्र ।। 3 ।।

अन्वयः– रहःशङ्कितम् आलपन्तः सुप्ताः रुगार्ताः मदिराविधेया ज्ञेयाः, यत्र मृगाणां त्रासः वयसां विरावः च नृपाङ्कपादप्रतिमाः (ते प्रदेशाः ज्ञेयाः)।

अनुवाद– एकान्त में शंकित हो कर वार्तालाप करते हुए, सोए हुए, रोग से त्रस्त तथा मदिरा से मत्त लोगों का निरीक्षण करें। जहाँ पशु भयभीत हो, पक्षियों का कोलाहल हो

और राजा के लक्षणों से युक्त पदचिह्न, हों, उन स्थलों को भी देखना चाहिए।

व्याख्या– यहाँ भी युधिष्ठिर प्रत्येक संभावित स्थल पर दुर्योधन को खोजने का आदेश दे रहे हैं। अन्यायी का अन्त करना ही होगा अन्यथा समाज व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी अतः युधिष्ठिर का आदेश कालोचित प्रतीत होता है।

त्रस्तं विनाऽपि विषयादुरुविक्रमस्य

चेतो विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति।

जानामि चोद्यतगदस्य वृकोदरस्य

सारं रणेषु भुजयोः परिशङ्कितश्च ।। 4 ।।

अन्वयः– विषयाद् विना अपि त्रस्तं मे चेतः विवेकपरिमन्थरतां प्रयाति, उरुविक्रमस्य उद्यतगदस्य च वृकोदरस्य सारं रणेषु जानामि तथापि परिशङ्कितं च अस्मि।

अनुवाद– पराक्रमी पुरुष का मन भी बिना किसी कारण के ही भयभीत हो कर विचार करने में शिथिल हो गया है। मैं युद्धभूमि में उठी हुई गदा वाले भीमसेन के भुजबल को अच्छी तरह जानता हूँ तथापि आशङ्कित हूँ।

व्याख्या– युधिष्ठिर के प्रति अनुज भीम दुर्योधन से गदा युद्ध कर रहे हैं अतः दुर्योधन संकल्प-विकल्प सोचते हैं। यद्यपि भीम के भुजबल को जानने वाले युधिष्ठिर को सन्देह नहीं होना चाहिए। परन्तु मानव का यह स्वभाव है कि जब उसका अत्यन्त प्रिय व्यक्ति कोई कठिन कार्य करता है तो स्वाभाविक रूप से मन सशंकित हो जाता है।

गुरूणां बन्धूनां क्षितिपतिसहस्रस्य च पुरः

पुराऽभूदस्माकं नृपसदसि योऽयं परिभवः।

प्रिये प्रायस्तस्य द्वितयमपि पारं गमयति

क्षय प्राणानां नः कुरुपतिपशोर्वाऽद्य निधनम् ।। 5 ।।

अन्वयः– प्रिये, गुरूणां बन्धूनां क्षितिपतिसहस्रस्य च पुरः नृपसदसि अस्माकं यः अयं परिभवः पुरा अभूत् तस्य द्वितीयम् अपि प्रायः पारं गमयति, अद्य नः प्रणानां क्षयः वा कुरुपतिपशोः निधनम् ।

अनुवाद– अयि प्रिये! गुरुजनों, कुटुम्बिनों, कुटुम्बियों तथा सहस्रों राजाओं के सामने राजसभा में पहिले जो यह हमारा अपमान हुआ था, उसके पार दो ही बातें हमें पहुँचा सकती हैं–हमारे प्राणों का नाश या पशुतुल्य कौरवपति के प्राणों का आज ही निधन।

व्याख्या– युधिष्ठिर का द्रौपदी के प्रति कथन द्रौपदी के अपमान और व्यथा को सूचित करता है। भीमसेन की पराजय पाँचों भाइयों को प्राणान्त करने को विवश करेगी किन्तु दुर्योधन की मृत्यु अपमान को सम्मान में परिवर्तित कर देगी।

नूनं तेनाऽद्य वीरेण प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा।

बध्यते केशपाशस्ते स चास्याकर्षणक्षमः ।। 6 ।।

TESLA-013

अन्वयः– नूनम् अद्य तेन प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा वीरेण ते केशपाशः बध्यते, सः अस्य (केशपाशस्य) आकर्षणक्षमः (बध्यते) च।

अनुवाद– आज निश्चय ही प्रतिज्ञा खंडित होने के भय से वह वीर भीमसेन तुम्हारे इस केशसमूह और इन्हें खींचने वाले दुर्योधन को बांध देगा।

व्याख्या– बध्यते–द्रौपदी के केशप्रसंग में इस पद का अर्थ 'बाँध देगा' तथा दुर्योधन के केशकर्षण के सम्बन्ध में इस पद का अर्थ वध्यते अर्थात् 'वध कर देगा' प्रतीत होता है।

जन्मेन्दोर्विमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां

मां दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबं रिपुं भाषते।

दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे

मत्त्रासान्नृपशो! विहाय समरं पङ्केऽधुना लीयसे ।। 7 ।।

अन्वयः– नृपशो! विमले इन्दोः कुले जन्म व्यपदिशसि, अद्यापि गदां धत्से, मां दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबं रिपुं भाषसे, मधुकैटभद्विषि हरौ अपि दर्पान्धः उद्धत चेष्टसे, अधुना मत्त्रासात् पङ्के लीयसे।

अनुवाद– हे नराधम। तुम चन्द्रमा के निर्मल कुल में अपना जन्म कह रहे हो, अब भी तुम्हारे हाथ में गदा है, दुःशासन के किंचिद् उष्ण रक्तरूपी मदिरा से मत्त मुझे शत्रु कह रहे हो, अहङ्कार से अन्धे मधु और कैटभ राक्षस के शत्रु, विष्णु के अवतार भगवान् वासुदेव के प्रति भी असभ्यता दिखाते हो, अब मुझसे डर कर युद्धभूमि से भाग कर कीचड़ में आ कर छिपे हो।

व्याख्या– भीम का अभिप्राय यह है कि अभी भी तुम्हारे कृत्य क्षमायोग्य नहीं है। तुमने मधु और कैटभ सदृश राक्षसों का वध करने वाले कृष्ण के साथ भी दुर्व्यव्हार किया, वे कृष्ण जो राक्षसों को मार सकते हैं तुम मनुष्य को तो क्षणांश में समाप्त कर सकते हैं, तुमने उन कृष्ण के महत्त्व को भी नहीं समझा तो अब उन कृत्यों का दण्ड भोगो, अब प्राणरक्षा असम्भव है।

पाञ्चाल्या मन्युवह्निः स्फुटमुपशमितप्राय एव प्रसह्य

प्रोन्मुक्तैः केशपाशैर्हतपतिषु मया कौरवान्तः पुरेषु।

भ्रातुर्दुःशासनस्य स्रवदसृगुरसः पीयमानं निरीक्ष्य

क्रोधात्किं भीमसेने विहितमसमये यत्त्वयाऽस्तोऽभिमानः ।। 8 ।।

अन्वयः– मया कौरवान्तः पुरुषे प्रसह्य हतपतिषु प्रोन्मुक्तैः केशपाशैः पाञ्चाल्याः मन्युवह्निः उपशमितप्रायः एव, भ्रातुः दुःशासनस्य उरसः स्रवत् असृक् (मया) पीयमानं निरीक्ष्य क्रोधात् भीमसेने किं विहितं यत् असमये अभिमानः अस्तः।

अनुवाद– मेरे द्वारा कौरवों के अन्तःपुर के पतिजनों के विनाश कर दिए जाने पर उनके खुले हुए केशों ने द्रौपदी के क्रोध की अग्नि को लगभग समाप्त कर दिया है। अपने भाई दुःशासन के वक्षस्थल से बहते हुए रक्त को पिए जाता देखकर क्रोध से भीमसेन का

क्या अहित कर दिया? कि आज तो असमय में ही अभिमान को त्याग दिया है।

व्याख्या– भीम ने दुःशासन का हृदय चीर कर रक्तपान किया। उसी रक्त से द्रौपदी के केश गीले कर उसका क्रोध शान्त किया। दुर्योधन के अन्य सौ भाइयों को मार कर उनकी स्त्रियों को विधवा किया, तब दुर्योधन सब देख कर भी कुछ न कर सका तो अब तो उसे दण्ड पाना ही होगा।

व्यक्त्वोत्थितः सरभसं सरसः स मूल–

मुद्भूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः।

आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः

क्षीराम्बुधेः सुमथितादिव कालकूटः ।। 9 ।।

अन्वयः– सुमथिताद् क्षीरोदधेः कालकूट इव आयस्तभीमभुजमन्दरवेल्लनाभिः उदभूतकोपदहनोग्रविषस्फुलिङ्गः सः सरभसं सरसः मूलं व्यक्त्वा उत्थितः।

अनुवाद– खूब मथे हुए क्षीरसागर से कालकूट विष के समान, भीम की भुजारूपी मन्दराचल के चलाने से जिसमें से क्रोधाग्निरूपी भयंकर विष के कण निकल रहे थे, वह शीघ्रता से सरोवर के तल को छोड़ कर उठ पड़ा।

व्याख्या– भीम के ललकारने पर दुर्योधन से अपमान नहीं सहन हुआ सरोवर में छिपा हुआ भीम बाहर निकल आया। यहाँ भीम की भुजाओं की तुलना मन्दराचल पर्वत को मथने वाली रज्जु तथा मन्थन से निकले विष की उपमा दुर्योधन से की गई है।

पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं यं सुयोधं सुयोधन!

दंशितस्यात्तशस्त्रस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ।। 10 ।।

अन्वयः– सुयोधनम् अस्माकं पञ्चानां यं सुयोधं मन्यसे तेन दर्शितस्य अस्तशस्त्रस्य ते रणोत्सवः अस्तु।

अनुवाद– हे सुयोधन! हम पाँचों में से जिसको युद्ध के लिए अभीष्ट समझते हो, कवच पहने हुए, शस्त्र धारण किए हुए तुम्हारा उससे ही युद्ध हो जाए।

व्याख्या– भीम ने कहा कि दुर्योधन! तू यह दुःख मत कर कि तू अकेला है हम पाँच हैं। तू जिससे इच्छा हो कवच-शस्त्रादि धारण कर पूरी तैयारी के साथ युद्ध कर ले।

कर्णदुःशासनवधात्तुल्यावेव युवां मम।

अप्रियोऽपि प्रियो योद्धुं त्वमेव प्रियसाहसः ।। 11 ।।

अन्वयः– कर्णदुःशासनवधात् मम युवां तुल्यौ एव (तथापि) अप्रियः अपि प्रियसाहसः त्वम् एव योद्धुं प्रियः।

अनुवाद– कर्ण और दुःशासन के वध से यद्यपि तुम (भीम और अर्जुन) दोनों मेरे लिए समान हो तथापि शत्रु होते हुए भी साहसप्रिय होने से तुम्हारे साथ ही मुझे युद्ध अभीष्ट है।

व्याख्या–क्षत्रिय समान स्तरीय वीर से युद्ध की इच्छा करता है अतः दुर्योधन ने भी भीम से युद्ध निर्धारित किया। परन्तु यहाँ केवल क्षत्रियत्व कारण नहीं, दुर्योधन का दर्पान्ध भी व्यक्त है कि मुझे अपनी अपेक्षा कम मत समझना।

TESLA-013

पूर्यन्तः सलिलेन रत्नकलशा राज्याभिषेकाय ते

कृष्णाऽत्यन्तचिरोज्झिते च कबरीबन्धे करोतु क्षणम् ।

रामे घोरकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि

क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः ।। 12 ।।

अन्वयः– ते राज्याभिषेकाय रत्नकलशाः सलिलेन पूर्यन्ताम् अत्यन्तचिरोज्झिते च कबरीबन्धे कृष्णं करोतु। घोरकुठारभासुरकरे क्षत्रद्रुमोच्छेदिनि रामे क्रोधान्धे च वृकोदरे आजौ परिपतति संशयः कुतः।

अनुवाद– आपके राज्याभिषेक के लिए रत्नजटित कलश जल से भरे जाएँ, अतिदीर्घ काल से खुले छोड़े गए केशकलाप को द्रौपदी क्षण भर में समेट ले। क्षत्रियजातिरूपी वृक्षों को काटने वाले तथा तीक्ष्ण कुठार से चमकते हुए हाथों वाले परशुराम और क्रोध से अन्धे हुए वृकोदर भीम के युद्धक्षेत्र में जाने पर संशय कहाँ हो सकता है?

व्याख्या– यह कृष्ण का सन्देश है कि परशुराम के समान वीर भीम युद्ध के लिए प्रस्तुत हो चुके हैं अतः विजय निश्चित है। विजयोत्सव मनाने की तैयारियाँ प्रारम्भ की जाएँ।

क्रोधोद्गूर्णगदस्य नास्ति सदृशः सत्यं रणे मारुतेः

कौरव्ये कृतहस्तता पुनरियं देवे यथा सीरिणि।

स्वस्त्यस्तूद्धधार्तराष्ट्र नलिनीनागाय वत्साय मे

शङ्के तस्य सुयोधनेन समरं नैवेतरेषामहम् ।। 13 ।।

अन्वयः– रणे क्रोधोद्गूर्णगदस्य मारुतेः सदृशः सत्यं नास्ति, कौरव्ये पुनः यथा देवे सीरिणि (तथा) इयं कृतहस्तता (विद्यते) उद्धतधार्तराष्ट्र नलिनी नागाय मे वत्साय स्वस्ति अस्तु, अहं तस्य सुयोधनेन समरं शङ्के न एव इतरेषां (शङ्के)।

अनुवाद– सत्य है कि क्रोध से गदा उठा लेने पर वायुपुत्र भीम का युद्धभूमि में कोई जोड़ नहीं है परन्तु दुर्योधन में भी भगवान् बलराम जैसी सिद्धहस्तता है। असभ्य कौरवरूपी कमलिनी के लिए गजराज के समान मेरे अनुज भीम का कल्याण हो। मैं सुयोधन के साथ उसके ही संग्राम का अनुमान करता हूँ, अन्य किसी का नहीं।

व्याख्या– प्रतिस्पर्धा समान योग्यता वाले व्यक्ति से ही सम्भव है। गदायुद्ध में भीम और बलराम दोनों कुशल हैं अतः उन्हीं दोनों में युद्ध हो रहा होगा। परन्तु मेरी इच्छा है कि विजय मेरे भाई की हो और जिस प्रकार गज क्रीडा में ही कमलिनी को तहस-नहस कर देता है उसी प्रकार अनुज भीम दुर्योधन का नाश कर दे।

पदे सन्दिग्ध एवास्मिन्दुःरवमास्ते युधिष्ठिरः।

वत्सस्य निश्चिते तत्त्वे प्राणत्यागादयं सुखी ।। 14 ।।

अन्वयः– अस्मिन् सन्दिग्धे एव पदे युधिष्ठिरः दुःखम् आस्ते, वत्सस्य तत्त्वे निश्चिते सति अहं प्राणत्यागात् सुखी।

TESLA-013

अनुवाद– इस सन्दिग्ध पद के कारण ही युधिष्ठिर दुःखी हैं, यदि मेरे प्रिय वत्स भीम की मृत्यु निश्चित हो गई तो यह युधिष्ठिर प्राण त्याग कर ही सुखी हो जाए।

व्याख्या– युधिष्ठिर को अनुज भीम की मृत्यु का असत्य समाचार अत्यन्त व्यथित कर रहा है अतः वे भाई के कल्याण की शुभकामना कर रहे हैं।

सर्वथा कथय ब्रह्मन्संक्षेपाद्विस्तरेण वा।

वत्सरस्य किमपि श्रोतुमेष दत्तः क्षणो मया ।। 15 ।।

अन्वयः– ब्रह्मन् ! संक्षेपात् विस्तरेण वा सर्वथा कथय। वत्सस्य किमपि श्रोतुं एषः क्षणः मया दत्तः।

अनुवाद– भगवन् ! संक्षेप या विस्तार, सब प्रकार से कहिए। प्रिय वत्सस्य के विषय में कुछ भी सुनने के लिए यह समय मैंने दे दिया है।

व्याख्या– भीम की मृत्यु–यह समाचार अत्यन्त कष्टदायी है, क्या वास्तव में ऐसा हुआ है, युधिष्ठिर सत्य जानने को व्याकुल हैं।

तस्मिन्कौरवभीमयोर्गुरुगदाघोरध्वनौ संयुगे

सीरी सत्वरमागतश्चिरमभूत्तस्याग्रतः सङ्गरः।

आलम्ब्य प्रियशिष्यतां तु हलिना संज्ञा रहस्याहिता

यामासाद्य कुरूत्तमः प्रतिकृतिं दुःशासनारौ गतः ।। 16 ।।

अन्वयः– कौरवभीमयोः तस्मिन् गुरुगदाघोरध्वनौ संयुगे सीरी सत्त्वरम् आगतः। तस्य अग्रतः चिरं सङ्गरः अभूत् । हलिना तु प्रियशिष्टताम् अवलम्ब्य रहसि संज्ञा आहिता याम् आसाद्य कुरूत्तमः दुःशासनारौ प्रतिकृतिं गतः।

अनुवाद– दुर्योधन और भीम की भीषण गदाध्वनिपूर्ण उस युद्धभूमि में शीघ्र ही बलराम आ गए। उनके समक्ष देर तक संग्राम होता रहा। हलधर ने शिष्य का पक्षपात करके चुपचाप संकेत कर दिया जिसे पा कर कौरवश्रेष्ठ दुर्योधन ने दुःशासन के शत्रु से प्रतिशोध ले लिया।

व्याख्या– दुर्योधन के पक्ष से राक्षस की यह असत्य कथा पाण्डवों को हतोत्साहित करने के लिए है। सत्य यह है कि भीम की मृत्यु हुई ही नहीं है यह सत्य उद्घाटित होगा ही।

निर्लज्जस्य दुरोदरव्यसनिनो वत्स त्वया सीदता

भवत्या मे समदद्विपाऽयुतबलेनाङ्गकृीता दासता।

किं नामाऽपकृतं मया तदधिकं त्वय्यद्य निर्वत्सलं

व्यक्त्वाऽनाथमबान्धवं सपदि मां येनासि दूरं गतः ।। 17 ।।

TESLA-013

अन्वयः– वत्स! निर्लज्जस्य दुरोदरव्यसनिनः मे भक्त्या सीदता समदद्विपा युतबलेन त्वया दासता अङ्गीकृता। मया अद्य अतः अधिकं किं नाम अपकृतं यत् अनाथं अबान्धवं मां सपदि त्यक्त्वा (त्वया) गम्यते। सा ते प्रीतिः अधुना क्व (गता)।

अनुवाद– हे वत्स! द्यूत के व्यसनी अतएव निर्लज्ज मेरी दासता को आदरपूर्वक दस हजार हाथियों के बल से सम्पन्न तुमने स्वीकार किया था। मैने आज उससे अधिक तुम्हारा क्या अपकार किया है कि अनाथ, बन्धुविहीन मुझको शीघ्रता से छोड़ कर जा रहे हो? तुम्हारी वह प्रीति अब कहाँ चली गई ?

व्याख्या– भीम अपनी शक्तिमत्ता से विद्वेषी दुर्योधन को कभी भी समाप्त करने में सक्षम थे परन्तु युधिष्ठिर के शान्त स्वभाव ने उन्हें ऐसा करने से रोका। द्यूतक्रीडा में बड़े भाई के हार जाने पर वे शान्तभाव से दुर्योधन के दासत्व को भी तत्पर हुए, ऐसा बलशाली, आज्ञाकारी, प्रिय भाई क्या आज युधिष्ठिर को सर्वदा के लिए छोड़ दिवंगत हुआ।

स कीचकनिषदनो बकहिडिम्बकिर्मीरहा
मदान्धमगधाधिपद्विरदसन्धिभेदाशानिः।
गदापरिघशोभिना भुजयुगेन तेनान्वितः
प्रियस्तव ममानुजोऽर्जुनगुरुर्गतोऽस्तं किल ।। 18 ।।

अन्वयः– सः कीचकनिषूदनः बकहिडिम्बकिर्मीरहा मदान्धमगधाधिपद्विरद सन्धिभेदाशनिः गदापरिघशोभिना तेन भुजयुगेन अन्वितः तव प्रियः मम अनुजः अर्जुनगुरुः अस्तं गतः किल।

अनुवाद– वह कीचक निहन्ता, बक, हिडिम्ब और किर्मीर का घाती, मद से अन्धे मगध देश के अधिपति जरासन्ध रूपी हाथी की (अस्थि) सन्धियों को छिन्न करने में वज्र के समान, गदा और मुद्गर से सुशोभित दोनों बाहुओं से युक्त, तुम्हारा प्रियतम, मेरा कनिष्ठ भाई तथा अर्जुन का ज्येष्ठ भ्राता भीम अस्त को प्राप्त हो गया।

व्याख्या– युधिष्ठिर को गर्व है भीम की अपार शक्तिमत्ता पर, वह कृष्ण द्रौपदी से अपनी व्यथा प्रकट तो कर रहे हैं किन्तु मानों अन्तर में यह विश्वास नहीं है कि कोई भीम का रंचमात्र भी अनिष्ट कर सकता है।

दत्त्वा मे करदीकृताखिलनृपां यन्मेदिनीं लज्जसे
द्यूते यच्च पणीकृताऽपि हि मया न क्रुध्यसि प्रीयसे।
स्थित्यर्थं मम मत्स्यराजभवने प्राप्तोऽसि यत्सूदतां
वत्सैतानि विनश्वरस्य सहसा दृष्टानि चिह्नानि ते ।। 19 ।।

अन्वयः– वत्स! करदीकृताखिलनृपां मेदिनीं मे दत्त्वा यत् लज्जसे, यच्च द्यूतं मया पणीकृतोऽपि हि न क्रुध्यसि (प्रत्युत) प्रीयसे यत् मत्स्यराजभवने मम स्थित्यर्थं सूदतां प्राप्तोऽसि, एतानि विनश्वरस्य ते चिह्नानि सहसा दृष्टानि।

अनुवाद– वत्स! कर न देने वाले समस्त पृथिवी के राजाओं को करदाता बनाकर पृथिवी को मुझे देने में जिसे संकोच होता था, मेरे द्वारा जुएँ में बाजी में हार दिए जाने पर भी जो तुम रुष्ट नहीं हुए प्रत्युत प्रसन्न ही रहे, मत्स्यदेश के राजा के महल में मेरी जीवनरक्षा के लिए जो रसोइया बने, क्या ये सब लक्षण तुम्हारे विनाश के सूचक मेरे द्वारा देख लिए गए थे।

व्याख्या– युधिष्ठिर का अभिप्राय यह है कि सम्पूर्ण पृथिवीमंडल के राजागण उसी भ्राता भीम के भय से मुझे कर दिया करते थे। जुएँ में हार कर तुम्हें दास बना दिया पर तुमने रोष प्रकट नहीं किया। मेरी जीविका निर्वाह के लिए पाचक का काम भी करना पड़ा। इतनी विनम्रता, इतने स्नेह के पीछे शायद तुम्हारा इस संसार से जाना ही कारण छिपा था।

ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता क्षत्रियाणां न धर्मो

रूढं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यानुजे मे।

तुल्यः कामं भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः

कोऽयं पन्था यदसि विमुखो मन्दभाग्ये मयि त्वम् ।। 20 ।।

अन्वयः– ज्ञातिप्रीतिः मनसि न कृता, क्षत्रियाणां धर्मः (मनसि) न कृतः। तव अनुजस्य अनुजेन रूढं सख्यं तदपि न गणितम् । भवतः शिष्ययोः स्नेहबन्धः तुल्यः भवतु, कः अयं पन्थाः यत् मन्दभाग्ये मयि त्वं विमुखः असि।

अनुवाद– (आपने) सम्बन्धियों के प्रेम का मन में विचार नहीं किया, क्षत्रियों के धर्म का पालन नहीं किया, आपकी कनिष्ठ भ्राता अर्जुन के साथ जो प्रगाढ़ मैत्री थी उसे भी नहीं समझा। दोनों शिष्यों के प्रति आपका समान ही अनुराग होना चाहिए था परन्तु आपका यह कौन सा मार्ग है कि मुझ अभागिनी से विमुख हो गए हो।

व्याख्या– द्रौपदी पत्नी है उसका विलाप स्वाभाविक है। बलराम के पक्षपात की चर्चा सुन कर वह उन्हें धिक्कारती हुई कहती है कि आप हमारे सम्बन्धी थे परन्तु प्रेम दिखाया शत्रु दुर्योधन के पक्ष में। दुर्योधन और भीम दोनों शिष्यों के प्रति आपका समान अनुराग होना चाहिए था परन्तु आपने मुझे विधवा बना दिया।

तस्यैव देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गी–

मादाय संयति गदामपविध्य चापम् ।

भ्रातृप्रियेण कृतमद्य यदर्जुनेन

श्रेयो ममापि हि तदेव कृतं जयेन ।। 21 ।।

अन्वयः– चापम् अपविध्य तस्यैव देहरुधिरोक्षितपाटलाङ्गीं गदाम् आदाय संयति भ्रातृप्रियेण अर्जुनेन अद्य यत् कृतं तदेव ममापि हि श्रेयः। कृतं जयेन।

अनुवाद– धनुष को त्याग कर उस भीम के शरीर के रक्त से भीगी अतः लाल गदा ले कर युद्ध में भ्रातृस्नेही अर्जुन ने आज जो किया, वही कार्य मेरे लिए भी श्रेयस्कर है, विजय से क्या प्रयोजन?

व्याख्या– युधिष्ठिर का अभिप्राय यह है कि भीम और अर्जुन-दोनों अपने क्षत्रियधर्म का निर्वाह करते हुए वीरतापूर्वक युद्ध कर रहे हैं, यही मेरे लिए भी करना उचित है। अर्थात् युद्ध में हमारा अधिकार है विजय में नहीं। यही तो गीता दर्शन है– 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'

TESLA-013

शक्ष्यामि नो परिघपीवरबाहुदण्डौ

वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ।

भीमार्जुनौ क्षितितले प्रविचेष्टमानौ

द्रष्टुं तयोश्च निधनेन रिपुं कृतार्थम् ।। 22।।

अन्वयः– परिघपीवरबाहुदण्डौ वित्तेशशक्रपुरदर्शितवीर्यसारौ (तथापि) क्षितितले प्रविचेष्टमानौ भीमार्जुनौ तयोः निधनेन कृतार्थं रिपुं च द्रष्टुं नो शक्ष्यामि।

अनुवाद– मुद्‌गराकार स्थूल भुजदण्डों वाले और कुबेर व इन्द्र के नगरों में शक्ति का प्रदर्शन किए हुए भीम और अर्जुन को पृथिवीतल पर छटपटाते और उनकी मृत्यु से सफल मनोरथ शत्रु को देखने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

व्याख्या– अपने प्रिय जन की हत्या और वधकर्ता शत्रु की प्रसन्नता इन दोनों को सहन कर पाना सामान्य जन के लिए कठिन तो है ही। यही कष्ट युधिष्ठिर को उद्वेलित कर रहा है।

येनासि तत्र जतुवेश्मनि दीप्यमाने

उत्तारिता सह सुतैर्भुजयोर्बलेन।

तस्य प्रियस्य बलिनस्तनयस्य पाप–

माख्यामि तेऽम्ब कथयेत् कथमीदृगन्यः ।। 23 ।।

अन्वयः– तत्र जतुवेश्मनि दीप्यमाने येन भुजयोः बलेन (त्वं) सतैः सह उत्तारिता, प्रियस्य तस्य बलिनः तनयस्य पापम् आख्यामि, अम्ब! अन्यः कथम् ईदृक् कथयेत् ।

अनुवाद– वहाँ वारणावत में लाक्षागृह के जलने पर जिसने भुजाओं के बल से तुम्हें पुत्रों सहित सुरक्षित निकाला था, उस बलशाली प्रिय पुत्र के अमंगल के विषय में कह रहा हूँ। माँ! मेरे अतिरिक्त अन्य कौन ऐसा साहस कर सकता है।

व्याख्या– युधिष्ठिर का भाव यह है कि जिस भीम ने अपने भुजबल से प्रत्येक संकट में हमारी रक्षा की, आज हमने प्रिय पुत्र को माँ से वियुक्त कर दिया है, उसे सत्य जानो।

मम हि वयसा दूरेण त्वं श्रुतेन समो भवन्

कृतसहजया बुद्ध्या ज्येष्ठो मनीषितया गुरुः।

शिरसि मुकुलौ पाणी कृत्वा भवन्तमतोऽर्थये

मयि विरलतां नेयः स्नेहः पितुर्भव वारिदः ।। 24 ।।

अन्वयः– मम वयसा दूरेण उपलक्षितः त्वं श्रुतेन भवान् समः कृतसहजया बुद्ध्या ज्येष्ठः मनीषितया गुरुः अतः शिरसि पाणी मुकुलौ कृत्वा भवन्तम् अर्थये मयि स्नेहः विरलता नेयः पितुः वारिदः भव।

अनुवाद– आप (सहदेव) मुझसे अवस्था में अत्यन्त छोटे, ज्ञान में समान, सहज अर्जित बुद्धि में ज्येष्ठ और विद्वत्ता में गुरु हैं अतएव दोनों हाथों की अञ्जलि को शिर से लगा कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे विषय में स्नेह को न्यून कर पितरों के लिए तिलाञ्जलि देने वाले हों।

व्याख्या– युधिष्ठिर को यह भय है कि उनकी मृत्यु के समाचार को सुन कर दुःख से व्यथित सहदेव आत्मघात न कर लें अतः पितृगण अतृप्त रह जाएँगे। इस कारण कनिष्ठ भ्राता सहदेव का जीवित रहना समुचित है।

विस्मृत्यास्माञ्श्रुतिविशदया स्वाग्रजौ चात्मबुद्ध्या

क्षीणे पाण्डावुदकपृषतानश्रुगर्भान् प्रदातुम् ।

दायादानामपि तु भवने यादवानां कुले वा

कान्तारे वा कृतवसतिना रक्षणीयं शरीरम् ।। 25 ।।

अन्वयः– श्रुतिविशदया आत्मबुद्ध्या अस्मान् स्वाग्रजौ च विस्मृत्य पाण्डौ क्षीणे (सति) उदकपृषतान् अश्रुगर्भान् प्रदातुं दायादानाम् अपि तु भवने यादवानां कुले वा कान्तारे वा कृतवसतिना शरीरं रक्षणीयम् ।

अनुवाद– शास्त्राध्ययन से निर्मल बुद्धि वाले आपको अनुज सहदेव के साथ हम लोगों को भूल कर पाण्डु जनों को अश्रुबिन्दु रूप जल से सने हुए पिण्डों का दान करने के लिए दायादों (सम्बन्धियों) के घर में अथवा यादवों के वंश में अथवा गहन वन में वास करके (अपने) शरीर की रक्षा करनी है।

शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले मण्डिताशे

पीनस्कन्धे सुसदृशमहामूलपर्यङ्कबन्धे।

दग्धे दैवात्सुमहति तरौ तस्य सूक्ष्माङ्कुरेऽस्मि–

न्नाशाबन्धं कमपि कुरुते छाययार्थी जनोऽयम् ।। 26 ।।

अन्वयः– शाखारोधस्थगितवसुधामण्डले पीनस्कन्धे मण्डिताशे सुसदृशमहामूलपर्यङ्कबन्धे सुमहति तरौ दैवात् दग्धे तस्य अस्मिन् सूक्ष्माङ्कुरे छायया अर्थी अयं जनः कमपि आशाबन्धं कुरुते।

अनुवाद– संयोगवश अति विशाल वृक्ष के, जिसकी शाखाओं के आवरण से भूमंडल आच्छादित हो गया था, जिसने दिशाओं को अलंकृत कर दिया था, जिसका स्कन्ध (तना) अधिक मोटा था, जिसका आलगाल (थाल्हा) उसके मूल के अनुरूप दीर्घाकार था, भस्म हो जाने पर उसके सूक्ष्म अङ्कुरप्ररोह में कोई भी छायाभिलाषी व्यक्ति जिस प्रकार आशा करता है, उसी प्रकार पाण्डवों के, जिनके प्रताप से समस्त भूमंडल व्याप्त हो रहा था, जो अपने गुणों से दिशाओं को अलंकृत कर रहे थे, जिनके विस्तार के अनुरूप ही रक्षा का प्रबन्ध था, नष्ट हो जाने पर उनके इस चार माह के उत्तरा के गर्भस्थित बालक में यह द्रौपदी आश्रय की कामना से आशा कर रही है।

व्याख्या– युधिष्ठिर द्रौपदी की उत्तरा के गर्भस्थ शिशु की जीवनरक्षा की चिन्ता की व्याकुलता सुन कर कहते हैं कि जिस प्रकार विशाल वटवृक्ष के भस्म हो जाने पर उसके अंकुर पौधे से छाया की आशा करना व्यर्थ है उसी प्रकार विशाल पाण्डुवंश के समाप्त हो जाने पर गर्भस्थ चार माह के शिशु से वंशवृक्ष को जीवित रखने की द्रौपदी की आशा करना व्यर्थ है।

TESLA-013

भ्रातस्ते तनयेन शौरिगुरुणा श्यालेन गाण्डीविन–

स्तस्यैवाखिलाद्यार्तराष्ट्रनलिनीव्यालोलने दन्तिनः।

आचार्येण वृकोदरस्य हलिनोन्मत्तेन वा

दग्धं त्वत्सुतकाननं ननु मही यस्याश्रयाच्छीतला ।। 27 ।।

अन्वयः– ते भ्रातुः तनयेन शौरिगुरुणा गाण्डीविनः श्यालेन अखिलधार्तराष्ट्रनलिनव्यालोलने दन्तिनः तस्यैव वृकोदरस्य आचार्येण उन्मत्तेन वा मत्तेन हलिना तव त्वत्सुतकाननं दग्धं यस्य आश्रयात् मही शीतला।

अनुवाद– आपके भ्राता, भगवान् वासुदेव के अग्रज, अर्जुन के साले, संपूर्ण कौरवकुल को विनष्ट करने में हाथी रूपी उस भीम के आचार्य हलधारी बलराम ने उन्मत्त अथवा मदमत्त हो कर आपके पुत्ररूपी वन को भस्म कर दिया, जिस वन के आश्रय से धरती शीतल थी।

व्याख्या– हलधर बलराम जो अनेक स्नेह बन्धनों से पाण्डुपुत्रों से बंधे थे, वे उन्मत्त थे अथवा मदमत्त जो संसार को सुख देने वाले भीम के विनाश में सहायक बने। यही तो भाग्य की विडम्बना है कि अपनों ने भी शत्रुओं का सा व्यवहार किया।

हली हेतुः सत्यं भवति मम वत्सस्य निधने

तथाप्येष भ्राता सहजसुहृदस्ते मधुरिपोः।

अतः क्रोधः कार्यो न खलु मयि चेत्प्रेम भवतो

वनं गच्छेर्मा गाः पुनरकरुणां क्षात्रपदवीम् ।। 28 ।।

अन्वयः– सत्यं हली मम वत्सस्य निधने हेतुः भवति। एषः ते सहज-सुहृदः मधुरिपोः भ्राता। अतः क्रोधः न खलु कार्यः। भवतः प्रेम मयि चेत् (तदा) वनं गच्छेः पुनः अकरुणां क्षात्रपदवीं मा गाः।

अनुवाद– सत्य ही मेरे अनुज के मरण में बलराम ही कारण हैं। तो भी यह तुम्हारे सहज मित्र कृष्ण के भाई हैं अतः यदि मुझमें तुम्हारा स्नेह हो तो इन पर क्रोध नहीं करना। (जीवित रहो तो) वन में जा कर वास करना परन्तु निर्दयतापूर्ण क्षात्रधर्म का अनुकरण न करना।

व्याख्या– भीम की मृत्यु से व्यथित युधिष्ठिर आत्मदाह को उद्यत हो कर अर्जुन के लिए अन्तिम उपदेश देते हैं कि बलराम हमारे निकट सम्बन्धी हैं अतः उनका अनर्थ करने की सोचना भी मत। इसी प्रकार यदि जीवित बचे रहो और विजय न मिले तो भले ही वन में रहना परन्तु प्रतिशोध की बात न मन में लाना न व्यवहार में। धर्मराज से यही अपेक्षा की जा सकती है।

अद्यप्रभृति वां दत्तमस्मत्तो दुर्लभं पुनः।

तात! त्वयाऽम्बया सार्धं मया दत्तं निपीयताम् ।। 29 ।।

अन्वयः– तात! अद्यप्रभृति अस्मत्तः पुनः यत् दुर्लभं तत् इदं मया दत्तं वारि अम्बया सार्धं त्वया निपीयताम् ।

अनुवाद– पिता! आज से यह जल हमारे लिए दुर्लभ हो जाएगा अतः मेरे द्वारा प्रदान किए गए इस जल को माता माद्री के साथ पी लीजिए।

व्याख्या– 'पुँ नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः'–इस प्रसिद्ध व्युत्पत्ति के अनुसार पितृगण पुत्रों से तिलाञ्जलि की अपेक्षा करते हैं। पाण्डु के पाँचों पुत्र यदि वीरगति को प्राप्त हो गए तो कौन देगा तिलाञ्जलि? अतः यह अन्तिम तिलाञ्जलि आप और माँ माद्री ग्रहण कर लें।

एतज्जलं जलजनीलविलोचनाय

भीमाय भोस्तव ममाप्यविभक्तमस्तु।

एकं क्षणं विरम वत्स पिपासितोऽपि

पातुं त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि ।। 30 ।।

अन्वयः– एतत् जलं जलजनीलविलोचनाय भीमाय (दत्तं) भोः वत्स! तव मम अपि अविभक्तम् अस्तु पिपासितः त्वम् एक क्षणं विरम, त्वया सह पातुम् (अहं) अयं जवात् आगतः अस्मि।

अनुवाद– यह जलाञ्जलि कमल के सदृश नील वर्णी नेत्र वाले भीम के लिए है। हे वत्स! तुम्हारे और मेरे लिए भी सम्मिलित रूप से हो, प्यासे होते हुए भी तुम एक क्षण के लिए रुको, तुम्हारे साथ इसे पीने के लिए वेगपूर्वक मैं आ रहा हूँ।

व्याख्या– भीम के दिवङ्गत हो जाने पर भातृस्नेही युधिष्ठिर कैसे जीवित रहें, तिलाञ्जलि भीम के साथ उनके लिए भी हो, स्वर्ग गए हुए भीम ज़रा प्रतीक्षा करें युधिष्ठिर भी शीघ्र आत्मदाह कर स्वर्ग में भीम से मिल कर साथ ही जलपान करेंगे।

मया पीतं पीतं तदनु भवताम्बास्तनयुगं

यदुच्छिष्टैर्वृत्तिं जनयसि रसैर्वत्सलतया।

वितानेष्वप्येवं तव मम च सोमे विधिरभू–

न्निवापाम्भः पूर्वं पिबसि कथमेवं त्वमधुना ।। 31 ।।

अन्वयः– अम्बास्तनयुगं मया पीतं तदनु भवता पीतम् । वत्सलतया मदुच्छिष्टैः रसैः वृत्तिं जनयसि। वितानेषु अपि सोमे तव मम च विधि, एवम् अभूत् । अधुना एवं कथं निवापाम्भः पूर्वं पिबसि?

अनुवाद– माता के दोनों स्तनों को मेरे द्वारा पान कर लेने पर आपने पिया था, प्रेम के कारण मेरे जूठे फल-रसादिक से प्रेमपूर्वक भोजन करते थे, यज्ञों के प्रसंग में सोमरस के पान के लिए भी मेरा और आपका यही नियम था, (फिर) जब इस तर्पण के जल को कैसे (मुझसे) पहले पी रहे हो?

TESLA-013

व्याख्या– भीम युधिष्ठिर के अनुज हैं अतः सर्वत्र अनन्तर ही अधिकार का उपयोग कर ज्येष्ठ भ्राता को सम्मान देते थे किन्तु मरण की पंक्ति में पहले खड़े हो कर तर्पण का जल पी रहे हैं। युधिष्ठिर इसी दुःख में व्यग्र हो कर मन के भावों को प्रलाप के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं।

तस्मै देहि जलं कृष्णे सहसा गच्छते दिवम् ।

अम्बापि येन गान्धार्या रुदितेन समीकृता ।। 32 ।।

अन्वयः– कृष्णे, येन अम्बा अपि रुदितेन गान्धार्या समीकृता, तस्मै सहसा दिवं गच्छते (भीमाय) जलं देहि।

अनुवाद– हे द्रौपदी! जिसने (अपनी) माँ को रोदन के द्वारा गान्धारी के समान बना दिया, उस सहसा मरण को प्राप्त भीम के लिए जलाञ्जलि दो।

व्याख्या– गान्धारी के निन्यानबे पुत्र युद्ध में मर चुके हैं, सौंवे (दुर्योधन) की जीवन रक्षा भी सुनिश्चित नहीं, अतः गान्धारी तो रोएँगी ही परन्तु अब कुन्ती के एक पुत्र के स्वर्गवासी हो जाने से वह भी विलाप कर रही हैं मानों अब दोनों समान हो गईं।

असमाप्तप्रतिज्ञेऽपि याते त्वयि महाभुजे।

मुक्तकेश्यैव दत्तस्ते प्रियया सलिलाञ्जलिः ।। 33 ।।

अन्वयः– असमाप्तप्रतिज्ञेऽपि महाभुजे त्वयि याते (सति) प्रियया मुक्तकेश्या एव ते सलिलाञ्जलिः दत्तः।

अनुवाद– प्रतिज्ञा पूरी किए बिना ही आप सदृश महायोद्धा के प्रस्थान कर जाने पर आपकी प्रिया खुले केशों से आपको जलाञ्जलि दे रही है।

व्याख्या– आपकी प्रतिज्ञा थी कि दुर्योधन के हृदय रक्त से प्रिया के केश गीले करूँगा तभी द्रौपदी केशबन्धन करेगी अन्यथा नहीं। आप प्रतिज्ञा अधूरी छोड़ कर स्वर्ग चले गए, अब किसमें पौरुष है इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का, अतः विवश हो कर द्रौपदी खुले बालों से ही तर्पण कर रही है।

तां वत्सलामनभिवाद्य विनीतमम्बां

गाढं च मामनुपगुह्य मयाऽप्यनुक्तः।

एतां स्वयंवरवधूं दयितामदृष्ट्वा

दीर्घप्रवासमयि तातं कथं गतोऽसि ।। 34 ।।

अन्वयः– अयि तात! वत्सलां ताम् अम्बां विनीतम् अनभिवाद्य मां च गाढम् अनुपगुह्य, मया अपि अनुक्तः एतां स्वयंवरवधूं दयिताम् अदृष्ट्वा च दीर्घप्रवासं गतः असि।

अनुवाद– हे तात! उस स्नेहमयि माता को विनम्रतापूर्वक अभिवादन किए बिना ही, मेरा प्रगाढ आलिंगन न करके मेरे बिना कहे ही और स्वयंवर में (जीत कर) लाई गई अत्यन्त प्रिय इस द्रौपदी को बिना देखे ही दीर्घयात्रा को कैसे चले गए?

व्याख्या– भ्रातृप्रेम से विह्वल युधिष्ठिर पुनः-पुनः भीम का स्मरण कर विभिन्न विचारों को विह्वलता से अभिव्यक्त कर अपने व्याकुल हृदय को शान्त कर रहे हैं। भाग्य की क्या विडम्बना है–अनुज उनसे पूर्व दीर्घयात्रा का पथिक बन गया और वे अग्रज हो कर जीवित हैं।

ऊरूं करेण परिघट्टयतः सलीलं

दुर्योधनस्य पुरतोऽपहृताम्बरा या।

दुःशासनस्य करकर्षणभिन्नमौलिः

सा द्रौपदी कथयत क्व पुनः प्रदेशे ।। 35 ।।

अन्वयः– करेण ऊरूं सलीलं परिघट्टयतः दुर्योधनस्य पुरतः या अपहृताम्बरा, दुःशासनस्य करकर्षणभिन्नमौलिः सा पुनः क्व प्रदेशे वर्तते (इति) कथय?

अनुवाद– हाथों से दोनों जंघाओं को लीलापूर्वक पीटते हुए दुर्योधन के सामने दुःशासन के द्वारा जिसका वस्त्र छीना गया तथा केश खींच कर जूड़े को बिगाड़ा गया, वह द्रौपदी किस स्थान में है, बताइए?

व्याख्या– वस्तुतः यहाँ भीम दुर्योधन का हृदय रक्त लेकर द्रौपदी के केशों में मलने के लिए उपस्थित हो कर उत्साह में नेपथ्य से ही द्रौपदी को पुकार रहे हैं परन्तु मंच पर उपस्थित युधिष्ठिर, द्रौपदी, दासी आदि को यह प्रतीत होता है कि पहले भीम, पश्चात् अर्जुन को भी गदायुद्ध में मार कर दुर्योधन अब पुनः द्रौपदी को अपमानित करने आ पहुँचा है।

प्रियमनुजमपश्यंस्तं जरासन्धशत्रुं

कुपितहरकिरातद्वेषिणं तं च वत्सम् ।

त्वमिव कठिनचेताः प्राणितुं नास्मि शक्तो

न च पुनरपहर्तुं बाणवर्षैस्तवासून् ।। 36 ।।

अन्वयः– तं प्रियम् अनुजं जरासन्धशत्रुं तं च वत्सं कुपितहरकिरातद्वेषिणम् अपश्यन् (अहं) कठिनचेताः त्वमिव प्राणितुं न शक्ताः अस्मि। बाणवर्षैः तव असून् अपहर्तुं पुनः न च (शक्तः अस्मि)।

अनुवाद– उस जरासन्ध के शत्रु प्रिय लघुभ्राता भीमसेन और किरातरूपधारी क्रुद्ध शंकर से युद्ध करने वाले उस वत्स अर्जुन को न देखता हुआ मैं तुझ क्रूर हृदय वाले जैसा होकर जीवित रहने में असमर्थ हूँ अपितु बाणों की वर्षा से तेरे प्राणों का अपहरण करने में ही समर्थ हूँ।

व्याख्या– अभिप्राय यह है कि दुर्योधन के सौ भाई युद्ध में मारे गए तो भी कठोर मन वाला वह जीवित है। इसके विपरीत युधिष्ठिर के मात्र दो भाई भीम व अर्जुन वीरगति को प्राप्त हुए हैं तो वे स्वयं मरने तथा दुर्योधन को मारने को उद्यत हैं।

TESLA-013

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः प्रकामं

निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि।

भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतं व–

स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ।। 37 ।।

अन्वयः– अहं न रक्षः न भूतः। प्रकामं रिपुरुधिरजलप्लाविताङ्गः निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगृहनः क्रोधनः क्षत्रियः अस्मि। भोः भोः समरशिखिशिखादग्धशेषाः राजन्यवीराः वः अनेन त्रासेन कृतं किं हतकरितुरगान्तर्हितैः लीनैः आस्यते।

अनुवाद– न मैं राक्षस हूँ न भूतप्रेत। मैं शत्रु के रुधिररूपी जल में पर्याप्त डुबोए गए अंगों वाला और उरुभंग की प्रतिज्ञारूपी गम्भीर सागर को पार कर लेने वाला क्रोधान्ध क्षत्रिय हूँ। युद्धरूपी अग्नि की ज्वालाओं में जलने से बचे हे क्षत्रिय वीरों! इस भय से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं जो तुम मृत हाथी और घोड़ों की ओट लिए बैठे हो।

व्याख्या– दुर्योधन के रक्त से सने और हाथ में गदा लिए भीम को प्रवेश करते देख कर (शत्रुपक्षी राक्षस की सूचना के अनुसार) वहाँ उपस्थित युधिष्ठिर, द्रौपदी आदि जनों को यही लगता है कि यह भीम नहीं, दुर्योधन हैं। अतः भीम अपनी सत्ता का आभास कराते हैं कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा दुर्योधन की जंघाएँ तोड़ कर पूरी कर ली है, आप सब समक्ष आइए और हर्षित होइए।

आशैशवादनुदिनं जनितापराधो

मत्तो बलेन भुजयोर्हतराजपुत्रः।

आसाद्य मेऽन्तरमिदं भुजपजरस्य

जीवन्प्रयासि न पदात्पदमद्य पाप ।। 38 ।।

अन्वयः– हे हतराजपुत्र! पाप आशैशवात् अनुदिनं जनितापराधः भुजयोः बलेन मत्तः मे भुजपञ्जरस्य इदम् अन्तरम् आसाद्य अद्य पदात् पदम् अपि जीवन् न प्रयासि।

अनुवाद– हे भीम और अर्जुन के वधिक! पापी! बाल्यकाल से लेकर अब तक अपराध करने वाला बाहुओं के बल से मतवाला तू मेरे भुजारूपी पञ्जर के मध्य आकर आज एक पग भी जीवित रह कर आगे नहीं बढ़ सकता है।

व्याख्या– भ्रातृप्रेम से विह्वल युधिष्ठिर भीम और अर्जुन के वध की सूचना पाकर व्याकुल मनःस्थिति में भीम की ओर ध्यान ही नहीं दे रहे हैं। भीम को दुर्योधन मान कर उसे मारने का उपक्रम कर रहे हैं।

भूमौ क्षिप्तं शरीरं निहितमिदमसृक्चन्दनाभं निजाङ्गे
लक्ष्मीरार्ये निषण्णा चतुरुदधिपयः सीमया सार्धमुर्व्या ।
भृत्या मित्राणि योधाः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणाग्नौ
नामैकं यद् ब्रवीषि क्षितिप तदधुना धार्तराष्ट्रस्य शेषम् ।। 39 ।।

TESLA-013

अन्वयः– शरीरं भूमौ क्षिप्तम् । इदम् असृक् चन्दनाभं निजाङ्गे निहितम् । चतुरुदधिपयः सीमया उर्व्यां सार्धं लक्ष्मीः आर्ये निषण्णा। रणाग्नौ भृत्याः मित्राणि योधाः एतत् अखिलं कुरुकुलं दग्धम् । क्षितिप! धार्तराष्ट्रस्य एकं नाम यद् ब्रवीषि, अधुना तत् शेषम् ।

अनुवाद– शरीर को पृथिवी पर फेंक दिया है। उसके इस रुधिर को चन्दन के समान अपने शरीर पर लगाया है। चार समुद्रों के जल की सीमा वाली उसकी राज्यश्री पृथिवी के साथ आपके यहाँ स्थित हो गई है। इस युद्ध की ज्वाला में सेवक, मित्र, योद्धा और समस्त कुरुवंश भस्म हो चुके हैं। हे राजन् ! धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन का वह एक नाम ही बचा है, जिसे आप कह रहे हैं।

व्याख्या– भीम अग्रज युधिष्ठिर को दुर्योधन की पराजय और वध का समाचार सुना कर यह विश्वास दिला रहे हैं कि सत्य ही दुर्योधन अब जीवित नहीं है और जिस आसमुद्र पृथिवी का वह अन्याय से शासक बना बैठा था, वह, समग्र पृथिवी और उसकी राज्यलक्ष्मी के अधिपति अब आप हैं।

रिपोरास्तां तावन्निधनमिदमाख्याहि शतशः
प्रियो भ्राता सत्यं त्वमसि मम योऽसौ बकरिपुः।
जरासन्धस्योरः सरसि रुधिरासारसलिलै
तटाघातक्रीडाललितमकरः संयति भवान् ।। 40 ।।

अन्वयः– रिपोः निधनं तावत् आस्ताम्। इदं शतशः आख्याहि यः बकरिपुः मम प्रियः भ्राता भीमः (त्वं) असि? रुधिरासारसलिले जरासन्धस्य उरः सरसि संयति तटाघातक्रीडाललितमकरः भवान् (अस्ति)।

अनुवाद– शत्रु के नाश की बात रहने दो। मुझे सैकड़ों बार यह बताओ कि सत्य ही तुम मेरे वह भाई (भीम) हो जो बकासुर का शत्रु है। युद्ध में (क्या) तुम रक्त की वर्षा रूपी जल वाले, जरासन्ध के वक्षःस्थल रूपी सरोवर में तटाघातरूपी क्रीडा में कुशल (प्रतीत होने वाले) मकर हो!

व्याख्या– युधिष्ठिर भ्रातृ भीम को जीवित देख कर, अर्जुन के जीवित होने का विश्वास कर लेते हैं तब हर्ष से उन्मत्त होकर भीम की प्रशंसा में मग्न होते हैं। उनके अनुसार भीम उस मकर के सदृश बलशाली हैं जो अनायास ही टक्कर मार कर नदी के (दुर्योधन) सदृश) मजबूत तटबन्धों को तोड़ देता है।

कृष्टा येनासि राज्ञां सदसि नृपशुना तेन दुःशासनेन

स्त्यानान्येतानि तस्य स्पृश मम करयोः पीतशेषाण्यसृज्जि।

कान्ते राज्ञः कुरूणामतिसरसमिदं मद्गदाचूर्णितोरो–

रङ्गेऽङ्गेसृग्निषक्तं तव परिभवजस्यानलस्योपशान्त्यै ।। 41 ।।

अन्वयः– कान्ते! येन नृपशुना तेन दुःशासनेन राज्ञां सदसि (त्वं) कृष्टा असि तस्य स्त्यानानि एतानि पीतशेषाणि मम करयोः असृज्जि स्पृश। मद्गदाचूर्णितोरो कुरूणां राज्ञः अपि मम अङ्गे अङ्गे निषक्तम् इदम् अतिसरसं असृक् तव परिभवजस्य अनलस्य उपशान्त्यै (भवतु)।

TESLA-013

अनुवाद– प्रिये! जिस नरपशु दुःशासन के द्वारा राजाओं की सभा में तुम घसीटी गईं। उस (पापी) के मेरे पीने से बचे हुए दोनों हाथों में लगे हुए इस गाढ़े रक्त का स्पर्श करो। मेरी गदा से चूर्ण हुई जंघाओं वाले कुरुओं के राजा दुर्योधन का भी मेरे अङ्ग-अङ्ग में लगा यह ताजा रुधिर तुम्हारे अपमान से उत्पन्न क्रोधाग्नि की शान्ति के लिए हो।

व्याख्या– द्यूतक्रीडा में सर्वस्व हार कर पत्नी द्रौपदी को भी दाँव पर हार जाने वाले पाण्डवों ने पत्नी के अपमान और दुर्दशा को प्रत्यक्ष देखा था। आज कुरुराज दुर्योधन को मार कर भीम ने उस अपमान का बदला ले लिया। दुर्योधन की उन जंघाओं को चूर्ण कर दिया जिन पर वह कुलवधू द्रौपदी को बलात् बिठाने को व्यग्र था।

महासमरानलदग्धशेषाय स्वस्ति भवतु राजन्यकुलाय।

क्रोधान्धैर्यस्य मोक्षात्कुरुनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि।

प्रत्याशं मुक्तकेशान्यनुदिनमधुना पार्थिवान्तपुराणि।

कृष्णायाः केशपाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरूणां

दिष्ट्या बद्धः प्रजानां विरमतु निधनं स्वस्ति राज्ञां कुलेभ्यः ।। 42 ।।

अन्वयः– यस्य मोक्षात् क्रोधान्धैः पाण्डुपुत्रैः कुरुनरपतिभिः प्रत्याशं पार्थिवान्तः पुराणि मुक्तकेशानि कृतानि सः अयं कुपितयमसखः कुरूणां धूमकेतुः कृष्णायाः केशपाशः बद्धः। अतः प्रजानां निधनं विरमतु। राज्ञां कुलेभ्यः स्वस्ति।

अनुवाद– भीषण युद्धाग्नि में जलने से बचे हुए क्षत्रियकुल का कल्याण हो। जिसके खुलने से क्रोध से अन्धे पाण्डुपुत्रों के द्वारा कुरुराजाओं को नष्ट करके प्रत्येक दिशा में राजाओं के अन्तःपुरों को (स्त्रियों को) खुले हुए केशों वाला कर दिया गया है वह यह क्रुद्ध हुए यमराज के समान, कुरुकुल के लिए धूमकेतु स्वरूप कृष्णा द्रौपदी का केशपाश बांध दिया गया। अतः अब प्रजाओं का विनाश समाप्त हो जाए और राजकुलों का कल्याण हो।

व्याख्या– दुःशासन के द्वारा राजसभा में बाल पकड़ कर खींचे जाने से द्रौपदी की वेणी खुल गई थी, तत्क्षण द्रौपदी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि कुरुकुल का नाश हो जाने पर वेणी को बांधूँगी। आज प्रतीक्षा के पश्चात् यह दिन आया है कि द्रौपदी की वेणी बंधी और कुरुकुल की स्त्रियों की वेणी खुल गई है क्योंकि समग्र कुरुकुल का नाश हो चुका है। अतः अब युद्धविराम हो।

कृतगुरुमहदादिक्षोभसम्भूतमूर्ति

गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।

अजममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वाऽपि न त्वां

भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा ।। 43 ।।

अन्वयः– देव! कृतगुरुमहदादि क्षोभसम्भूतमूति गुणिनं प्रजानाम् उदयनाश स्थानहेतुम् अजम् अमरम् अचिन्त्यं त्वां चिन्तयित्वा अपि जगति (जनः) दुःखी न भवति । किं पुनः दृष्ट्वा (भविष्यति)।

अनुवाद– हे देव! किए गए महत् तत्त्व आदि के महान् क्षोभ से उत्पन्न मूर्ति वाले, सत्-रज-तम गुणों से सम्पन्न, प्रजाओं की उत्पत्ति-पालन और नाश के कारणभूत, अजन्मा, अमृत और चिन्तन से परे आपका चिन्तन करके भी संसार में (कोई) प्राणी दुःखी नहीं रहता है, दर्शन हो जाने पर तो कहना ही क्या?

व्याख्या– गुणिनम्–सत्त्व–रजस्–तमस् गुणैः अवच्छिन्नम् । प्रजानाम् उदयनाशस्थानहेतुम् – उदयः-उत्पतिः, नाशः-प्रलयः, स्थानं-स्थितिः अजम् –न जायते म्रियते वा विपश्चित् । अमरम् –स एषोऽजोऽमृतो भवति। अचिन्त्यम् –नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा। चिन्तयित्वा – अध्यात्मयोगाधिगमेन ध्यात्वा ।

व्यासोऽयं भगवानमी च मुनयो वाल्मीकिरामादयो–

धृष्टद्युम्नमुखाश्च सैन्यपतयो माद्रीसुताधिष्ठिताः।

प्राप्ता मागधमत्स्ययादवकुलैराज्ञाविधेयैः समं

स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशा राज्याभिषेकाय ते ।। 44 ।।

अन्वयः– अयं भगवान् व्यासः, अमी वाल्मीकिरामादयः मुनयः च आज्ञाविधेयै मागधमत्स्ययादवकुलैः समं ते राज्याभिषेकाय स्कन्धोत्तम्भिततीर्थवारिकलशाः माद्रीसुताधिष्ठिताः धृष्टद्युम्नमुखाः सैन्यपतयः प्राप्ताः।

अनुवाद– यह भगवान् व्यास; ये वाल्मीकि, परशुराम आदि ऋषिः आज्ञापालक मगध, मत्स्य यदुवंशी राजाओं के साथ तुम्हारे राज्याभिषेक के लिए कन्धे पर तीर्थ जल से पूर्ण कलश रखे हुए; माद्री पुत्रों नकुल-सहदेव के नियन्त्रण में धृष्टद्युम्न आदि सेनापति उपस्थित हुए हैं।

व्याख्या– महाभारत युद्ध के मुख्य कर्णधार कृष्ण सम्राट् युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के लिए तत्पर हैं। उनके निर्देशन में युधिष्ठिर की न्यायानुमोदित शासनव्यवस्था प्रवृत्त होगी।

कोधान्धैः सकलं हतं रिपुकुलं पञ्चाक्षतास्ते वयं

पाञ्चाल्या मम दुर्नयोपजनितस्तीर्णो निकारार्णवः।

त्वं देवः पुरुषोत्तमः सुकृतिनं मामादृतो भावसे

किं नामान्यदतः परं भगवतो याचे प्रसन्नादहम् ।। 45 ।।

अन्वयः– क्रोधान्धैः (अस्माभिः) सकलं रिपुकुलं हतं ते वयं पञ्च अक्षताः। मम दुर्नयोपजनितः पाञ्चाल्याः निकारार्णवः तीर्णः। देवः पुरुषोत्तमः त्वम् आदृतः (सन्) सुकृतिनं मां भाषते। अतः परम् अन्यत् किं नाम? प्रसन्नात् भगवतः अहं याचे ।

अनुवाद– क्रोध से अन्धे (हम पाँचों ने) समस्त शत्रुवंश का संहार कर दिया परन्तु हम पांचों पांडव सुरक्षित रहे। मेरी दुर्नीति से उत्पन्न अपमानरूप सागर को पाञ्चाली ने पार

TESLA-013

कर लिया। आप भगवान् पुरुषोत्तम आदर के साथ मुझ पुण्यशाली व्यक्ति से वार्तालाप कर रहे हैं। इससे अधिक और क्या वस्तु है जो मैं प्रसन्न हुए भगवान् से मांगूँ।

व्याख्या– अन्यायी कुरुकुल का विनाश हुआ पर हम पांचों भ्राता जीवित हैं। द्रौपदी के अपमान का भी बदला ले लिया। आपकी कृपा हमारे ऊपर है ही। यही हमारा परम सौभाग्य है। इससे अधिक पाने की हमारी इच्छा नहीं है।

अकृपणमतिः कामं जीव्याज्जनः पुरुषायुषं

भवतु भगवन्भक्तिर्द्वैतं विना पुरुषोत्तमे।

दयितभुवनो विद्वद्बन्धुर्गुणेषु विशेषवि–

त्सततसुकुती भूयाद् भूयः प्रसाधितमण्डलः ।। 46 ।।

अन्वयः– जनः अकृपणमतिः पुरुषायुषं कामं जीव्यात् । भगवन् ! द्वैतं विना पुरुषोत्तमे भक्तिः भवतु। भूपः दयितभवुनः विद्वद्बन्धुः गुणेषु विशेषवित् (भवतु)। सततसुकृती प्रसाधितमण्डलः भूयात् ।

अनुवाद– प्रजाएँ कार्पण्यरहित बुद्धि वाली होकर पुरुष की सम्पूर्ण आयु पर्यन्त जीवित रहें। हे भगवन् ! बिना किसी सन्देह के ईश्वर में भक्ति होवे। राजा प्रजा के अनुरागी, विद्वानों के बन्धु, गुणों की विशिष्टता पर ध्यान देने वाले, निरन्तर पुण्य करने वाले तथा राज्यों पर नियन्त्रण रखने वाले हों।

व्याख्या– नाटक के अवसान में भरतवाक्य की घोषणा नाट्यशास्त्र का नियम है। भरतवाक्य में सर्वकल्याण की कामना से कवि कतिपय शुभ वाक्यों को प्रस्तुत करता है। वेणीसंहार नाटक का यह अन्तिमश्लोक तद्वत् मंगल विचारों से प्रेरित है–

प्रजाएँ धनधान्य से समृद्ध अतः कृपण न हों। वे सौ वर्ष की आयु का भोग कर ही मृत्यु को प्राप्त करें–'जीवेम शरदः शतम्'। प्रजा उस परम अलौकिक शक्ति के प्रति श्रद्धावान् हो कर सन्मार्ग पर चले।

राजागण प्रजा के हितचिन्तक अतः स्वार्थवृत्ति से परे हों, वे साहित्य और साहित्यकार के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने वाले हों, गुणीजनों की कला आदि की वे यथोचित सुरक्षा-संवर्धनादि करें, पाप कर्मों तथा दुराचार आदि में उनकी प्रवृत्ति न हो, उनके राज्य में भी सर्वोत्तम व्यवस्था हो अतः सर्वत्र शान्ति स्थापित रहे।

इति षष्ठोऽङ्कः

4.6 बोधप्रश्न

1. तृतीय अंक के आठवें, ग्यारहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

2. तृतीय अंक के बीसवें, बाइसवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

3. चतुर्थ अंक के दसवें, बारहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

4. चतुर्थ अंक के तेरहवें, पंद्रहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

5. पञ्चम अंक के सातवें, दसवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

6. पञ्चम अंक के छब्बीसवें, सैंतीसवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

7. षष्ठ अंक के आठवें, बारहवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

8. षष्ठ अंक के चौबीसवें, इकतालिसवें श्लोक की अन्वय, अनुवाद सहित व्याख्या कीजिए।

9. श्लोकों के अनुवाद के आधार पर प्रत्येक अंक का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

TESLA-013

TESLA-013

MAST-107/212

इकाई-5

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

इकाई की रुपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

5.2.1 भीमसेन

5.2.2 श्रीकृष्ण

5.2.3 युधिष्ठिर

5.2.4 अश्वत्थामा

5.2.5 कर्ण

5.2.6 धृतराष्ट्र

5.2.7 अर्जुन

5.2.8 नकुल एवं सहदेव

5.2.9 द्रौपदी

5.2.10 भानुमती

5.2.11 गान्धरी

5.3 बोध प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

'प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण' नामक इकाई में वेणीसंहार नाटक के प्रमुख पात्रों के चरित्र का विस्तृत वर्णन किया गया है। नाटक की कथावस्तु के पश्चात् आप पात्रों के स्वभाव और चरित्र के आधार पर नाटक में उनका महत्व समझ पाएँगे।

TESLA-013

5.1 उद्देश्य

- प्रमुख पात्रों के चारित्रिक गुणों से परिचित हो पाएँगे।
- पात्रों का नाटक में स्थान निर्धारण में सक्षम हो पाएँगे।
- पात्रों के चरित्र के अध्ययन के पश्चात नाटक में उनके महत्व को जान पाएँगे।

5.2 प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

5.2.1 भीमसेन

भीमसेन का नाम 'वेणीसंहार' नामक नाटक में नायक के रूप में लिया गया है। यह पात्र अत्यधिक बलशाली, मानसिक रूप से सुदृढ़ तथा शत्रुओं की विशाल सेना को अकेले ही नष्ट कर देने की सामर्थ्य रखता है। शैशवकाल से ही वह कौरवों को अपना शत्रु समझता है, विशेषरूप से दुर्योधन को, जिसे वह अपने भाई के रूप में कभी स्वीकार नहीं कर पाता है। इस बात का प्रमाण हमें नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक उसकी गर्वोक्तियों के रूप में मिलता है। सौम्य एवं शान्त स्वभाव वाले युधिष्ठिर के द्वारा जब कौरवों से पाँच गाँव लेकर सन्धि करने की बात भीम के सामने आती है तो वे स्पष्टरूप से इसका विरोध करते हुए अपने को सन्धि प्रस्ताव से एकदम अलग कर लेते हैं और कहते हैं कि कौरवों के साथ युद्ध करना ही क्षत्रियोचित धर्म है, इसके विपरीत उनसे शान्तिपूर्वक सन्धि करके युद्ध से पलायन करना कायरता एवं नपुंसकता है। भीम की इस प्रतिज्ञा में ओज दिखायी पड़ता है।

पाँच गाँव लेकर सन्धि करने के इच्छुक युधिष्ठिर को, भीम एक दिन के लिये भी बड़ा भाई न मानने की बात को सहदेव के समक्ष कह डालते हैं–"अद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुर्नहिं विधेयस्तव।" (1/12) सम्पूर्ण नाटक में भीमसेन को एक वीर पुरुष के रूप में प्रदर्शित किया गया है। उनके चरित्र में प्रतिशोध की भावना प्रबल है। तृतीय अङ्क में उन्हें कौरवों को ललकारते हुए दिखाया गया है। दुर्योधन के द्वारा किये गये अनेक प्रकार के अत्याचारों जैसे–द्यूतक्रीडा द्वारा छल से राज्य हड़पने, लाक्षागृह में आग लगवाने, विष दिलाने तथा भरी सभा में द्रौपदी के केशों को खींचकर अपमानित करने आदि बातों से उद्विग्न होकर भीम कौरवशत के वध की, दुःशासन के वक्षःस्थल से रुधिर पीने की, अपनी गदा के आघात से दुर्योधन की जाँघ तोड़ने और उसके रक्त से द्रौपदी की वेणी को बाँधने की प्रतिज्ञा को द्रौपदी को सुनाता है। "गदाभिघातसंपूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य...कचांस्तव देवि भीमः ।।" (1/21) भट्टनारायण ने भीम के द्वारा रक्तपान सम्बन्धी प्रतिज्ञा के विषय में कल्पना करते हुए कहा है कि "भीम के शरीर में राक्षस का प्रवेश हुआ है।" ऐसा कहकर इसके चरित्र को 'मानवशोणितपान' रूपी अमानुषिक आचरण के आक्षेप से बचा लिया है। भीम के अदम्य साहस से भयभीत दुर्योधन अपना मानसिक सन्तुलन खो देता है और भ्रमित होकर प्रलाप करता है। भीम अपने भाइयों के लिये बड़े से बड़ा कष्ट भी उठाने के लिये तत्पर रहता है तथा विपत्तियों से घिर जाने पर भी धैर्य बनाये रखता है। इसके साथ ही साथ

वह अपने सहयोगी श्री कृष्ण के प्रति अगाध-श्रद्धा रखता है क्योंकि उन्हें वह पूर्ण ब्रह्म के रूप में देखता है। नाटक के पञ्चम अङ्क में धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रणाम करते समय भीम ने अपना जो परिचय दिया है उसमें भी उसकी उद्दण्डता दिखायी देती है।

''चूर्णिताशेषकौरव्यः... सुयोधनस्योर्वोर्भीमोऽयं शिरसाञ्जति ।। '' 5/28

भीम धृतराष्ट्र से कहते हैं कि आपकी सभा में राजाओं और पुत्र पौत्रों के द्वारा किये गये अपकारों तथा शत्रुवध आदि महान् कार्यों के साक्षी भी आप ही हैं।

दुर्योधन

इस नाटक में दुर्योधन का चरित्र अत्यन्त ही स्वार्थी मदान्ध एवं विलासी आदि कई रूपों में प्रदर्शित किया गया है। शत्रु पक्ष से युद्ध की घोषणा हो जाने पर तथा भीष्म पितामह जैसे अन्यतम सेनापति के शरशय्या ग्रहण करने पर भी वह विलासिता में अन्धा होकर वाटिका में अपनी पत्नी भानुमती के साथ प्रणयवार्त्ता में आसक्त देखा जाता है। इस अवसर पर वात्याबाधा को भी वह अपना सहायक मानता है। इससे बचने के लिए दारुपर्वत प्रासाद पर अपनी पत्नी के साथ स्वेच्छा से विहार करता है। इसके इन आचरणों को देखकर दुर्योधन का वृद्ध सेवक (कञ्चुकी) दुर्योधन की अपेक्षा, भानुमती को श्रेष्ठ बताता है। अपनी तुलना में समस्त संसार को तृणवत् समझता है। महाभारत का युद्ध उसकी हठधर्मिता और स्वेच्छाचरिता का ही परिणाम है। नाटक में दुर्योधन के चरित्र के इस अंश को सभी समीक्षकों ने ही दोष दृष्टि से देखा है।

वेणीसंहार नाटक में दुर्योधन को मानधनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं यह रूप दुराग्रह सा प्रतीत होता है। भानुमती स्वप्न में देखे गये अनिष्ट से व्याकुल है उस अनिष्ट के निवारण हेतु वह व्रताचरण में भी (अपनी पत्नी के साथ) संलग्न दिखाया गया है। हालाँकि दुर्योधन को मालुम है कि यह चिन्ता अकारण है, क्योंकि वह स्वप्न में देखी गयी है। वास्तविक रूप में नहीं आयी है, और फिर भानुमती केसवरीन्द्र का मानना है। भगवान् कृष्ण दुर्योधन के पास सन्धि का प्रस्ताव हो कर जाते हैं तो भी वह अपने अभिमान के कारण सन्धि प्रस्ताव को यह कहते हुए ठुकरा देता है कि ''सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव।'' उसे अपने मित्रों पर पूरा विश्वास है। द्रोणाचार्य के आश्रम में यद्यपि शक्तिशाली पुत्र अश्वत्थामा प्रतिशोध लेने के लिए तैयार होता है, परन्तु मित्र कर्ण की बात पर वह उसका तिरस्कार करता है। वह अपने भाइयों और स्वजनों से अपार स्नेह करता है। इस नाटक में इसके अन्य भाइयों के युद्ध का प्रदर्शन तो नहीं हुआ, किन्तु दुःशासन के प्रति प्रेम यह दिखाता है कि वह अन्य भाइयों में भी उतना ही स्नेह करता है। दुःशासन की इस विपत्ति का हेतु भी अपने को ही समझता है कि उसने दुःशासन से अविनय तो करवा लिया पर उसकी रक्षा नहीं कर सका।

''युक्तो यथेष्टमुपभोगसुखेषु नैव त्वं लालितोऽपि हि मया न वृथाग्रजेन । अस्यास्तु वत्स तव हेतुरहं विपत्तेर्यत्कारितोऽस्यविनयं न च रक्षितोऽसि।'' 4/6

यही कारण है कि भाइयों के न रहने पर उसकी विजय एवं राज्य लाभ, यहाँ तक कि स्वयं जीवित रहने की इच्छा भी समाप्त हो जाती है। ''घातिताशेषबन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा।'' 4/9 सभी अनुजों के मारे जाने पर इसके माता-पिता ने इससे जब भी सन्धि करने के लिए कहा तो वह कहता है कि ''यदि दैव अनुकूल हो जाँय तो मैं

TESLA-013

अकेला ही पाण्डवों सहित त्रिभुवन के शत्रुओं का विनाश कर दूँगा।'' (5/9)

युद्ध के अन्तिम दिन घायल दुर्योधन तालाब में छिपता है, जिसे ढूँढ़ते हुए पाण्डव वहाँ पहुँचते हैं। वहाँ भीमसेन ने दुर्योधन से कहा कि वह किसी भी शस्त्र से युद्ध कर सकता है परन्तु यहाँ भी उसने दुराग्रह एवं स्वाभिमान के कारण भीमसेन को द्वन्द्व युद्ध के लिये चुना। दुर्योधन की दृष्टि में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि तो पूज्य हैं ही, अपने मित्र कर्ण के प्रति भी उसे बहुत प्रेम है। वह कहता है कि ''मेरे प्राणों से अधिक प्रिय कर्ण के मारे जाने पर मैं श्वास लेने में भी लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ, धैर्य रखकर जीवित रहने की तो बात ही और है।'' (5/15) थोड़ा चैतन्य होने पर दुर्योधन अन्य शोकों को भूलकर कर्ण का वध करने वाले के वंश का समूल नाश करने का प्रण लेता है। उसको रोने से रोकने के लिये जब गान्धारी और धृतराष्ट्र कहते हैं तो वह कहता है जब मेरे लिये कर्ण ने प्राणों का त्याग किया तब तो उसे किसी ने नहीं रोका तो उसी कर्ण के लिये आँसू बहाने से मुझे क्यों रोका जा रहा है। (5/15,16)

इस अवसर पर दुर्योधन और कर्ण का आलिङ्गन अथवा पार्थ प्राणापहरण के लिये सन्नद्ध देखा गया है। स्नेह सम्बन्ध की पवित्रता तथा प्रबलता के कारण इसके सहयोगी एवं मित्रों ने अपने प्राणों का त्याग किया है। दुर्योधन एक अद्वितीय योद्धा तथा कुशल कूटनीतिज्ञ भी है। वस्तुतः देखा जाय तो उसके मित्र ही उसके विनाश का कारण हैं। द्रोणाचार्य वध के अनन्तर कर्ण के कथन मात्र से विश्वास करके दुर्योधन ने अश्वत्थामा पर से अपना विश्वास हटा लिया। राजनीतिक दृष्टि से उसका यह आचरण भले ही अनुचित हो किन्तु मैत्री की दृष्टि से मित्र विश्वास उत्तम है। नाटककार ने दुर्योधन के चरित्र के इस गुण को उभारा है।

नाटक में दुर्योधन की मृत्यु की घटना को नाटककार ने भीम के द्वारा किये गये गदाघात के तत्काल बाद ही दिखायी है जबकि महाभारत में गदाघात के बाद रातभर दुर्योधन को तालाब में मूर्च्छित पड़ा दिखाया गया है। उसी रात अश्वत्थामा ने पाण्डवों के भ्रम से, पाण्डव पुत्रों का वध कर दिया। इस कृत्य की सूचना मिलने के बाद ही दुर्योधन की मृत्यु दिखायी गयी है। इसका चरित्र प्रतिनायक के रूप में सफल दिखाया गया है।

5.2.2 श्री कृष्ण

इस नाटक में श्री कृष्ण एक निष्णात राजनीतिज्ञ तथा विष्णु के अवतार के रूप में दिखाये गये हैं। उनका मञ्चप्रवेश यद्यपि नाटक के अन्त में ही दिखाया गया है तथापि पृष्ठभूमि से ही समस्त कार्यों का सञ्चालन इन्हीं की अनुमति से किया गया है, इसीलिये इन्हें कर्मोपदेष्टा भी कहा गया है–

''चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान्कर्मोपदेष्टा हरिः।'' 1/25

श्रीकृष्ण के द्वारा कहे गये उपायों और तरीकों से ही सभी घटनाएँ क्रियान्वित की गयी हैं, चाहे वह विपक्षी योद्धागणों को मार डालने का तरीका हो या फिर पाण्डवों को विपत्तियों से बचाने का उपाय हो, वे सभी में सफल हुए हैं। प्रथम अङ्क में कृष्ण केवल सन्धि प्रस्ताव रूपी दौत्य कर्म में ही असफल दिखाये गये हैं। जिसकी सूचना भीमसेन को कञ्चुकी के द्वारा दी गयी है। कृष्ण जिस समय दूत बनकर दुर्योधनादि के पास गये उसी समय ही उन सब को अपना विराट रूप तेज को दिखाकर पराभूत कर

दिया। भीम के अनुसार कृष्ण योगियों की भी पहुँच से बाहर के व्यक्तित्व वाले हैं। ऐसे पुराणपुरुष को दुर्योधनादि की बुद्धि समझ नहीं पा रही है।

"आत्मारामा विहितमतयो...देवं पुराणम् ।। 1/23

षष्ठ अङ्क के प्रारम्भ में कृष्ण ने पाञ्चालक से युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का शुभारम्भ करने के लिये कहा है। नाटक के अन्त में युधिष्ठिर की मङ्गलकामना की है। साथ ही साथ युधिष्ठिर ने कृष्ण को परम ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है। इस नाटक में प्रारम्भ से ही प्रत्यक्ष रूप से इनके चरित्र का उपस्थापन नहीं हुआ है फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से वे हमेशा पाण्डवों के हित में लगे रहते हैं।

5.2.3 युधिष्ठिर

अनेक समीक्षकों ने युधिष्ठिर को ही इस नाटक का नायक माना है। वैसे प्रत्यक्ष रूप से युधिष्ठिर का आगमन षष्ठ अङ्क में ही दिखाया गया है। परन्तु परोक्ष रूप से उनके आदर्शों, आदेशों का सङ्केत प्रथम अङ्क से ही दृष्टिगत होता है। श्रीकृष्ण को कौरवों के पास सन्धि प्रस्ताव भेजना, नेपथ्य में इनकी क्रोधाग्नि का प्रदीप्त होना, पाण्डव प्रमुख होने के कारण युद्ध की घोषणा करना इत्यादि युधिष्ठिर के द्वारा ही दिखाया गया है। पञ्चम अङ्क में युद्धविराम की घोषणा भी युधिष्ठिर की आज्ञा से ही हुई है। इन सभी अङ्कों में युधिष्ठिर मञ्च पर उपस्थित न होते हुए भी मुख्य भूमिका में थे।

महाभारत में युधिष्ठिर दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने वाले एक पराक्रमी योद्धा के रूप में प्रदर्शित किये गये हैं किन्तु वेणीसंहार नाटक में इनकी चारित्रिक दुर्बलता दिखायी गयी है। कृष्ण द्वारा विजय की सूचना, और राज्यभिषेक की तैयारी करने का सन्देश मिलने पर वह विजयोत्सव की तैयारी का आदेश भी दे देते हैं परन्तु चार्वाक राक्षस के कुछ कह देने मात्र से ही भ्रमित हो कर अग्नि में कूदकर प्राण त्यागने की बात करते हैं। इसके अतिरिक्त अर्जुन और दुर्योधन के गदायुद्ध चलने की जानकारी मिलने पर वह आँसू बहाकर पितरों के लिये अन्तिम बार तर्पण करते दिखाये गये हैं। नकुल को भेजे गये सन्देश से भी युधिष्ठिर की चारित्रिक दुर्बलता ही दिखायी पड़ती है।

इस नाटक में युधिष्ठिर एक सरल एवं शान्त प्रकृति के राजा हैं। वह न्यायतः आधे राज्य के अधिकारी होते हुए भी पाँच गाँवों को लेकर भी सन्धि करने को तैयार हैं। पाँचवे अङ्क में यह दिखाया गया है कि धृतराष्ट्र भी उनके इस (सहनशीलता नामक) गुण के समर्थक और प्रशंसक हैं। युधिष्ठिर का अपने भाइयों पर अपार स्नेह है और किसी भी भाई के मारे जाने पर स्वयं भी शरीर त्याग की प्रतिज्ञा करते हैं। इस प्रतिज्ञा की घोषणा दुर्योधन और धृतराष्ट्र भी करते हैं।

5.2.4 अश्वत्थामा

आचार्य द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा को बहुत ही पराक्रमी, धनुर्विद्या में पारङ्गत, स्वाभिमानी, एवं पितृभक्त व्यक्ति के रूप में नाटक में दिखाया गया है। वह अपने पिता पर अटूट श्रद्धा रखता है। अश्वत्थामा का आगमन नाटक में तीसरे एवं पाँचवें अङ्क में हुआ है। जाति से ब्राह्मण होते हुए भी वह कर्म से एक योद्धा है। इस नाटक में इसके चरित्र के विकास को यथेष्ट अवसर नहीं मिला। उसे अपने पिता पर बहुत ही विश्वास

TESLA-013

है। उनके सेनापतित्व काल में अश्वत्थामा को किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता है।

नेपथ्य में उसे अपने पिता की मृत्यु की सूचना मिलती है। बाद में सूत के मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनने पर उसे पता चलता है कि शस्त्र त्याग ही उनकी मृत्यु का कारण है और वह शस्त्र त्याग भी मुझ अश्वत्थामा के कारण ही है तो उसे अत्यधिक ग्लानि का अनुभव होता है और पितृस्नेह उमड़ पड़ता है। उसको इस बात का दुःख होता है कि उसके पिता को बाल खींच कर मारा गया है और वह कुछ नहीं कर सका।

''मयि जीवति मत्तातः केशग्रहमवाप्तवान् ....पुत्रिणः स्पृहाम् ।।'' 3/31

यह सोच कर वह मारने के लिय उद्यत हो उठता है। इसी सम्बन्ध में वह मामा कृपाचार्य के समझाने पर शान्त हो जाता है। इसी समय वह पृथ्वी को पाण्डवों और श्री कृष्ण से विहीन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करता है–

''प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशामकेशवमपाण्डवं भुवनमद्य निःसोमकम् ।'' 3/34

कर्ण ने जब द्रोणाचार्य के पौरुष की निन्दा की तो अश्वत्थामा उसे भी मार डालने के लिये उद्यत हो गया। वह अपने पिता की निन्दा किसी भी प्रकार से सहन नहीं करता है। यही कारण है कि कर्ण को मारा जाता देखकर भी अश्वत्थामा उसका सहयोग नहीं करता है। कर्ण के द्वारा जात्या अवध्य कहे जाने पर उसने अपने खड्ग से जाति सूचक चिह्न (यज्ञोपवीत) को ही काट डाला। अपनी शक्ति पर विश्वास रखने वाला कर्ण अपनी जाति का सहारा नहीं लेना चाहता।

कर्णवध के उपरान्त पाँचवें अङ्क में पुनः अश्वत्थामा का प्रवेश होता है। वहाँ पर दुर्योधन कर्ण के वध का सारा आरोप उसी पर लगाता है, जिससे वह दुःखी होकर चला जाता है और पुनः नाटक में नहीं आता है। अश्वत्थामा के हृदय का कोमल पक्ष तब उजागर होता है जब वह स्वामिकार्य करता है अथवा मित्र की रक्षा करता है। कर्ण के साथ वाक्कलह के समय वह शस्त्र त्याग की प्रतिज्ञा करता है जिसे वह बाद में स्वामिकार्य के लिये तोड़ना भी चाहता है किन्तु आकाशवाणी द्वारा निषेध किये जाने पर वह विवशता में शस्त्र नहीं उठा पाता है।

अश्वत्थामा पहले तो दुर्योधन को भला बुरा कहता है फिर बाद में उसकी ओर से युद्ध करने चला जाता है। इस प्रकार वह नाटक में दृढ़ प्रतिज्ञ, पितृ भक्त, स्वामिभक्त वीर पुरुष के रूप में दिखाया गया है।

5.2.5 कर्ण

कर्ण का चरित्र चित्रण नाटक में उत्साही, कूटनीतिज्ञ, मित्र प्रेमी, पुत्र वत्सल, दृढ़निश्चयी आदि रूपों में प्रदर्शित किया गया है। इसका प्रवेश तीसरे अङ्क में हुआ है। यह चौथे अङ्क में यह कई रूपों में दिखाया गया है। किन्तु पाँचवें अङ्क में इसकी मृत्यु की सूचना दी गयी है। द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा के विरुद्ध दुर्योधन के कान भरने वाला कर्ण नाटक में कूटनीतिज्ञ के रूप में दिखाया गया है। जिसके परिणाम स्वरूप द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद अश्वत्थामा को कौरवों का सेनापतित्व नहीं मिला। अश्वत्थामा के साथ वाक्कलह करते हुए उसने उसके मर्म पर चोट किया तथा अश्वत्थामा के अधिक्षेपों का उत्तर देते हुए कर्ण कहता है कि मैं पराक्रमी हूँ या नहीं किन्तु तुम्हारे पिता के समान आयुध का परित्याग तो नहीं किया ''निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम् ...ते

बाहुशालिना ।।'' 3/36

मेरी जाति कुछ भी हो वह मेरे अधीन नहीं है पर मेरा पौरुष और पराक्रम तो मेरे ही अधीन है। उसकी यही सोच और कथन हमेशा उसका उत्साह बढ़ाता है। इतना पराक्रमी होने पर भी, शापग्रस्त होने के कारण युद्ध भूमि में समय पर अस्त्रों का प्रयोग असफल हो गया, जिससे वह मारा गया। चौथे अङ्क में यह दिखाया गया है कि पुत्र की मृत्यु के बाद रणभूमि में ही अपने घावों की पट्टी पर, अपने ही रक्त से एक पत्र लिखकर दुर्योधन के पास भिजवाता है। उस सन्देश में कर्ण के सच्चे मित्र होने का प्रमाण दिखाई देता है। दुर्योधन भी उसे दुःशासन से अधिक प्रिय मानता है।

यद्यपि कर्ण को साहसी शूरवीर के रूप में दिखाया गया है, पर साथ में यह भी

दिखाया गया है कि उसके ईर्ष्या, असहिष्णुता, कुमन्त्रणा आदि दुर्गुण दुर्योधन का विनाश करने में सहायक होते हैं। कर्ण के कहने पर ही दुर्योधन, अश्वत्थामा जैसे वीर और निःस्पृह व्यक्ति का तिरस्कार करता है।

5.2.6 धृतराष्ट्र

इस नाटक में धृतराष्ट्र का पाँचवें अङ्क में प्रवेश होता है। इस समय तक उनके 909 पुत्र मारे जा चुके हैं। दुर्योधन ही एकमात्र जीवित रहता है। धृतराष्ट्र एक निरीह और विवश पिता की तरह दुर्योधन से कहते हैं कि वह अपने अन्धे और बूढ़े माता पिता की सेवा करे। अपना दुराग्रह छोड़कर सन्धि कर ले। अन्यथा कृतप्रतिज्ञ भीम दुर्योधन का वध कर देगा अतः उसे पाण्डवों से इच्छित शर्तों पर सन्धि कर लेनी चाहिए। वे युधिष्ठिर की प्रशंसा में कहते हैं कि वह मेरे सम्मान और धर्मानुकूल पथ पर चलने के कारण मेरी बात मानेगा तथा तुम्हें छोड़ देगा। वह युधिष्ठिर भ्रातृ प्रेम से परिपूर्ण है, वह भाग्य में विश्वास करता है अतः पिता के युक्तियुक्त वचन मान कर युद्ध का परित्याग कर दो।

धुतराष्ट्र दुर्योधन को उसके मरणोपरान्त पत्नी गान्धारी की दुर्दशा का भी ध्यान कराते हैं। शत्रुपक्ष की परम शक्ति का आभास धृतराष्ट्र को है अतः वे दुर्योधन को शत्रु के विनाश की गुप्त विधि खोजने को कहते हैं। तत्क्षण कर्ण की मृत्यु का समाचार सुन वे पुत्र की रक्षा के लिए अधिक चिन्तित होते हैं। भीम की प्रतिज्ञा का स्मरण कर वे धृतराष्ट्र दुर्योधन की प्राणरक्षा के लिए नितान्त विचलित हैं। वे दुर्योधन को किसी विश्वस्त मित्र को सेनापति पद सौंपने की सलाह देते हैं। उसी समय अश्वत्थामा का प्रवेश होने पर वे दुर्योधन को अश्वत्थामा को ही सेनापति स्वीकार करने का आदेश देते हैं परन्तु मदमत्त दुर्योधन उस आदेश को नहीं मानता है।

इन परिस्थितियों में विवश है धृतराष्ट्र यह मानने को कि अब भरवंश का अन्त निकट है।

5.2.7 अर्जुन

इस नाटक में भट्टनारायण ने अर्जुन को प्रत्यक्ष रूप में मञ्च पर शौर्य प्रदर्शन का अवसर नहीं दिया जबकि महाभारत युद्ध में अर्जुन एक महान् और प्रमुख योद्धा के रूप में दिखाया गया है। इसका कारण सम्भवतः यही होगा कि इस नाटक के नाम तथा

द्रौपदी के वेणी संयमन रूपी कार्य में अर्जुन का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। चौथे अङ्क में यह वर्णन है कि अर्जुन ने कर्ण और वृषसेन का वध किया है। पाँचवें अङ्क में दुर्योधन को खोजते हुए कुछ क्षणों के लिये मञ्च पर अर्जुन आते हैं और धृतराष्ट्र तथा गान्धारी को प्रमाण करते हुए कर्णहन्ता के रूप में अपने को बताते हैं।

''सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा...मध्यमः पाण्डवोऽयम् ।। 5/27

महाभारत के अनुसार युद्ध में सबसे वीर योद्धा के रूप में अपने पक्ष के सभी योद्धाओं के सहायक के रूप में अर्जुन का ही नाम आता है। भीम और दुर्योधन के गदा युद्ध में अर्जुन ने ही दुर्योधन की जांघ की ओर सङ्केत किया था। द्यूत के बाद अर्जुन ने ही प्रतिज्ञा की थी कि यदि चौदह वर्ष के बाद राज्य नहीं लौटाया तो शत्रुओं का विनाश कर दिया जायेगा। इस नाटक में अर्जुन का यह चरित्र कहीं नहीं दिखाया गया है। चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक ने कर्ण और वृषसेन के साथ युद्ध के समय का वर्णन किया है। नाटक के अन्त में युधिष्ठिर की युद्ध-विराम घोषणा को सुनकर भीमसेन के साथ ही यह भी अपने शिविर की ओर चले गये हैं। एक तरह से कहा जाय तो अर्जुन का कोई भी प्रभावोत्पादक रूप नहीं चित्रित किया गया है। विकास का कोई अवसर न होने के कारण अर्जुन का चरित्र दबा हुआ सा प्रतीत होता है।

5.2.8 नकुल एवं सहदेव

ये दोनों ही माद्री के पुत्र हैं। महाभारत के युद्ध में यद्यपि इन दोनों ने सक्रिय रूप से तथा वीरतापूर्वक योगदान दिया है किन्तु इस नाटक में नकुल कभी भी मञ्च पर आते नहीं दिखाये गये हैं और सहदेव का मञ्च पर आना भी केवल प्रथम अङ्क में ही हुआ है, वह भी भीमसेन के साथ उनके अनुवर्ती के रूप में। नेपथ्य में कौरवों के लिये कहे गये ''स्वस्थाः भवन्तु'' वाक्य का अर्थ ''स्वर्गस्था भवन्तु'' करते हुए सहदेव भीम के अभिप्राय का समर्थन करते हैं। युधिष्ठिर के सन्धि प्रस्ताव में माँगे गये 5 गाँव को भी सहदेव ने दूसरे रूप में समझा कर भीम के क्रोध को शान्त किया। उनका कहना था कि चार गाँवों का नाम लेना और पाँचवें गाँव का नाम न लेना, विष देने, लाक्षागृह दाह, द्यूत सभा आदि अपकार स्थान वाले कौरवों को उनके चार अपकारों की याद दिलाना ही है। युद्ध की घोषणा होने पर सहदेव अपने सामर्थ्य के अनुसार पराक्रम प्रदर्शन के लिये मञ्च से चले गये।

छठें अङ्क में युधिष्ठिर ने अपने सेवकों के द्वारा, छिपकर बैठे हुए दुर्योधन को खोजने का आदेश नकुल और सहदेव को दिया। इसी अङ्क में मुनिवेश धारी चार्वाक् नामक राक्षस के मुख से भीम और अर्जुन की गति को सुनकर चिता प्रवेश को उद्यत युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव के पास भविष्य में करणीय कर्त्तव्यों का सन्देश भिजवाया, किन्तु कोई भी वीरोचित कर्त्तव्यों का उल्लेख उसमें नहीं था।

इन सभी बातों से यह पता चलता है कि इन दोनों पात्रों का कोई भी स्वतन्त्र अस्तित्व नाटक में प्रस्तुत नहीं किया गया।

5.2.9 द्रौपदी

इस नाटक का नामकरण ही द्रौपदी के वेणी संयमन को लेकर ही किया गया है। सम्पूर्ण घटनाएँ द्रौपदी के इर्द गिर्द ही घूमती रहती हैं। द्रौपदी उच्च क्षत्रिय कुलोत्पन्ना,

मुग्धा नायिका के रूप में दिखायी गयी है। मञ्च पर इसका प्रवेश केवल पहले और छठे अङ्क में ही हुआ है। पहले अङ्क में भानुमती कृत अपमान की जानकारी द्रौपदी ने भीम को दी है। वह दुर्योधन तथा भानुमती के द्वारा किये गये अपमान से फूत्कार करती हुई नागिन सी बनकर समस्त कौरव वंश के सर्वनाश के लिये तत्पर हो जाती है।

भीम को यह जानकारी देने के पीछे भी शायद यही कारण है कि भीम को वह पराक्रमी, एवं वीर मानती है। उसे यह भी विश्वास है कि उसके तिरस्कार एवं अपमान का बदला केवल भीम ही ले सकता है। भीम के युद्ध क्षेत्र में जाने के समय द्रौपदी विजय के लिये मङ्गलकामना करती है।

द्रौपदी के चरित्र में प्रतिशोध की भावना प्रबल है। वह अपने व्यंग्य बाणों से भीम की क्रोधाग्नि को बीच-बीच में प्रज्वलित करती रहती है। युधिष्ठिर के द्वारा जुएँ में राज्य और द्रौपदी के हार जाने के कारण वह युधिष्ठिर से कोई अपेक्षा नहीं करती। वस्तुतः द्रौपदी को इस नाटक में एक वीर क्षत्राणी के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। अपार सङ्कट के समय में भी वह धैर्य का त्याग नहीं करती है। उसका मुखमण्डल तेज से प्रतीप्त रहता है।

5.2.10 भानुमती

यह पात्र दुर्योधन की पत्नी है। इसका स्वभाव दुर्योधन के स्वभाव से एकदम विपरीत है, यह उच्च कोटि की साध्वी दयालु तथा आदर्श पतिपरायण नारी का सच्चा उदाहरण है। द्वितीय अङ्क में ही केवल वह मञ्च पर आयी है। स्वप्न में भी वह अपने पति को परेशानी में देखकर उसके निवारणार्थ प्रयत्न करती है। नकुल के द्वारा 'अहिशतवध' का दुःस्वप्न देखने के बाद उस अमङ्गल से बचने के लिये वह सूर्य की उपासना भी करती है। धर्मभीरु भानुमती अचानक व्रत भङ्ग करने वाले दुर्योधन से व्रत को सकुशल पूर्ण करने के लिये विनती करती है। कञ्चुकी ने इसके चरित्र को दुर्योधन की अपेक्षा अच्छा कहा है। इसके चरित्र का दोषी पक्ष केवल यही है कि इसने कटु वचनों से द्रौपदी को अपमानित किया है। इन्हीं वचनों से द्रौपदी की प्रतिशोध की भावना पुनः उद्दीप्त हो उठी है। भानुमती का चरित्र पतिव्रता, व्रतशीला, आर्यनारी के रूप में यहाँ स्तुत्य है।

5.2.11 गान्धारी

इस नाटक में प्रत्यक्षतः पञ्चम अङ्क में आने वाली गान्धारी एक पुत्रवत्सला आर्य जननी के रूप में प्रस्तुत की गयी है। शत्रुपक्ष की होने पर भी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि पाण्डु पक्ष की स्त्रियाँ भी इनकी चरणवन्दना के लिये जाया करती थीं ऐसा प्रथम अङ्क में चेटी के कहे गये वाक्यों से ज्ञात होता है। इसी अङ्क में इसका सम्पूर्ण वात्सल्य एकमात्र बचे हुए दुर्योधन के प्रति ही सिमटा हुआ दिखाया गया है। गान्धारी की केवल यही अभिलाषा है कि दुर्योधन जीवित रहे, उसे राज्य और विजय से कोई प्रयोजन नहीं है। दुःशासन वध का समाचार सुनकर वह अपने को पुत्त्रशत की जननी के स्थान पर दुःखशत की जननी कहती है। इसी अङ्क में सन्धि प्रस्ताव का धृतराष्ट्र के समान ही समर्थन करती है।

इस तरह से गान्धारी एक अतिव्यथित माँ के रूप में दिखायी गयी है क्योंकि उसके 99 पुत्र मारे जा चुके हैं।

TESLA-013

5.3 बोधप्रश्न

1. वेणीसंहार में वर्णित भीमसेन के चरित्र का चित्रण कीजिए।
2. वेणीसंहार में वर्णित दुर्योधन के चरित्र का चित्रण कीजिए।
3. वेणीसंहार में वर्णित श्रीकृष्ण के चरित्र का चित्रण कीजिए।
4. वेणीसंहार में वर्णित युधिष्ठिर के चरित्र का चित्रण कीजिए।
5. वेणीसंहार में वर्णित अश्वत्थामा के चरित्र का चित्रण कीजिए।
6. वेणीसंहार में वर्णित कर्ण के चरित्र का चित्रण कीजिए।
7. वेणीसंहार में वर्णित नकुल एवं सहदेव के चरित्र का चित्रण कीजिए।
8. वेणीसंहार में वर्णित द्रौपदी एवं गान्धारी के चरित्र का चित्रण कीजिए।

TESLA-013